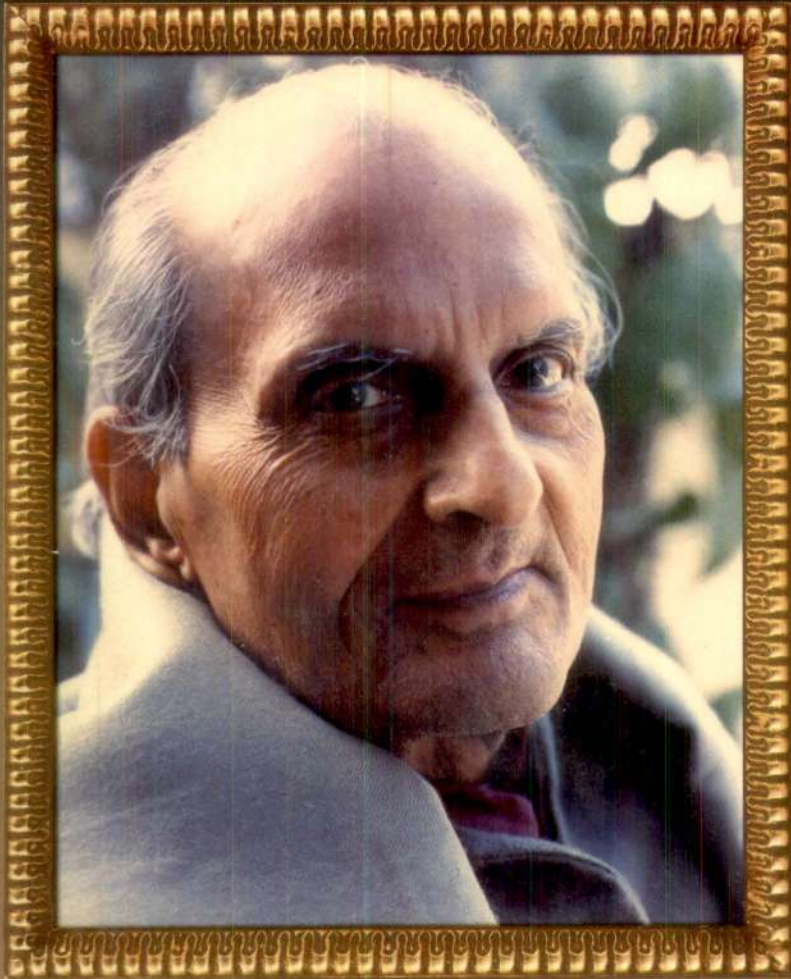
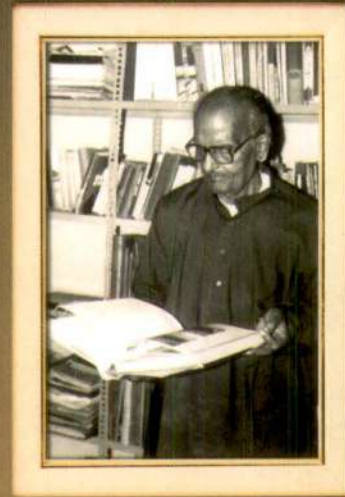


आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक



प्रगतिशील
चिंतक
और
आलोचक :
रामविलास शर्मा

वह सहज विलंबित मंथर गति जिसको निहार
गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार;

काले लहराते बाल देव-सा तन विशाल
आर्यों का गर्वोन्नत, प्रशस्त, अविनीत भाल

झंकृत करती थी जिसकी वाणी में अमील
शारदा सरस वीणा के सार्थक सधे बोल-

कुछ काम न आया वह कवित्व आर्यत्व आज
संध्या की वेला शिथिल हो गए सभी साज ।

अब वन्य जंतुओं का पथ में रोदन कराल
एकाकीपन के साथी हैं केवल शृंगाल ।

अब कहाँ यक्ष से कवि-कुल-गुरु का ठाटबाट?
अर्पित है कवि-चरणों में किसका राजपाट?

उन स्वर्ण-खचित प्रासादों में किसका विलास?
कवि के अंतःपुर में किस श्यामा का निवास?

पैरों में कठिन बिवाई, कटती नहीं डगर
आंखों में आंसू, दुख से खुलते नहीं अधर!

खो गया कहीं सूने नभ में वह अरुण राग
धूसर संध्या में कवि उदास है वीतराग!

अब वन्य जंतुओं का पथ में रोदन कराल
एकाकीपन के साथी हैं केवल शृंगाल ।

अज्ञान-निशा का बीत चुका है अंधकार
खिल उठा गगन में अरुण-ज्योति का सहस्रार ।

किरणों ने नभ में जीवन के लिख दिए लेख
गाते हैं वन के विहग ज्योति का गीत एक ।

फिर क्यों पथ में यह संध्या की छाया उदास ?
क्यों सहस्रार का मुरझाया नभ में प्रकाश ?

किरणों ने पहनाया था जिसको मुकुट एक
माथे पर वहीं लिखे हैं दुख के अमिट लेख ।

अब वन्य जंतुओं का पथ में रोदन कराल
एकाकीपन के साथी हैं केवल शृंगाल ।

कवि

रामविलास शर्मा



इन वन्य जंतुओं से मनुष्य फिर भी महान
तू क्षुद्र मरण से जीवन को ही श्रेष्ठ मान ।

“रावण-महिमा-श्यामा-विभावरी-अंधकार”-
छंट गया तीक्ष्ण वाणों से वह भी तम अपार ।

अब बीती बहुत रही थोड़ी, मत हो निराश
छाया-सी संध्या का यद्यपि धूसर प्रकाश ।

उस वज्र-हृदय से फिर भी तू साहस बटोर
कर दिए विफल जिसने प्रहार विधि के कठोर ।

क्या कर लेगा मानव का यह रोदन कराल?
रोने दे यदि रोते हैं वन-पथ में शृंगाल ।

कट गई डगर जीवन की, थोड़ी रही और ।
इस वन में कुश-कंटक, सोने को नहीं ठौर ।

क्षत चरण न विचलित हों, मुंह से निकले न आह
थक कर मत गिर पड़ना ओ साथी बीच राह ।

यह कहे न कोई-जीर्ण हो गया जब शरीर
विचलित हो गया हृदय भी पीड़ा से अधीर ।

पथ में उन अमिट रक्त-चिह्नों की रहे शान
मर मिटने को आते हैं पीछे नौजवान ।

इस वन में जहां अशुभ ये रोते हैं शृंगाल
निर्मित होगी जन-सत्ता की नगरी विशाल ।

स्थापित 1945

इस अंक में

लेख

आजकल

वर्ष : 68; अंक : 5; पूर्णांक : 815

सितंबर 2012; भाद्रपद-आश्विन 1934

संपादक

सीमा ओझा

सह संपादक

फरहत परवीन

आवरण सज्जा : रुचिका टक्काली

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक

आजकल : प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 120, सूचना भवन

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

फोन : 2436 2915

website :

www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) :

बी. के. मीणा

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्ष : 180 रुपये;

तीन वर्ष : 250 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक से)

एक वर्ष : पड़ोसी देश : 530 रुपये

शेष विश्व : 730 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :

सूर्यकांत शर्मा

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207 / 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइप सेटिंग

2. प्रसंगवश

3. पत्र

5. रामविलास शर्मा : एक शताब्दी यात्रा

9. डायरी के पन्ने

15. रामचरितमानस में कुछ आधुनिक काव्य-कला की विशेषताएं

18. राम की शक्तिपूजा

22. रामविलास जी की पहली डायरी

25. महान भारतीय आलोचक-विचारक

31. नवजागरण की अवधारणा

34. पत्रों से झांकते रामविलास शर्मा की छवियां

36. हिंदीभाषियों का गर्व : रामविलास शर्मा

39. अखाड़े से जुड़ा आलोचक : रामविलास शर्मा

41. वह निराला के योग्य सहचर हैं (विश्वनाथ त्रिपाठी से भारतेंदु मिश्र की बातचीत)

43. एक आलोचक-एक भाषा विज्ञानी : रामविलास शर्मा

45. साहित्येतिहास पर सामाजिक पृष्ठभूमि में विचार करें
(साक्षात्कार)

54. ऊर्जस्वी रचनाकार

55. जातीयता और साम्राज्यवाद विरोध की निशानदेही...

58. रामविलास शर्मा की व्यापक दृष्टि

61. नए साहित्यिक सिद्धांतों के संस्थापक

66. अप्रतिम व्यक्तित्व

67. नवजागरण की धारणा बुनियादी तौर पर
साम्राज्यवाद विरोधी है : मैनेजर पांडेय

अनुराधा

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा

विजय मोहन शर्मा

रविभूषण

देवशंकर नवीन

भारत भारद्वाज

खगेंद्र ठाकुर

भाजदा असद

रमा

नीरव अडालजा

रमाकांत श्रीवास्तव

अवधेश

प्रांजल धर

शुभा श्रीवास्तव

विवेक सत्यांशु

सुधीर सुमन

कविताएं

7. समुद्र के किनारे : रामविलास शर्मा

8. दो कविताएं रामविलास शर्मा के लिए : प्रकाश मनु

33. नया गौरव : रामविलास शर्मा

42. दो कविताएं : रामविलास शर्मा

आवरण II : कवि : रामविलास शर्मा

आवरण III : तीन कविताएं : रामविलास शर्मा

हमारे विक्रय केंद्र : नई दिल्ली: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; लखनऊ: हाल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455; कोलकाता: 8, एस्पेनेड ईस्ट; दूरभाष : 33-22488030, षट्ता : बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 0612-2683402; मुंबई : 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई; दूरभाष : 9522-27570686; बंगलौर : एक विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244; हैदराबाद : ब्लाक-4, प्रथम तल, गुरुकुल कॉम्प्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष : 040-24605383; चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 044-24917673; तिरुवनंतपुरम : गवर्मेन्ट प्रेस के निकट; दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश...

रामविलास जी को अपने अध्ययन काल के दौरान पढ़ा तब कुछ बातें बहुत दुरूह लगीं क्योंकि उस समय इतनी परिपक्वता नहीं थी कि पढ़कर उन्हें समझ पाती। शताब्दियों के दौर में जब समय आया आदरणीय रामविलास जी की शताब्दी का तो पुनः एक बार सम्मानीय लेखकों से लेखों के लिए आग्रह किया। लेख आए। कुछ लेख सामान्य प्रक्रिया में भी आए। कोशिश रही कि सभी को यथोचित सम्मान मिले। इस दौरान जब रामविलास जी को पढ़ा तो हैरान रह गई—इतना अद्भुत लेखन—तुलसी, निराला पर उनके लेख पढ़कर लगा कि मुंह में स्वादिष्ट मिठाई के रस से रसना तृप्ति हो गई है। सौ साहित्यिक कृतियों के सर्जनकर्ता रामविलास जी साहित्य जगत की नींव हैं। उनको पढ़ते हुए कई बार रचनाओं से एकाकार होती मुझे लगा यह अपूर्व कोष, यह निधि हमारे भारतीय साहित्य की कितनी बड़ी थाती है। क्या हमारी आगे की पीढ़ी इसे जान सकेगी या आगे की पीढ़ी ही क्यों कहें हमारे वह लोग, जो साहित्य जगत में पैठ रखते हैं वह क्या सही में रामविलास जी में रम पाते हैं।

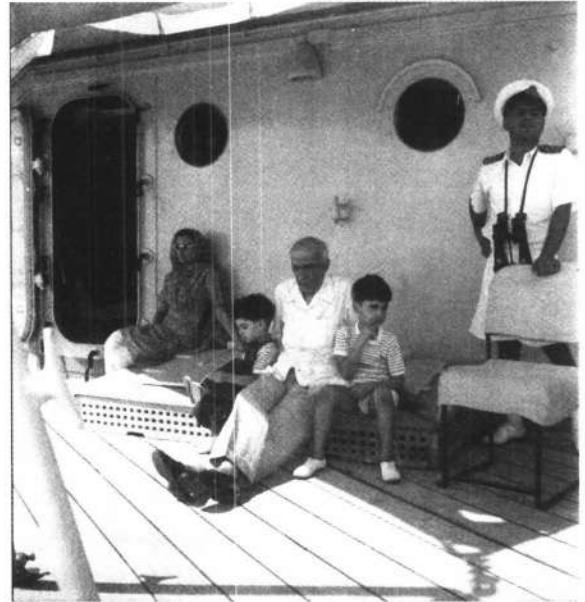
दर्शक, इतिहास लेखक, चिंतक, भाषा वैज्ञानिक, आलोचक इस अथाह सरोवर में गोते लगा कौन-सा मोती चुनने का प्रयास करें। अद्भुत!

भारत-भारतीयता से गहरा अनुराग रखने वाले ऋग्वेद, उपनिषदों की आधुनिक व्याख्या करने वाले रामविलास जी का जीवन जैसा कि उन्होंने अपनी पुस्तक रूपतरंग में नरेंद्र शर्मा के लिए लिखा स्वयं उन पर लागू होता है “हिंदी जनता और हिंदी साहित्य से मिलकर एकाकार हो गया।” रामविलास जी के लेखन को पढ़ते हुए न बोझिलता आती है और न ही नीरसता। वह पांडित्य के दंभ से भरे बिना बहुत ही सहज तरीके से एक तरफ तथ्य तो दूसरी तरफ अकाट्य तर्क से हमें इतिहास ही नहीं ऋग्वेद और उपनिषद की वीथी में भ्रमण करते हुए अभिभूत करते हैं।

‘युग परिवर्तन’ के लिए परंपरा का मूल्यांकन करते हुए वह लकीर के फकीर नहीं बनते। रामविलास जी को न साहित्यकार होने का दंभ है, न दार्शनिक, न इतिहासकार और न ही अर्थशास्त्री फिर भी इन क्षेत्रों में ज्ञान का असीम भंडार वह भी सहजता-सरलता से क्या भारतीय साहित्य जगत उन्हें भुला सकता है।

कवि निराला रामविलास शर्मा को अन्य कवियों में विंध्याचल की तुलना में हिमालय की तरह लगे। आपने स्वयं लिखा—‘तबसे मेरी उस धारणा में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। निराला को लेकर हिंदी में कितना संघर्ष हो चुका है, तब मुझे इसका पता न था।’ आलोचना के क्षेत्र में आने का श्रेय वह निराला के साथ हो रहे संघर्ष को देते हुए लिखते हैं—‘सन 34 में यह संघर्ष ही मुझे आलोचना के क्षेत्र में घसीट लाया और मेरा पहला आलोचनात्मक निबंध निराला की काव्य प्रतिभा के समर्थन में प्रकाशित हुआ। संभव है, यह संघर्ष न होता—मेरे प्रिय कवि पर द्वेषपूर्ण आरोपों की वर्षा न की गई होती—तो मैं आलोचना के क्षेत्र में आता ही नहीं। आज विरोधी कोलाहल शांत हो गया है। दिन-दिन निराला की प्रतिभा अपने वास्तविक प्रकाश में जनता के सामने आ रही है। यह हिंदी के नए युग की विजय है। उस नई काव्य-रुचि की विजय है जिसके लिए निराला ने अनवरत संघर्ष किया है।’ अगर साहित्य जगत निराला का विरोध न करता तो हम रामविलास जी के आलोचक रूप को न देख पाते।

रामविलास जी जहां भारतीय संस्कृति के विकास में इतिहास सांस्कृतिक चेतना संबंधी प्रचलित भ्रमों को तोड़ते हैं वहीं वह वैकल्पिक रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। साहित्य जगत के ऋषि जीवन में भी ऋषितुल्य ही रहे। इस वर्ष रामविलास जी की शताब्दी पर तमाम कार्यक्रम होंगे। वह एक बार लोगों के मन में पुनः साकार होंगे, साकार होगा उनका व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्व के विभिन्न रूप—इतिहासकार, साहित्यकार, दार्शनिक, भाषा वैज्ञानिक, आलोचक का। उनकी पुस्तकें जब तक जनमानस को आंदोलित, जाग्रत करती रहेंगी तब तक कितनी भी शताब्दियां बीतें रामविलास जी की स्मृतियों की उजास निरंतर प्रकाशमान रहेंगी।



विश्राम के क्षण (सौजन्य : विजय मोहन शर्मा)



करिश्माई व्यक्तित्व

● मई अंक के माध्यम से एक ऐसे रचनाकार को तबज्जो दी गई है, जो अपनी रचनाओं को लेकर विवादित रहा है जबकि उनके समकालीन प्रसिद्ध व्यंग्यकार कृष्णचंदर ने उनकी तारीफ़ में कशीदे काढ़े हैं। मंटो पर होने वाली कटु आलोचनाओं की बौछार का उन पर कोई असर नहीं पड़ा बल्कि वे सारी आलोचनाओं को साहस के साथ झेलते रहे। रचनाकार का मौलिक उद्देश्य समाज की अच्छाइयों के साथ ही बुराइयों को भी दिखाना होता है। समाज में फैली हुई अपसंस्कृति या बुराइयों को यदि रचनाकार प्रस्तुत करता है तो उसकी तारीफ़ अवश्य ही करनी चाहिए।

मंटो ने साफ़ कहा है कि उनके अफ़साने सेहतमंद लोगों के लिए हैं। ग़लत और ग़लत ढंग से सोचने वालों के लिए नहीं। कृष्णचंदर ने तो उनके विषय में स्पष्ट कहा है—“वह उर्दू साहित्य का अकेला शंकर है जिसने ज़िंदगी के ज़हर को घोलकर पिया है और फिर उसके स्वाद को, उसके रंग को खोल-खोलकर बयां किया है...”।

मंटो का जीवन संघर्षशील

रहा पर उन्होंने जीवन में कभी हार को स्वीकार नहीं किया।

इस अंक में इस्मत चुगताई का मंटो से संबंधित संस्मरण भी रुचिकर एवं प्रभावशाली है जिसमें उनके बेबाक लहजे पर चर्चा की गई है। मंटो के निधन के बाद शोकग्रस्त होकर इस्मत चुगताई ने ठीक ही लिखा है—‘मरने वाले ज़ख़्म लगा जाते हैं जो न दुखता है, न रिसता है। ख़ामोश सुलगता रहता है।’

मंटो ने अनेकों निबंध तथा लघुकथाएं लिखीं। उनकी शोहरत ने आकाशीय ऊंचाई प्राप्त की। अंक में उनकी लघुकथाओं को समाहित कर पाठकों पर उपकार किया गया है पर इसके साथ ही उनकी एक-दो विवादग्रस्त कथाओं जैसे ‘तमाशा’ या ‘काली सलवार’ आदि को भी अंक में स्थान दिया जाता तो पाठक उनके करिश्माई व्यक्तित्व से पूर्णरूपेण परिचित हो सकते थे।

साहित्य में आज जब ‘पत्र’ भी विधा के रूप में माना जाने लगा है ऐसे समय अहमद नदीम क़ासिमी द्वारा उन्हें लिखे गए पत्रों का उल्लेख कर *आजकल* ने अच्छा कार्य किया। पाठकों का आभार। पत्र मंटो को आकाशीय बुलंदी पर पहुंचा देते हैं। अख़्तर शीरानी के ‘रेखाचित्र’ तथा सुशील सिद्धार्थ द्वारा उनके निबंधों पर चर्चा इस अंक की उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जा सकती है।

—अमरनाथ मेहरोत्रा, मुज़फ़्फ़रपुर

सारगर्भित मूल्यांकन

● मुखपृष्ठ पर शीर्षक ‘मंटो आज भी ज़िंदा हैं सटीक है, यह

सिर्फ़ मंटो पर ही मौजूं नहीं है बल्कि सभी बड़े लेखकों पर फिट है। चित्रों ने मंटो को ज़िंदा रखने में कंधा दिया है। ‘प्रसंगवश’ प्रासंगिक है।

इस्मत चुगताई ने मंटो के संस्मरण पर शब्द ज्यादा खर्च कर दिए हैं, आलोचक अहमद नदीम क़ासिमी ने चंद ख़तूत का सहारा लेकर रचना तैयार नहीं की है बल्कि तीन पृष्ठों में बेहतरीन भूमिका बांधी है। मंटो के रेखाचित्र ‘अख़्तर शीरानी से चंद मुलाक़ातें’ में मंटो के गद्य का सौंदर्य देखा जा सकता है, जो उनकी कहानियों से अलग हैं। शरद दत्त का लेख ‘मंटो तुम ज़िंदा हो’ लाजवाब है।

नरेंद्र मोहन को मैं लंबी कविताओं के संदर्भ से ही जानता था, लेकिन उनका दखल उर्दू में भी है ये ‘दो सीरतों का मालिक’ से पता चला।

नीलाभ ने ‘दखलंदाज़ी का अधिकार’ में मंटो के प्रतिरोध को रेखांकित किया है, हर बड़ा लेखक हस्तक्षेप करता है, दखल की सघनता के अनुपात में लेखन का बड़प्पन है। रेखाचित्र किशत-ए-ज़ाफ़रान’ फिल्मी दुनिया का क्लोज़अप है, मेधा का आलेख ‘मेरे अफ़साने सेहतमंद लोगों के लिए हैं’ मंटो की अश्लीलता का रचनात्मक खंडन है। हरदर्शन सहगल का संस्मरण ‘क्योंकि वह मेरा दोस्त था’ एक ज़बरदस्ती की रचना है। आनंदस्वरूप श्रीवास्तव ने ‘अभिव्यक्ति का अनोखा कलमकार’ में मंटो का संक्षिप्त किंतु सारगर्भित मूल्यांकन किया है।

—हितेश व्यास, कोटा (राजस्थान)

वह कालजयी है...

● अंक पढ़ा। आपने मेरी हसरत पूरी कर दी। मैं वर्षों से सआदत हसन मंटो को जानने की जिज्ञासा अपने मन में पाल रहा था। तप्त जेठ की दोपहरी में *आजकल* की यह प्रति मेरे हाथों में पड़ी। प्यास तो नहीं बुझी मगर जानकारी बहुत मिली। ज्ञान किसी देश की सीमा रेखा में पलता नहीं। किसी भाषा में बंधकर भी नहीं रहता है। मंटो की काया पाकिस्तानी ज़मीं में अवश्य दफ़न हुई परंतु, उनकी आत्मा भारत के भू-भाग पर ही फिरती रही। उनकी रचनाएं उर्दू भाषा में होती रहीं लेकिन भारत की भाषाओं में उनकी आस्था जमी रही।

सआदत हसन को तत्कालीन समाज ने रचनाकार के रूप में स्वीकार नहीं किया। आज उसे भूलने का दर्द बार-बार उभर आता है। सचमुच मंटो मरा नहीं, वह कालजयी है।

—अरुण, बेगूसराय (बिहार)

विशेषांकों की परंपरा में मंटो

● सआदत हसन मंटो पर केंद्रित अंक उत्तरदायित्व के उच्च सोपानों को छूटा साहित्य के आकाश में एक नक्षत्र की भांति अपनी चमक बिखेर रहा है।

इस्मत चुगताई, अहमद नदीम क़ासिमी, शरद दत्त, अनुराधा, नरेंद्र मोहन, नीलाभ, सुशील सिद्धार्थ, आनंदस्वरूप श्रीवास्तव, चंदन श्रीवास्तव, हरदर्शन सहगल तथा मेधा ने अंक को समृद्ध बनाने में अपनी-अपनी कलम का सार्थक उपयोग किया है।

‘प्रसंगवश’ भी कई सवाल खड़े करते हुए मन को झकझोर देने वाला है। मंटो की दो रचनाएं परिपूर्णता प्रदान करती हैं।

—शिव उदयभान सिंह चन्देल ‘सार्थ’,
कानपुर (उ.प्र.)

समय से आगे

● मंटो को आपने जिंदा कर दिया, साधुवाद! मैंने अपने स्कूली जीवन में ही मंटो को पढ़ा था, तब और आज भी मुझे मंटो की बेबाकी ने खासा प्रभावित किया। मंटो अपने समय से काफी आगे के कहानीकार थे, उनको लोग समझ नहीं सके। हमारे यहां अक्सर ऐसा ही होता है। जीवन भर लेखकों को सम्मान नहीं मिलता, मरने पर पूजे जाते हैं, पुरस्कृत किए जाते हैं।

—अजय कुमार, आनंद नगर, आरा

मंटो होना होगा

● सआदत हसन मंटो एक व्यक्ति नहीं बल्कि युग परवर्तक स्वराघात है। आज सभ्य सभ्यता में जिन शब्दों को नंगा कहा जाता है वह नंगापन आज सबकी जेब में है किस-किस पर प्रतिबंध लगाएंगे। जिन-जिन उद्गारों ने समाज के ढोंग पर प्रहार किए हैं उन्हें विभिन्न सत्ताओं, शक्तियों का विरोध सहना पड़ रहा है। साहित्य कब तक बुराई और बुरे लोगों से सहमा रहेगा। हर लेखक को मंटो होना होगा।

—बहोरिक राम साहू, बिलासपुर
(छत्तीसगढ़)

मापदंडों पर खरा

● मंटो पर केंद्रित इस अंक में इस्मत चुगताई और अहमद नदीम

कासिमी के संस्मरणों और दुर्लभ चित्रों के चलते उनके व्यक्तित्व को नज़दीक से देख, परख पाया। मंटो की रचनाएं और हरदर्शन सहगल के आलेख प्रभावी बन पड़े हैं।

प्रस्तुतीकरण, गुणवत्ता अभिव्यक्ति और तकनीक सभी मापदंडों पर यह अंक खरा उतरता है।

—भूपेन्द्र कुमार सिंह
प्रोफेसर कालोनी, रीवा (म.प्र.)

मंटो को समर्पित

● अंक संवेदनशील कहानीकार मंटो को समर्पित है। अंक के सभी आलेख मंटो के अमूल्य योगदान का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं, उन्हें भावभीनी विनम्र श्रद्धांजलि! आजकल का साहित्यकारों के नाम विशेषांक

निकालना तो प्रशंसनीय है किंतु इससे अन्य समसामयिक विषयों, आलेखों, भावपूर्ण कविताओं से वंचित रहना पड़ता है, जो असहनीय-सा हो जाता है। अतः विशेषांक के साथ अन्य विधाओं को भी पूर्ववत् स्थान दें।

—गौरीशंकर वैश्य ‘विनम्र’, लखनऊ

अद्भुत सामग्री

● अंक प्राप्त हुआ। अंक संग्रहणीय तो है ही बेजोड़ भी है। कई नई दिलचस्प बातें—मंटो की शख्सियत और लेखनी के बारे में ज्ञात हुई। दस रुपये में ऐसी अद्भुत साहित्यिक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए साधुवाद!

—प्रमोद कुमार सिंह
बुद्धा कॉलोनी, पटना

आजकल का ग्राहक बनें :

मैं आपकी पत्रिका *-----का ☐ एक वर्ष (100 रुपये)

☐ दो वर्ष (180 रुपये) ☐ तीन वर्ष (250 रुपये) का ग्राहक बनना चाहता हूं।

चंदे का रुपये----- भारतीय पोस्टल आर्डर/ मनीआर्डर / डिमांड ड्राफ्ट
सं-----दिनांक-----संलग्न है।

हस्ताक्षर -----

नाम : -----

पता : -----

पिन :

● कृपया अपना चंदा डी.डी./ पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर, अपर महा निदेशक (प्रमारी), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : बाल भारती, आजकल (उर्दू), कुरुक्षेत्र (हिंदी व अंग्रेजी), योजना (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)।

चंदा निम्न पत्र पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लॉक 4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

रामविलास शर्मा : एक शताब्दी यात्रा

(1912-2000)

नाम : रामविलास शर्मा; **जन्मतिथि :** 10 अक्टूबर 1912; **जन्म-स्थान :** ऊंचगांव सानी, जिला-उन्नाव (उ.प्र.); **पिता का नाम :** गयादीन शर्मा (दौआ); **मां का नाम :** श्रीमती बेटाना शर्मा (अम्मा); **भाई :** 1. भगवानदीन (भैया), 2. रामस्वरूप (चौबे), 3. रामशरण (मुंशी), 4. रामशंकर (अवस्थी), 5. रामनरेश (नरेश) सबसे छोटे भाई; **बहन :** रामप्यारी (दीदी); **पत्नी :** श्रीमती कैलाश कुमारी (मालकिन); **पुत्र :** 1. ललित मोहन, 2. भुवन मोहन, 3. विजय मोहन; **पुत्री :** 1. शोभा 2. सेवा 3. स्वाति।

प्रारंभिक शिक्षा : सरस्वती पाठशाला, झांसी में। मैकडनल हाईस्कूल में छठी कक्षा में दाखिला। सातवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। (आठवें दर्जे में पढ़ रहे थे तभी विवाह हो गया। हाईस्कूल 1928 में किया। रुस्तम सैटिन (बाद के दिनों में कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में प्रसिद्ध) उन्हीं दिनों दोस्त बने। इंटरमीडिएट कालेज में दाखिला। *रणदुंदुभि* नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली।

उच्च शिक्षा : बी.ए. आनर्स, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1932; (1933 में महाकवि निराला से परिचय); एम.ए. (अंग्रेजी साहित्य), लखनऊ विश्वविद्यालय, 1934 (1934 में निराला पर रामविलास शर्मा का लेख *चांद* पत्रिका में छपा। यह उनका पहला आलोचनात्मक लेख था। पी-एच.डी., लखनऊ विश्वविद्यालय से, 1938 में।

कार्यक्षेत्र

1938-1943 : लखनऊ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग में अध्यापन

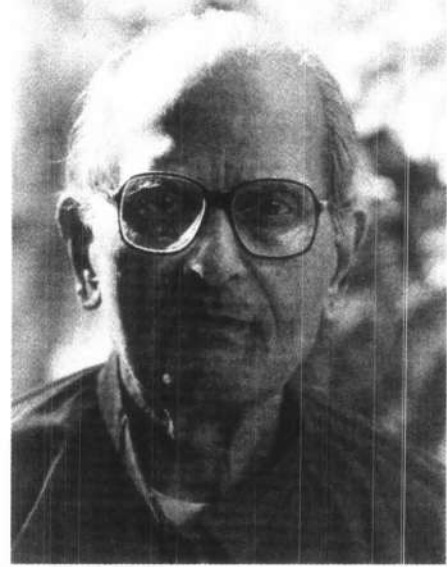
1943-1971 : आगरा (उत्तर प्रदेश) के बी.आर. (बलवंत राव राजपूत) कॉलेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष।

1971-1974 : के.एम. हिंदी संस्थान के निदेशक रहे। 1974 में अवकाश ग्रहण। 1949-1953 तक अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव भी रहे।

निधन : 30 मई, 2000-रात साढ़े बारह बजे के आसपास, नई दिल्ली के विकासपुरी वाले अपने आवास पर।

पुरस्कार-सम्मान/फ़ैलोशिप

1. साहित्य अकादमी पुरस्कार (1970), *निराला की साहित्य साधना* पुस्तक के लिए।
2. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा तुलसी पुरस्कार (1978), *निराला की साहित्य साधना* तीन खंडों के लिए।
3. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा विशिष्ट पुरस्कार, दीर्घकालीन हिंदी सेवाओं के लिए (1978)।
4. रामकुमार भुवाल का पुरस्कार (1980), भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता द्वारा, *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* पुस्तक पर।
5. सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार (1982), *भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद* (दो खंड) पुस्तक के लिए।
6. प्रगतिशील लेखक संघ, मध्य प्रदेश द्वारा साहित्य और संस्कृति में योगदान के लिए सम्मान-प्रशस्ति पत्र (1983)।
7. शलाका पुरस्कार (1987), हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा हिंदी भाषा, साहित्य



और संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट एवं उल्लेखनीय योगदान के लिए। इसी वर्ष दिसंबर 1987 में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर आफ लेटर्स की सम्मानोपाधि से विभूषित।

8. भारत भारती पुरस्कार (1988), उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा।
9. व्यास सम्मान (1991), के. के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा तीन खंडीय बृहद ग्रंथ *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी* के लिए।
10. गोकुलचंद्र शुक्ल पुरस्कार (1996), आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान द्वारा।
11. साहित्य अकादमी फ़ैलोशिप (1999)
12. विश्व हिंदी सम्मेलन, लंदन द्वारा सम्मानित (1999), हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अमूल्य योगदान के लिए।
13. सुब्रह्मण्यम भारती सम्मान (2000), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा हिंदी के विकास तथा प्रसार के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं के लिए।
14. शताब्दी सम्मान (2000), हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा भाषा और साहित्य की आजीवन अप्रतिम सेवा के लिए।
15. सहस्राब्दी विश्व हिंदी सम्मेलन, नई दिल्ली द्वारा भारत वर्ष में हिंदी भाषा के विकास एवं संबोधित कार्यक्रमों के सुदृढ़ीकरण में सफल योगदान के लिए प्रशस्ति-पत्र और मेडल (2000)।

रामविलास शर्मा का रचना-संसार

उपन्यास : *चार दिन* (1936), *चांद* प्रेस, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

कविता-संग्रह :

1. *तार सप्तक* (1943) के सात कवियों में से एक। इस संग्रह में कुछ कविताएं संकलित। संपादक-अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
2. *रूप तरंग* (1956), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. *सदियों के सोए जाग उठे* (1988), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. *बुद्ध वैराग्य तथा प्रारंभिक कविताएं* (1997), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

एक प्रहसन :

1. महाराजा कठपुतली सिंह (1946), जनप्रकाशन गृह, मुंबई।

नाटक :

1. पाप के पुजारी (1994), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (यह नाटक 1936 में लिखा गया और लखनऊ में मंचित हुआ था)।

संस्मरण/डायरी/आत्मकथ्य :

1. पंचरत्न (1980), राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।

2. मुंडेर पर सूरज (खंड-1), देर-सवेर (खंड-2), आपस की बातें (खंड-3), 1996 में प्रकाशित-बाद में ये तीनों खंड एक साथ अपनी धरती अपने लोग नाम से 2000 में प्रकाशित, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

वैचारिक निबंध / आलोचना / चिंतन / इतिहास आदि...

(प्रथम संस्करण)

1. प्रेमचंद (1941), सरस्वती प्रेस, बनारस/ 2. भारतेंदु युग (1943), युग मंदिर, उन्नाव/3. निराला (1946), जनप्रकाशन गृह, मुंबई/रामविलास जी
4. संस्कृति और साहित्य (1948), किताब महल, इलाहाबाद/ 5. प्रगति और परंपरा (1948), किताब महल, इलाहाबाद/ 6. प्रेमचंद और उनका युग (1952), मेहरचंद मुंशीराम, दिल्ली/ 7. भारतेंदु हरिश्चंद्र (1953), विद्याधाम, दिल्ली/8. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं (1954), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/ 9. भाषा साहित्य और संस्कृति (1954), किताब महल, इलाहाबाद/ 10. लोक जीवन और साहित्य (1955), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना (1955), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/ 12. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य (1956), हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, काशी/ 13. मानव सभ्यता का विकास (1956), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/ 14. विराम चिन्ह (1957), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/ 15. सन् सत्तावन की राज्य क्रांति (1957), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा/ 16. निराला (बाल जीवनी माला, 1959), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली/ 17. भाषा और समाज (1961), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली/ 18. आस्था और सौंदर्य (1961), किताब महल, इलाहाबाद/ 19. राष्ट्रभाषा की समस्या (1965), अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली/ 20. साहित्य : स्थायी मूल्य और मूल्यांकन (1968), अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली/ 21. निराला की साहित्य साधना (खंड-1, 1969), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 22. निराला की साहित्य साधना (खंड-2, 1972), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 23. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा (1975), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 24. निराला की साहित्य साधना (खंड-3, 1976), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 25. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (1977), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 26. नई कविता और अस्तित्ववाद (1978), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 27. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (1979), प्रथम खंड, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 28. आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों का संबंध (1979), हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 29. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (खंड-2, 1980), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 30. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (खंड-3, 1981), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 31. परंपरा का मूल्यांकन (1981), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 32. भाषा युगबोध और कविता (1981), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 33. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (1982, खंड-1 और खंड-2), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 34. कथा विवेचना और गद्य शिल्प (1982), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 35. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य (1984), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 36. लोक जागरण और हिंदी साहित्य (1985, आचार्य रामचंद्र शुक्ल

के लेखों का संकलन), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 37. मार्क्स, त्रोत्सकी और एशियाई समाज (1986), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद/ 38. भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं (1986), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली/39. हिंदी जाति का साहित्य (1986), राजपाल एंड संस, नई दिल्ली/40. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल (1986), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद/ 41. स्वाधीनता संग्राम और बदलते परिप्रेक्ष्य (1972), (इतिहास और समकालीन परिदृश्य-1), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय/ 42. भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद (1972), (इतिहास और समकालीन परिदृश्य-2), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय/43. शैली और मार्क्स (1992), प्रगतिशील लेखक संघ, अंबिकापुर (म.प्र.)/44. पश्चिम एशिया और ऋग्वेद (1974), (इतिहास और समकालीन परिदृश्य-3), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली/45. इतिहास दर्शन (1995), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली/46. भारतीय साहित्य की भूमिका (1996), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/47. भारतीय नवजागरण और यूरोप (1996), (इतिहास और समकालीन परिदृश्य-4), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली/48. जहाज़ और तूफान (खंड-1, 1996), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 49. जहाज़ और तूफान (खंड-2, 1996), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली/50. भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, खंड-1 (1999), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 51. भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, खंड-2 (1999), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली/ 52. गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएं (2000), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली/ 53. ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा (संपादक-राजमल बोरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली/ 54. भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास (2001), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली/ 55. पाश्चात्य दर्शन और सामाजिक अंतर्विरोध-थलेस से मार्क्स तक (संपादक-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

साक्षात्कार/बातचीत :

1. साक्षात्कार : डा. रामविलास शर्मा से बातचीत (1986, सं. कर्णसिंह चौहान), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. मेरे साक्षात्कार (1994), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
3. आज के सवाल और मार्क्सवाद (2001, सं. अजय तिवारी), स्वराज प्रकाशन, दिल्ली

पत्र-संकलन :

1. मित्र संवाद (1992; केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा के पत्र), परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
2. तीन महारथियों के पत्र (1997), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. कवियों के पत्र (2000), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. अन्न कुशल तथास्तु (2004, रामविलास शर्मा और अमृतलाल नागर के पत्र) किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

संपादित कृतियां :

1. राग-विराग (1974; निराला जी की कविताओं का संकलन), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. घर की बात (1983), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. बड़े भाई (1986), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. श्रम का सूरज (1986), (केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं) परिमल

प्रकाशन, इलाहाबाद

5. आज की दुनिया और लेनिन (1992; लेनिन की रचनाओं के चुने हुए अंश), अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
6. स्वाधीनता और समाजवाद (2001; रामवृक्ष बेनीपुरी के लेखों का संकलन), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली
7. स्वाधीनता और समाजवाद (माखनलाल चतुर्वेदी के लेखों का संकलन), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली

अंग्रेजी में प्रकाशित कृतियां :

1. An Introduction to the English Romantic Poetry (1946), प्रकाशक : एन.आर. अग्रवाल एंड कं., आगरा
2. The Question of an Opligatory State Language in India (1954), प्रकाशक : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
3. Studies in Ninteenth Century Poetry (1965), प्रकाशक : पुस्तक भवन, आगरा
4. Essays on Shakesperean Tragedy (1965), प्रकाशक : शिवलाल अग्रवाल एंड कं., आगरा

अनूदित पुस्तकें :

स्वामी विवेकानंद द्वारा लिखी किताबों का अनुवाद

1. भक्ति और वेदांत (1933), सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ
2. कर्मयोग (1936), सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ
3. राजयोग (1936), सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ

अन्य पुस्तकों के अनुवाद :

4. सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास (1944), जनप्रकाशन गृह, मुंबई
5. माओ त्से तुंग ग्रंथावली (प्रथम भाग; 1957), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-55
6. कविताएं : निकोलाई वाप्सरोव, बुल्गारियाई कवि (1960), अखिल भारतीय शांति परिषद, नई दिल्ली
7. पूंजी (खंड-2), लेखक : कार्ल मार्क्स (1974), प्रगति प्रकाशन, मास्को
8. आज का भारत : लेखक-रजनी पामदत्त (1947), जनप्रकाशन गृह, मुंबई, (सन् 2000 में ग्रंथशिल्पी द्वारा पुनः प्रकाशित)

- अनुराधा

समुद्र के किनारे : रामविलास शर्मा

सागर लंबी सांसें भरता है
सिर धुनती है लहर-लहर
बूंदी-बादर में एक वही स्वर
गूंज रहा है हहर-हहर
सागर की छाती से उठकर
यह टकराती है कहां लहर?
जिस ठौर हृदय में जलती है
वह याद तुम्हारी आठ पहर
बस एक नखत ही चमक रहा है
अब भी काली लहरों पर
जिसको न अभी तक ढंके पाए हैं
सावन के बूंदी-बादर
यह जीवन यदि अपना होता
यदि वश होता अपने ऊपर
यह दुखी हृदय भी भर आता
भूले दुख से जैसे सागर
वह डूब गया चंचल तारा
जो चमक रहा था लहरों पर
सावन के बूंदी-बादर में
अब एक वही स्वर हहर-हहर

सागर की छाती से उठकर
यह टकराती है कहां लहर?
जिस ठौर नखत वह बुझकर भी
जलता रहता है आठ पहर
सागर लंबी सांसें भरता है
सिर धुनती है लहर-लहर
पर आगे बढ़ता है मानव
अपनेपन से ऊपर उठकर
आगे सागर का जल अथाह
ऊपर हैं नीर भरे बादर
बढ़ता है फिर भी जनसमूह
जल की इस जड़ता के ऊपर
बैठा है कौन किनारे पर
यह गरज रहा है जन सागर?
पीछे हटकर सिर धुनकर भी
आगे बढ़ती है लहर-लहर
दुख के इस हहर-हहर में भी
ऊंचा उठता है जय का स्वर
सीमा के बंधन तोड़ रही है
सागर की प्रत्येक लहर।

(1943)

रूपतरंग (वाणी प्रकाशन) से साभार

एक इंटरव्यू में स्मृतियों की चहल-पहल

अभी-अभी निराला से हाथ मिलाकर आए थे वे
सुनाने लगे हाल

कि कैसे मिले थे पहली दफ़ा

और कैसा था रोमांच

तब निराला लगते थे बिल्कुल यूनानी देवताओं जैसे!

सुनाने लगे औचक...कि जब पार्क में बैठकर सुनी थीं उनसे
कविताएं

टैगोर की तो कैसा था समां!

सुना रहे थे तो बीच में ही दिलचस्प एंट्री लेते

चले आए कहीं से टहलते-टहलते

नागर जी

दोनों मिले धधाकर और होने लगा नाटक बड़ा प्यारा-सा

नागर जी बोले, हम तुमसे बड़े हैं, आप कहो

क्या तुम-तुम लगा रखा है!

मगर रामविलास ज़िद पर हैं कि आप हमसे न कहा जाएगा।

यह नाटक कुछ और दूर तक चल सकता था

कि इतने में खरामां-खरामां आए कहीं से चलकर केदार...

बड़े गहरे थे डूबे सुबह-सुबह की आदिवसना

केन की स्मृतियों में!...

फिर तीनों के मिलने पर तीनों की पुरानी स्मृतियों ने मिलकर

वो मचाया गुलगपाड़ा कि भूलकर

इंटरव्यू

भूलकर सारी सुस्ती-फुर्ती ज़माने की

मैं देखता रहा

एक अथक फिल्म जो मेरे सामने चल रही थी और

अभी चलनी थी अनंत काल तक!

वही मुलायम हंसी

प्रश्न पूछते-पूछते मैं ठिठका

चौंककर देखता हूं चेहरा

होंठों में छिपी गुपचुप, एक बारीक-सी हंसी की रेखा।

शुरू में शुरुआत थी सीधी-सादी

एक सीधी, सरल पगडंडी, फिर अचानक एक मोड़...

ओर लो, एक ठहाका भीठ-सा हवा में उड़ रहा है...

उड़ते हुए बनपाखियों की तरह!

वही मुलायम हंसी, जो तुंग हिमालय की हिमालयता को
थोड़ा और बड़ा कर जाती है।

चौंककर मैं देखता हूं

अरे, गायब वह चेहरा, जो अभी-अभी यहां था...

जैसे एक सवाल और दूसरे सवाल के बीच के अंतराल में
वे चुपके से टहलने निकल गए हों।

और अब नहा-धोकर

सुभद्राकुमारी चौहान के हाथ का सिया

नया खादी का कुरता पहने उन्हें ही दिखा रहे हैं-

‘देखिए, जंच गया न, एकदम फिट...!’

कि अगले ही पल मुख़ातिब हैं

धनवंतकुमारी उर्फ़ धन्नो से

‘ये मुंशी जी थोड़ा अकड़े हुए, थोड़ा टेढ़े हैं इन्हें ज़रा बांधकर रखना
चाहिए।’

हंसी...हंसी...फिर-फिर हंसी...

और फिर अचानक तीसरी पीढ़ी को

चिट्ठी लिखने में लीन-‘बात तो तुमने इंटरस्टिंग लिखी है
मुझे याद आ गई शैले की कविता...!’

कहां से पकड़ूं उन्हें

कहां...?

सवाल मेरे भीतर, पिंजरे में कैद किसी परिंदे की तरह,
फड़फड़ाता है...

कि अचानक फिर दिखाई दिए वे-काशी में

सुरेश्वर के खींचे जानदार फोटोओं में

छड़ी लिए हाथ में तेज़-तेज़ टहलने जा रहे हैं

यूनिवर्सिटी कैंपस में मुंह अंधेरे...टहलते-टहलते गुम हो जाते हैं।

...और फिर अभी-अभी दिख गए

रेल के दरवाज़े पर खड़े, मंद-मंद मुसकराते, हाथ हिला रहे हैं...

शायद कहीं जाने की तैयारी...शायद।

हाथ हिलता है...हिलता है...हिलता है...

और यों ही यात्रा तमाम हो जाती है।

डायरी के पन्ने

रामविलास शर्मा की पुस्तक पंचरत्न में साहित्य की पांच विधाओं—रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, डायरी और पत्र विधा में रचनाओं का सृजन हुआ है। प्रस्तुत है पुस्तक पंचरत्न से 'डायरी के पन्ने' में रेखाचित्र, पत्र और संस्मरण विधाओं की एक बानगी ...

वृंदावन लाल वर्मा

(30.11.58)

(31.3.54)

वर्मा जी डी. लिट्. लेने आए थे। 22 नवंबर को कन्वोकेशन था। तभी

कालेज से घूमते हुए सबेरे हरिशंकर जी के यहां वृंदावन लाल वर्मा जी से मिला। खाकी जाधिया, बनियान, सर पर बालों में सफेदी के साथ अब भी स्याही, चांद साफ़ लेकिन पूरी तरह चमकती हुई नहीं। गले मिले, आजकल के नौजवानों की तरह नहीं, भरपूर बाहों से, हृदय से हृदय लगाकर।

चंदेलों पर उपन्यास लिखना चाहते हैं। कारीगरों के नाम कुछ मंदिरों में उन्हें मिले हैं। खजुराहो की विलासपूर्ण मुद्राओं से दुर्गा की ध्यानस्थ मुद्रा की तुलना कर रहे थे। बताया कि वैदिक काल के बाद वाले युग पर काम किया है। नैमिषारण्य और अयोध्या पर उपन्यास लिखेंगे। सोहराब मोदी से बंबई में मिले थे और कैसे झड़प हुई थी, बताया। इनकी शर्त थी कि हीरोइन के लिए (झांसी की रानी की भूमिका के लिए) वही स्त्री चुनी जाएगी, जिसे ये कहेंगे (मोदी ने कुछ रोब झाड़ा। इन्होंने कहा—My books are read by millions. (मेरी पुस्तकों के पढ़ने वालों की संख्या लाखों में है)।

दशहरे में राजस्थान यात्रा का कार्यक्रम बना। अगली गर्मियों में दक्षिण-यात्रा का विचार हुआ। मैंने उनसे कहा कि अंग्रेजों से हमारी लड़ाइयों को लेकर एक उपन्यास और लिखें। उन्होंने तुरंत बच्चों की तरह उठकर फ़ौजी सलूट झाड़ा और हामी भरी। मैंने कहा कि अपनी पुस्तक *प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं* में मैंने इतिहास के प्रति राहुल जी के दृष्टिकोण का खंडन किया है, 'लक्ष्मीबाई' वाले दृष्टिकोण का समर्थन किया है। बोले—अभी और गाली खाओगे। उनमें नौजवानों जैसी मस्ती है, मस्ती के नीचे कुशल व्यापार बुद्धि भी छिपी है। लखनऊ में अमृतलाल नागर के उपन्यास *बूंद और समुद्र* का कुछ अंश सुना था; अच्छा लगा था। दक्षिण भारत की चर्चा चलने पर मीनाक्षी मंदिर में पुराने कवियों की मूर्तियां भी मंदिर में हैं, यह सुनकर बहुत खुश हुए। हाथ में चाय का प्याला था। बोले नुकसान हो जाएगा, नहीं तो उछल पड़ता।



तय किया, झांसी जाएंगे। पहली बार मैं आगरा युनिवर्सिटी के कन्वोकेशन में गया। वर्मा जी ने मैथिलीशरण गुप्त से उधार लिया हुआ गाउन पहना था। सिर पर लाल टोपी भी थी। सबसे पहले इन्हें डिग्री मिली। उनके कृतित्व के बारे में संक्षिप्त विवरण अंग्रेजी में पढ़ा गया। *समालोचक* के दफ्तर में गोष्ठी होने को थी। वर्मा जी को साथ लाना था। अचानक कन्वोकेशन में लापता हो गए। बड़ी खोज खबर के बाद पता चला कि सोशल सायन्सेज़ के इंस्टीट्यूट में राज्यपाल के साथ टी पार्टी में हैं। दूर से गंजी चांद दिखाई दी और मैंने पहचान लिया। 'समालोचक गोष्ठी' में खूब मनोविनोद रहा। विजयनगर कालोनी के साहित्य विद्यालय में उनका भाषण सबसे बढ़िया रहा। बोले—इतिहास के निर्माता कुछ चुने हुए वीर नहीं हैं, जनता है। भाषा के लिए कहा—तलवार में पानी न हुआ तो खूबसूरत म्यान लेकर क्या करेंगे?

22 को सबेरे सेंट जोन्स कालेज के पुल पर मिले थे। मैंने बाहों की मसल्स टटोलीं; मेरी मसल्स से इयोढ़ी थीं। सक्कन (वर्मा जी के पुत्र) की मसल्स मेरी जैसी हैं पर ज्यादा सख्त हैं। झांसी में वर्मा जी का जवानी का चित्र देखा। हमारी से दुगनी मसल्स, इयोढ़ा सीना, सवाई गर्दन, सवाया माथा। शेर मर्द की तस्वीर थी। (11.9.65)

परसों शाम वृ. ला. वर्मा जी और भगवानदास माहौर आए। माहौर का वाइवा (पी-एच.डी. की मौलिक परीक्षा) था। कल डाई बजे आगरा कालेज में वर्मा जी का भाषण था। नीचे उतरकर पुस्तकालय की तरफ बाईं ओर नए हॉल में भाषण था। उपस्थिति लगभग तीन सौ, इनमें लड़कियां लगभग दो सौ। माइक का प्रबंध नहीं। अध्यक्ष की आवाज़ पीं-पीं। बार-बार सबको शांत करें। वर्मा जी ने कहा—आप लोग शोर करते रहें तो अच्छा, मैं बोलकर जल्दी बैठ जाऊंगा। शायद लोगों ने यह भी न सुना। कुछ इतिहास, कुछ उपन्यास, कुछ भारत-पाक युद्ध पर बोलकर बैठ गए। कुल दस मिनट बोले होंगे।

जगन्नाथ तिवारी टंकारे बोले। 65-66 के, पर खूब स्वस्थ स्वर। बोले यही कि इनके उपन्यासों में जीवन सजीव हो गया है, पर लोगों ने ध्यान से सुना। अध्यक्ष ने मुझसे कहा-इनका (माहौर का) परिचय आप दे दीजिए। मैंने सुझाया-बस इतना कह दीजिए कि भगतसिंह और आज़ाद के साथी हैं। वह बोलने खड़े हुए तो बड़ी तारीफ़ की, महान क्रांतिकारी हैं, राष्ट्र की सेवा की है। फिर रुककर मुझसे पूछा-इनका नाम क्या है। मैंने ज़ोर से कहा-भगवानदास माहौर।

वर्मा जी 76 पार हैं। ढल गए हैं। कम खाते हैं। मिस्सी रोटी, भुने आलू पसंद हैं। दाल में भिगोकर खाई। चाय में दूध पड़ने पर भी नींबू डाला। दूध पीना चाहते थे, रात में मिला नहीं। सबरे-शाम आसन करते हैं। ज्यादातर सांस की कसरतें; खड़े होकर, नीचे झुके, ऊपर उठे, छी-छी करके फेफड़ों की हवा जल्दी-जल्दी भीतर-बाहर; घुटनों को भीतर की ओर झुके-झुके घुमाते हुए। 9-10 की रात को हवाई हमले का साइन बजा। वर्मा जी और माहौर मेरे साथ घर से निकलकर लॉन में आ गए। आसमान में ट्रेसर बुलेट; आतिशबाजी-सी; ऐंटी एयरक्राफ्ट तोपों की आवाज़। बिजली गायब। लोग गुटों में सड़क पर; काफी तहलका।

अमृतलाल नागर

(25.10.65)

कल अमृत आए। इलाहाबाद से लखनऊ, लखनऊ से आगरा। दोनों यात्राएं रात को। बहुत थके थे। कहने लगे-कम चले; फर्स्ट में चले; या फिर पैदल चले। सर में जहां-तहां सफेद बाल चमकने लगे हैं। पंत जी से बातें हुई थीं। पंत जी को विश्वास है कि निराला जी ने रामविलास से उन पर तांत्रिक प्रयोग कराए, उनकी बुद्धि भ्रष्ट करने के लिए। मैंने पूछा-प्रयोग सफल हुआ या नहीं? अमृत-उनकी समझ में वह बच गए। अमृत ने बताया-नई धारा में किसी ने उनका इंटरव्यू लिया है जो छपा है, दो महीने पहले। उसमें तांत्रिक प्रयोग की बात कही गई है।

(26.10.65)

बेगम समरू का किस्सा सुनाया (नागर जी ने मुझे) राइन हार्ट से प्रेम-फ्रांसीसी अफसर और टामस से प्रेम। कश्मीरी लड़की, नाचने वाली, अंग्रेज़ी सीखी। राइन हार्ट की प्रेमिका बांदी को दीवाल में ज़िंदा चुनवा दिया। शाह आलम की समर्थक, ईस्ट इंडिया कंपनी से सुलह की नीति। रुहेलखंड के बंगशों का साथ देने का वादा करके वृंदावन के राजा गोवर्धनराय से हमला कराया। आगे गाड़ी ठप। खोदने पर भी मराठों आदि के साथ उसके कारनामे न खुले। उपन्यास प्रेम कहानी होगा।

शाह आलम पर 1795 की छपी किताब इनके हाथ लगी; बहुत खुश। बोले-इसी से भगवान पर भरोसा होता है, हम इतने काहिल हैं कि लाइब्रेरी तक न गए, बनिया (ज्ञानचंद जैन) दे गया, लाइब्रेरियन मेहरबान है, रिज़र्व सेक्शन की किताब भी भिजवा देता है, भगवान न होता तो यह किताब क्यों मिलती?

मैंने कहा-अब तुम पी-एच. डी कर डालो।

पंडित जी ने जवाब दिया-पहले इंटर करना पड़ेगा, फिर बी.ए. फिर एम.ए., बड़ी मेहनत पड़ेगी। अब पी-एच.डी., वी.एच.डी. का मोह नहीं है। पहले था। तुमने पंडित की उपाधि दे दी, वह बहुत है। पब्लिक से वह उपाधि और मिल जाए।

पंडितजी आजकल अपनी स्मृति ट्रेन कर रहे हैं। शिवतांडव स्तोत्र पूरा याद कर लिया, गंगालहरी में लगे हैं; पूरी गीता याद करने का हीसला है। कुर्सी पर पालथी मारकर बैठ गए। सस्वर स्तोत्र पाठ करने लगे। अधखुली आंखें, करुण कंठ स्वर, श्लोक पढ़ने के बाद हाथ जोड़कर खोपड़ी नचवाई।

लिखने के जोम में कभी-कभी सारा दिन चाय-बिस्कुट पर काट देते हैं। लेकिन क्या मेहनत! क्या भाषा पर अधिकार अथवा शब्दों का मौलिक प्रयोग, जनता की बोली बानी की अनूठी पकड़!

(15.8.68)

दिल्ली से लखनऊ जाते हुए अमृत यहां आए 13 को। पिछले दो सालों को देखते स्वास्थ्य अच्छा था। नैमिषारण्य लिख रहे हैं। उनके उपन्यास के नायक व्यास जी ब्रह्मचर्य साध रहे हैं। नागरजी ने कहा-“कुछ दिनों से मैं भी साथे हूँ।”

नागरी प्रचारिणी सभा में उनका भाषण। अठारह साल के बलभद्रसिंह, चहलारी के राजा ने 600 आदमी लेकर बाराबंकी में अंग्रेज़ों की राह रोकी। आखिरी दम तक लड़े और सब मारे गए। बहराइच के पास के थे, बेगम के बुलावे पर आए थे।

आज लखनऊ जा रहे हैं।

(22.3.73)

हाथरस के कालेज में कान्फ़ेक्शन था। कुलपति बालकृष्ण राव के साथ मैं भी गया। कान्फ़ेक्शन ऐड्रेस के लिए अमृत आने वाले थे। आने में देर। कार्रवाई शुरू। आखिर आए। काला जड़ाऊ गाउन, खददर की धोती चप्पल में कुर्सियों की दोनों कतारों के बीच, नागर सखी गति से मंच की ओर बढ़ते हुए, समस्त छात्र, अध्यापक, कुलपति समेत, मुख्य अतिथि के सम्मान में खड़े हुए।

अमृत का भाषण, कुछ लतीफ़े, कुछ उपदेश, कुछ तुलसीदास वाली आस्था। पं. जी जमे, उखड़े नहीं। चमचागीरी के प्रति छात्रों को सावधान किया। अलिखित, स्वतःस्फूर्त, धारा प्रवाह, कान्फ़ेक्शनों की बोरियत को काटता हुआ, अनूठा भाषण।

रास्ते में, मालगाड़ी पटरी से उतरकर गिरी पड़ी थी। दूसरी राह से, फर्रुखाबाद होते हुए आए। दिन भर के भूखे। हाथरस चार बजे पहुंचे, साढ़े चार बजे पंडाल में। बोले-चौक हमारी युनिवर्सिटी, हम उसके वाइस चान्सलर हैं (चौक यानी लखनऊ में उनका मुहल्ला चौक)

रायबरेली के बाबा सीताराम की बातें करते रहे (आगरा लौटकर मेरे घर पर)। तुलसीदास की चौपाइयां सुना-सुनाकर किसान आंदोलन चलाया। बाबा सीताराम पर उपन्यास लिखना चाहते हैं। उसके पहले एक छोटा उपन्यास और।

पहले से स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। प्रसन्न हैं। चित्रकूट जाने को कहते हैं। चैतन्य पर उपन्यास समाप्त कर दिया है।

(25.3.73)

कल (क. मुं.) विद्यापीठ आए। अपने पात्र कैसे चुनते हैं, इस पर बोले। पहले धीरे-धीरे अनमने से, फिर डूबकर, मजे में, धाराप्रवाह। बाबा सीताराम की चर्चा; मई में रायबरेली ज़िले के गांवों में घूमने का विचार; किसान आंदोलन वाले उपन्यास के लिए सामग्री बटोरेंगे। शिया मुसलमानों

के रीति-रिवाज पर मसाला, ढोलक के गीत इकट्ठे किए। उनके डॉयलॉग नोट कर लेते हैं। परिवेश की सामग्री के बीच उन्हें फिट करते हैं। सेठ बांकमल के चौबे इनके नाना हैं, बांकमल-सुरोमल हैं। (अध्यापक) मुरारीलाल उग्रेंति ने पूछा-सुरोमल नाम क्यों नहीं रखा? अमृत-तब अपने नाना का नाम भी देना पड़ता। (बूंद और समुद्र की) तीन पात्रों की मिलावट है। लोग कहते हैं-बहुत सजीव है। बिल्लियों वाली घटना मेरे ही घर की है (अ. नागर के घर की)।

आत्मसंघर्ष की बात। सोते का पानी खत्म। नए सिरे से खोदना है। पुराना अमृतलाल नागर-अब नहीं। नया अमृतलाल नागर आएगा।

केदार से बातचीत

(3.1.36)

आज बहुत दिनों के संचित आलस्य को हठात दूर कर तुम्हारा 15. 11.35 का पत्र सामने रख तुम्हें उत्तर लिखने बैठा हूँ, अथवा एक नया पत्र लिखूंगा। तुम्हें पत्र लिखने का विचार सदा दिमाग में चक्कर मारा करता था, इसलिए तुम समझ सकते हो, इस देरी का कारण मेरी उदासीनता नहीं। प्रत्युत पत्र न लिखने से तुम्हारा मुझे सदा ही ध्यान रहा।

तुमने लिखा है-‘मैं तो स्वयं साफ हूँ।’ ऐसा विश्वास दिलाने की चेष्टा न करो, किसी को भी। शब्दों में ऐसा कहने से किसी को विश्वास होगा भी, इसमें संदेह है। मित्रता करो, मुझसे ही नहीं, जिस किसी से भी हो सके। ‘जिन खोजा तिन पाइयां’ को चरितार्थ करने का एक ही ढंग है। अपने को थोड़ा-थोड़ा व्यक्त करते हुए दूसरों को भी जानने की चेष्टा करो। ये दुनियादारी की बातें हैं, पर उस दिन विक्टोरिया पार्क की बातें स्मरण कर विश्वास होता है, उन्हें तुम पहले से ही जानते होगे। तुमने लिखा है-‘न जाने कैसे तुम भी जीवन में समा गए।’-इस पर लिखा। मेरी अच्छाइयों को जानने के पहले धीरे-धीरे मेरी बुराइयों को जान लो जिससे बाद में उनका ज्ञान होने पर तुम मुझे अपने हृदय से सहसा निकाल न फेंको। सच जानो, एक मनचाहे मित्र की न जाने मुझे कब से कितनी आकांक्षा है, और उसके लिए यथाशक्ति चेष्टा की है। परंतु अभी तक वह साध जैसी की तैसी बनी है। तुम यदि उसे पूरा कर सको तो इससे अधिक सौभाग्य और क्या होगा?

(12.2.36)

तुमने लिखा है-‘जितना एक झलक में जाना जा सकता है, उतना ही जीवन भर में।’ यह किन्हीं महापुरुषों के लिए सत्य हो सकता है; उनमें से मैं नहीं। मैंने अपने स्टैंडर्ड से तुम्हें लिखा था। यदि तुम उनमें से हो तो गर्व की बात है।

बुराई-बुराई से भी मिलती है, यह क्या तुम नहीं देखते? मुझे तो दुनिया में संगठित बुराई असंगठित अच्छाई को सताती दीख पड़ती है।

इसी तरह बुराइयां जानते जाओगे, पत्र तो देर में लिखा ही है। उस बुराई का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। यदि एक झलक में मुझे पहचान गए होंगे तो क्या बुराइयां छिपी रही होंगी?

जनवरी के अंत में किसी दिन मैं एक पड़ोसी की दाह-क्रिया में कानपुर गया था परंतु अवकाश न होने और साथ में होने के कारण गंगा के इसी ओर से लौट आया। एक कानपुर के सज्जन से, जो यहां हैं और साथ गए थे, केवल यह पूछ सका कि डी.ए.वी. कालेज किस ओर है। उन्होंने पश्चिम की

ओर उंगली उठाकर कहा, उधर बड़ी दूर। कुछ चिमनियों का धुआं उधर आकाश को धुंधला कर रहा था। मैंने सोचा, वहीं कहीं होस्टल के कमरे में शायद तुम लेते कोई पुस्तक पढ़ रहे होगे या किसी का ध्यान कर रहे होगे।

तुमने लॉ लिया है या एम.ए. किया है, मुझे कुछ स्मरण नहीं, लिखना। अनेक कठिनाइयां हैं। इधर आना संभव नहीं दिखाई देता परंतु कभी आऊंगा अवश्य, यह आशा किया करता हूँ।

(31.8.38)

जरा सांस लेकर जल्दी ही मैं तुम्हें पत्र लिखने बैठा हूँ। दो महीने से समझो दौड़ में ही हूँ जिससे सांस लेने की फुर्सत नहीं मिली। जुलाई में एक महीने का युनिवर्सिटी में पढ़ाने का काम मिला। उसके बाद ही छह महीने का फिर मिला। दोनों दफे अलग-अलग क्लासों पढ़ानी थीं। Preparations आदि और कालेज के काम से लस्त हो जाता था। दूसरी बार तो ऐसा हुआ कि शाम को खबर लगी और दूसरे दिन से क्लास लेना पड़ा। एकदम से इसलिए बहुत काम करना पड़ा।

रूपाभ में कविताएं देखी होंगी। तुम्हारी ‘शारदीया’ (अर्थात् इस नाम की मेरी कविता) प्रकाश में आ गई। चकल्लस का भाभी अंक निकल गया। भाभी के ही साथ सार्थक है। देखा कि नहीं? निराला जी का ‘देवर का इंद्रजाल’ मजेदार है। उच्छृंखल का विज्ञापन भी निकल गया है। दीवाली तक मित्रों का विचार है निकालने का।

(13.8.38)

यहां इस कदर बादल थे कि पत्र ही न लिख सका। अब भी आसमान में छाए ही रहते हैं। शमशेर का पत्र आया था और उसने इलाहाबाद के बारे में भी यही लिखा था।

शायद अपना पत्र तुम खुद पढ़ो तो अब आश्चर्य करो। आखिर इतना रंजोगम सिर्फ इसलिए कि उच्छृंखल (नरोत्तम नागर द्वारा संपादित पत्र) बंद हो गया। और वह भी केवल मासिक पत्र के रूप में।

अमृत (अमृतलाल नागर) के यहां बैठा हूँ। हज़रत हैं ही नहीं। नौकर से कमरा खुलवा लिया है। पास पढ़ीस जी (बलभद्र दीक्षित) भी हैं। गोमती की तरफ से ऐसी बढ़िया हवा आ रही है कि कुछ गंभीर लिखना नामुमकिन मालूम होता है। मैंने एक भी कविता नहीं लिखी। प्रेमचंद पर दो अध्याय लिखे हैं। आजकल खाने, कसरत करने और सोने के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता।

(10.2.43)

‘साहित्यिकों के परिवारों पर यदि परमात्मा गाज गिराता है तो हम तो उसे रोकेंगे ही।’ इस वाक्य को पढ़ा और फिर पढ़ा। अब याद हो गया है।

‘कक्कू’ (बलभद्र दीक्षित ‘पढ़ीस’) की मृत्यु ने अनेक लेखकों की प्रतिभा को या उनके सोते हुए मनुष्यत्व को जगा दिया है। नरोत्तम (नागर) ने मुझे इधर इतने सुंदर पत्र लिखे हैं; जिनकी मैं स्वप्न में भी आशा न करता था। मेरा नरोत्तम से काफी मतभेद था। परंतु इस तरह के मतभेदों के ऊपर वह मेरे हृदय से आ मिला है-कक्कू की मृत्यु के बाद।

तुम्हारा लेख माधुरी में छप गया है। एक हफ्ते में अंक (पढ़ीस अंक) तुम्हें मिल जाएगा। ‘आग आंसू और जीवन की कहानी’ तुमने बहुत अच्छा लिखा है। अभ्युदय में तुम्हारी चीजें पढ़ता रहा हूँ, हंस में भी। कहीं-कहीं दृष्टिकोण आदि से थोड़ा-सा असहमत हूँ। परंतु तुम्हारी चीजें मुझे बहुत पसंद हैं।

पढ़ीस अंक एक हफ्ते में निकल जाएगा, तब उस देखोगे ही। पढ़ीस जी की रचनाएं पढ़कर अपनी राय लिखना।

निरालाजी पर पुस्तक लिखना आरंभ करने वाला हूँ। 'भारतेन्दु युग' का समर्पण 'श्री केदारनाथ अग्रवाल को' बड़े अक्षरों में छपा है। एक महीना हुए पुस्तक छप गई थी परंतु अभी बंधी नहीं है।

(मई 1943)

निरालाजी पर (मेरी) कविता इस दृष्टिकोण से लिखी गई है। वह छायावादी स्वप्नदृष्टा हैं; अब वे स्वप्न नहीं रहे। स्वप्नों का वह सौंदर्य उनके यथार्थ जीवन पर व्यांय करता है। यह वैषम्य मैंने व्यक्त करने की चेष्टा की है। परंतु स्वप्नदृष्टा होते हुए भी उन्होंने सामाजिक रुढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है। उन्होंने ही लिखा था—

'तुझे बुलाता कृषक अधीर और सिंहों की मांद में आया है आज सियार'। उनके इस विद्रोही भाग से हम लोगों की सहज सहानुभूति है और उस परिपाटी को अधिक विकसित करके हम आगे बढ़ना चाहते हैं। आज अब परिस्थितियों के कारण और स्वार्थी भाइयों के विरोध के कारण वह ध्वस्त और त्रस्त हो गए हैं; तब कौन ऐसा कृतज्ञ होगा जो उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना भी अनुचित समझेगा? सहानुभूति प्रकट करना भी अनुचित समझेगा? सहानुभूति प्रकट करना हमारा धर्म, हमारी कृतज्ञता का प्रकाशन है क्योंकि उन्होंने उस विद्रोही परंपरा को जन्म दिया है जिसके हम अनुयायी हैं। और जब निरालाजी ने लिखा था—तुझे बुलाता कृषक अधीर; चूस लिया है उसका सार, हाड़मात्र ही हैं आधार, ओ विप्लव के पारावार—तब इस परंपरा का अंत कहां होगा? उस जन-राज्य में ही जहां कृषक इस तरह आसमान की ओर, दुर्बल हाथ न उठाएगा। नए कवियों का सामाजिक आदर्श कौन-सा है? वही जिसका संकेत निरालाजी की कविता में मिलता है वह आज ध्वस्त और जर्जर हैं और तुम और जो भी उस विद्रोह पथ पर चलेगा, उसे कठिनाइयों से जूझना होगा। उस पथ पर चलने के लिए मर मिटने की लगन चाहिए। इसीलिए तुम जैसों पर विश्वास करके मैंने लिखा था कि साथी, अपने विद्रोही स्वर को दबाओ मत। तुम्हारे पीछे और नए कवि भी आ रहे हैं। वे उस जनता के राज्य की स्थापना करेंगे। संभव है, कविता में यह सब व्यक्त न हुआ हो, शायद हो न सकता हो। परंतु मेरा दृष्टिकोण यही था।

(20.8.47)

पंत जी से मुलाकात हुई। अरविंद घोष से नई-नई बातें सीख कर आए हैं। 'लोकायतन' खोलेंगे। जिसमें ज्योतिषाचार्य, संस्कृतिद्वार, साहित्यद्वार आदि अनेक द्वार होंगे। बुद्धि का प्रवेश सभी में निषिद्ध होगा। चोबदार अज्ञेय, बच्चन, नरेंद्र वगैरह होंगे—पंत जी खुद हेड जमादार। उम्मीदवारों में मेरा भी नाम लिख लिया है लेकिन मैं यहीं से काम करना चाहता हूँ।

(21.10.47)

तुमने मेरी कोई पुस्तक अभी तक नहीं पढ़ी—इसमें ज्यादा नुकसान नहीं हुआ। अब पढ़ने लायक किताबें लिखने लगूंगा तब तुम तक पहुंच ही जाएंगी। तुमने लिखा है कि संत कवियों पर 'एक वाक्य में' कुछ कह गया था। अजी हज़रत, आपकी भूमिका में मध्यकालीन हिंदी साहित्य के नाम पर सिर्फ रीतिकालीन कविता दिखाई देती है और तुलसी और सूर एक लंबे पैराग्राफ में पलायनवादी सिद्ध किए गए हैं। गलती तो थी ही; जिस लेख में उसका मार्जन किया हो, उसे मेरे पास भेज दो। मैं उसका जिक्र करके बैलेंस बराबर कर दूंगा। ठोंकने-पीटने लायक तुम नहीं हो। जो कुछ कहूंगा मुहब्बत से।

समाज की आर्थिक व्यवस्था और उसका साहित्य पर प्रभाव, इस बारे में मैंने जो कुछ लिखा था, वह शायद साफ नहीं हुआ। इससे मुझे कब इंकार है कि आज का साहित्य जीवन को अधिक अपनाए और उसी के अधिक अनुरूप हो। लेकिन यह जीवन संक्षिप्त रूपों में प्रकट होता है। उसे over simplify नहीं किया जा सकता। साहित्य को आर्थिक व्यवस्था का सीधा प्रतिबिंब समझना हकीकत से इंकार करना है। मिसाल के लिए तुलसीदास ने राजा दशरथ और राजा रामचंद्र का नाम लिया है, इसलिए तुम उन्हें राजसत्ता का पोषक कहकर ही छोड़ दोगे लेकिन भरत के चरित्र में उन्होंने जो करुणा भर दी है, उसके मानववादी महत्व को बिलकुल भूल जाओगे। तुम यह भी बता नहीं सकोगे कि तुलसीदास ने यह क्यों लिखा—

दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु दुरितदहन देखि तुलसी हहा करी।

दरिद्रता को रावण कहना क्या सिर्फ धार्मिकता है? इस तरह के लेखकों में अपने युग की असंगतियां झलकती हैं। तुलसीदास के सामने समाज का वही ढांचा था जो शास्त्रों में लिखा हुआ था लेकिन उनकी सहृदयता बार-बार उससे बगावत करती थी। इस असंगति को पकड़ना आलोचक का काम है। इसी तरह मिल्टन का शैतान दुर्गुणों से भरा हुआ है, फिर भी वह Renaissance के विद्रोह का सबसे बड़ा प्रतीक है। ताल्स्ताय ने धर्म की घूंटी दी थी, फिर भी पूंजीवाद के खिलाफ किसानों के असंतोष को प्रकट करने वाला सबसे बड़ा लेखक वही था। तुम एक पहलू देखते हो, दो विरोधी पहलुओं से मिलकर जो यथार्थ बना है, उसे भूल जाते हो। इति।

(10.6.52)

हवा सन्नाटा खींचे है। पसीने से बदन भीग गया है। अस्वाभाविक अंधेरे से पांच का वक्त आठ का लगता है। धूल और गर्द की आधियां आ चुकीं। ये पानी से भरे बादल हैं जो अपने दबाव से हवा का सांस लेना बंद कर चुके हैं। ये बरसेंगे और इस धरती को वहां तक सींच देंगे जहां से हर दरख्त और सज्जे को रस मिलेगा। हम अपने दोस्तों को कैसे भूल सकते हैं जब धूल की आधियां खत्म हो चुकी हैं और पानी से भरे नीले बादल बरसने को हैं। तुम्हारी शायरी हरी रहे, मिलेंगे जरूर लेकिन कुछ दिन बाद।

(15.12.53)

आजकल क्या लिख रहे हो? तुमसे मिलने को बेहद उत्सुक हूँ—लेकिन यह भारतेन्दु वाली पुस्तक पूरी नहीं हो रही ('भारतेन्दु युग' से भिन्न 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' का जिक्र है।) वाह, क्या गुजब का आदमी था। कवि वचन सुधा से दिए हुए उद्धरण पढ़ोगे तो खुश होगे। दस साल में पत्रकार, नाटककार, कवि, इतिहासकार, वह क्या नहीं रहा, और नई चाल की हिंदी ढालने वाला अलग से।

ठहरो मैं भी कुछ कविता लिख लूं, फिर बांदा आऊंगा। और तुम्हें सुनाऊंगा उपन्यास लिखने का विचार खत्म कर दिया क्या?

चेखव की कहानियां पढ़ी हैं। न कोई कहानी लिखना चाहे तो लिखने लगे। उस्ताद है, उस्ताद।

(9.1.56)

मैं कई साल से कविताएं लिखने की सोच रहा हूँ लेकिन मन में बहुत-सी कविताएं रच डालने के बाद भी भाषा और छंद में उन्हें बांधने की नौबत नहीं आई। स्पष्ट विचार होते तो देर न लगती लेकिन thrill, excitement, अव्यक्त-सी संवेदनाओं को प्रकट करने में दिक्कत होती है।

हां, एक बार गाड़ी चल निकली तो फिर चल निकलेगी। पिछले साल शुक्ल जी पर किताब निकल गई थी। एक लेख संग्रह भी *लोक जीवन और साहित्य* के नाम से, जिसमें *माधुरी* वाले फ़िराक संबंधी लेख भी हैं।

यह पढ़कर आश्चर्य और दुख दोनों हुए कि इतने दिन वकालत करने के बाद तुम्हारी स्थिति चिंताजनक है, तुम्हें मुवकिल नहीं मिलते और तुम पेशा बदलने की सोच रहे हो। इस बारे में और विस्तार से लिखो—अब तुम्हारे ऊपर भार कितना है और क्या अब बिल्कुल यह स्थिति आ गई कि वकालत छोड़कर और कोई धंधा अपनाओ।

मैंने तुम्हारी जिन कविताओं में निशान लगा दिए हैं, वे मुझे ज्यादा अच्छी लगीं। तुम बांदा जैसी जगह में वकालत जैसा पेशा करते हुए कविता को ज़िंदा बनाए हुए हो, यह काम सराहनीय बात है। तुम्हारी कविताओं में अब भी ताज़गी है, अनूठापन है, उपमानों का चमत्कारी प्रभाव है, तीक्ष्ण और कोमल संवेदनाएं हैं। लेकिन अपनी अनुभूति को बराबर रिफ़ेश करते रहना ज़रूरी है और भाषा, imagery, छंद वगैरह पर और मेहनत करना ज़रूरी है। कविता कला है, सुंदर है। उसके कलात्मक सौंदर्य पर और ध्यान देना ज़रूरी है। (27. 2.57)

इस महीने कोर्स खत्म कराने में लगा था—कुछ अपना, कुछ दूसरों का। आज शिवरात्रि की छुट्टी है, फिर भी सबरे ढाई घंटे पढ़ा आया। अब कार्य समाप्त है और जुलाई तक छुट्टी समझो! तुम्हें फुरसत से लिखना चाहता था, इसलिए विलंब हुआ। तुमसे नाराज़ भी होकर रूठना या पत्र न लिखना मेरे स्वभाव के विपरीत होगा। नाराज़ तो नहीं था लेकिन याद दिलाने से हो गया हूं। तुम जितने उम्दा आदमी हो, उतने उम्दा कवि अभी नहीं हो। इसका कारण शायद धैर्य की कमी है जो मेरी समझ में नहीं आता क्योंकि तुम्हारा जीवन धैर्यहीन का जीवन नहीं है। शायद तुम्हें कविता में डूबने और कुछ गहरा जाने का समय कम मिलता है। जो हो, मैं यह कहने से बाज़ न आऊंगा कि अभी तुम्हें अपना शिल्प संवारना है।

इधर विकासवाद पर और पुस्तकें पढ़ीं। लगता है, हर वैज्ञानिक कवि—हृदय होता है। डार्विन ने पांच साल तक बीगल जहाज़ पर विश्वभ्रमण किया था और पशु, पौधों के बारे में सामग्री एकत्र की थी। उसकी वर्णन करने की क्षमता अद्भुत है। ब्राज़ील के वनों और वहां स्पेन से आए निवासियों के जीवन के वर्णन में उसने कवि और कथाकार की कला का परिचय दिया है।

अपनी सरसों का जोड़ीदार Walt Whitman का Dandelion देखो—

Simple and fresh and fair from winter's close emerging,
As if no artifice of fashion, business, politics had
forth from its sunny nook of shelter's grass—
innocent, golden, calm as the dawn,
The spring's first dandelion shows its face.
यह कविता सत्तर साल के Whitman ने लिखी थी—

अपनी आयु के समान पूर्ण। भाव और शब्द किस सहज डोर से बंधे हैं। और प्रकृति का वही स्पंदन जो कालिदास ने सुनाया, यहां भी है।

(13.3.57)

Whitman की वह कविता उसके संग्रह में मुझे सबसे अच्छी लगी। उसकी अधिकांश कविताएं अच्छी कम और सिलपट ज्यादा होती हैं। तुम्हारी

‘धूप धरा पर उतरी’, ‘कोयले’, ‘छोटे हाथों’ और ‘चंद गहना’ वाली कविताएं मेरी निगाह में Dandelion स्तर की हैं।

तुम जब inspired होकर लिखते हो, तब अच्छों-अच्छों से अच्छा लिखते हो। हां कवियों को थोड़ा विज्ञान अवश्य पढ़ना चाहिए। इससे उनका दृष्टिकोण निखरेगा और विशद भी होगा। Whitman के संग्रह में John Burroughs की एक पंक्ति थोरो के बारे में है—He improves with age—in fact requires age to take off a little of his asperity, and fully ripen him. इस वाक्य का पहला टुकड़ा छोड़कर शेष संभवतः मुझ पर भी लागू होता है।

कविता कांखकर नहीं, निर्झर की तरह शिलाएं तोड़कर निकलेगी। धैर्य धरो। Whitman की कुछ पंक्तियां और पढ़ो। A Prairie Sunset कई बार पढ़ना।

Shot gold, maroon and violet,
dazzling silver, emerald, fawn,
The earth's whole amplitude and Nature's
multiform power consigned for
once to colours....
Pure luminous colour fighting the
silent shadows to the last

(16.5.57)

सूर का दिव्यदर्शन देखो। रास का चित्र है। कल्पन के रंगों में सूर की संवेदनाओं ने ढलकर ज्योति के पत्र पर कैसा अमर चित्र आंका है—वर्ण-वर्ण, रेखा-रेखा सजीव है, सारा चित्र इतना सर्वांग-संपूर्ण, मानो द्रष्टा के सामने मंत्र के प्रज्वलित अक्षर स्वतः अवतरित हुए हों—

अरुझी कुंडल लट, बेसरि सों पीतपट, बनभाल बीच आनि
उरझे हैं दोउ जन।
प्रांनि सों प्रांन, नैन नैननि अंटकि रहे, चटकीली छवि देखि
लपटत श्याम घन।
होड़ा-होड़ी नृत्य करें, रीझिरीझि अंक भरें, ताता थेई थेई
उघटत हैं हरखि मन।
सूरदास प्रभु प्यारी, मंडली जूवति भारी, नारि को आंचल
लै लै पोंछत हैं समकन।

Walt Whitman ने तो एक Dandelion की पूर्णता ही उतारी थी—यहां तो कुंडल में उलझी हुई लट से लेकर नारी के आंचल से समकन पोंछने तक हर detail Dandelion सी पूर्ण है और उन सब details से मिलकर बने हुए पूरे चित्र की पूर्णता-भय्यता का क्या कहना। उल्लास का ऐसा चित्र और कहीं देखा है? कृष्ण के कुंडलों में राधिका की लट, राधा की बेसर में कृष्ण के पीतपट उलझे हैं। नृत्य घनीभूत है न! बनमाल में दोनों ही उलझ गए हैं। होड़ करके नाचते हैं। सामंती निषेधों की बेड़ियों पैरों में नहीं हैं, इसलिए; प्राक्सामंती समाज की स्वच्छंदता के ताल पर नाच रहे हैं। प्राणों से प्राणों, नैनों से नैनों का मिलना—रवीन्द्रनाथ-निराला की प्रेम संबंधी तल्लीनता सूर ने पहले ही देख ली है। रीझ-रीझ कर अंक भरना, ताता थेई-थेई उघटत पर जब मृदंग पर थाप पड़े तब नाद की नसेनी पर मन सुन्न महल पर पहुंच जाए। मंडली जूवति (युवति मंडली) है, अनेक नाचने वाले हैं। सामूहिक उल्लास है। फिर समग्र क्रिया की पूर्ति के फलस्वरूप आंचल से समकन पोंछना—रस निष्पत्ति की पराकाष्ठा है!

(28.7.59)

तुमने लिखा है—कविता दिमागी शांति चाहती है। मुझे वकालत करते

हुए कविता लिख लेते हो, यह मेरे लिए सदा चमत्कार का विषय रहा है। मुझे मानसिक शांति तो प्राप्त है। लेकिन सबेरे से शाम तक काम के मारे शरीर एकाग्र नहीं कर पाता—जैसे लोग मन एकाग्र करते हैं और कविता के लिए शरीर शांत, संतुलित, दैनिक उत्तरदायित्व से मुक्त होना चाहिए। सो नौ मन तेल जुटता नहीं?

यह ठीक है कि तुम दुनिया के लायक नहीं हो। वह सारा खून चूस लेना चाहती है। यहीं इतिहास मदद करता है। जब से सन् सत्तावन (यानी अठारह सौ सत्तावन) पर पढ़ना शुरू किया, लगता है, मेरी मुसीबतें कुछ नहीं हैं। परेशान तो करती हैं मुसीबतें लेकिन उन लोगों की मुसीबतें जो जंगलों में भटकते फिरे, कभी खाना नसीब, कभी खाली पेट, और खाने से ज्यादा कीमती गोली-बारूद नहीं, उनके जाने-पहचाने मित्र पकड़े जाते हैं, फांसी के तख्ते से लटका दिए जाते हैं या तोप से उड़ा दिए जाते हैं, लखनऊ गया, दिल्ली गई, झांसी गई लेकिन वाह री हिम्मत, ऐसे लड़ रहे हैं मानो इंकलाब अभी शुरू हुआ हो!

अच्छा मेरी नई किताब (सन् सत्तावन की राज्य क्रांति) में सौ वर्ष पहले के भारतीय सूरमाओं के दांव-पेंच देखना।

(12.12.59)

वो सूरतें इलाही किस मुल्क बसतियां हैं।
अब जिनके देखने को आंखें तरसतियां हैं।

माई डियर! आगरे से बांदा उतनी दूर नहीं जितनी दूर गोकुल से मथुरा था। फिर भी मुलाकात क्यों नहीं होती? मैं 26 दिसंबर के लगभग झांसी जाऊंगा। क्या तुम दो-एक दिन को उधर आ सकोगे। वर्मा जी (वृंदावन लाल वर्मा) के साथ घूमेंगे। खेतों की सैर करेंगे। जंगल की हवा खाएंगे। एक बार फिर झांसी का किला देखेंगे और तुम्हें सौदा की कविताएं सुनाएंगे। मालवे की चांदनी रात देखी है? सुना है, उधर मई-जून में लू नहीं चलती। क्या राय है? खैर, वह तो दूर की बात है। यह साल खत्म होने से पहले मिलना है जरूर। तुम्हारी कचहरी ईसा मसीह की शहादत के तुफ़ैल में बंद होती है या नहीं? होती है तो कब, कितने दिन को—जरूर सूचित करना। हां मैं 18 दिसंबर को दिल्ली जाऊंगा। उस दिन के आसपास तुम तो उधर न आओगे?

अब सौदा की हिंदी देखो—

जिन्हों की छाती से पार बरछी हुई है रन में वो सूरमा हैं
बड़ा वो सावंत मन में जिसके बिरह का कांटा खटक रहा है।
मुझे पसीना जो तेरे मुख पर दिखाई दे है तो सोचता हूं।
ये क्योंकि सूरज की जोत आगे हर एक तारा छिटक रहा है।

प्यारे, इस तरह की हिंदी लिखो, तब कविता वैसे ही गांव-गांव में पढ़ी जाए जैसे ब्रजभाषा के कवित्त लोग पढ़ते हैं।

लगता है, ग़ालिब की ज़बान में भी इतनी मिठास नहीं है; पढ़कर बंगाल के वैष्णव कवियों या फिर अपने सूरदास की याद आती है।

(7.9.61)

लोग कहते हैं कि युद्ध निकट होने पर भूकंप आदि अपशकुन होते हैं। निरालाजी की बीमारी, अमृतनागर का टायफ़ायड ऐसी ही प्राकृतिक दुर्घटनाओं के समान हैं।

तुमने बहुत अच्छा किया जो इलाहाबाद हो आए। मुझे ऐसा लगा मानो

तुम आगरे आकर गले मिल गए हो। तुम्हारे साथ निरालाजी के दारामंजी कमरे में मैं भी घूम आया।

बेशक, निरालाजी की आलोचना की जा सकती है लेकिन आलोचना वे करें जिन्होंने निराला से अधिक साधना की हो और जीवन में उनसे अधिक संयम बरता हो। ऐसे लोग नज़र नहीं आ रहे फिर दारामंज में—'वन्य जंतुओं का रोदन कराल' तो सुना जा सकता है, साधकों की मर्मवाणी नहीं।

इधर मैं वर्षागोश की पुस्तक *Men with a clear conscience* फिर पढ़ रहा था। उसके बाद *War and Peace* पढ़ना शुरू किया और युद्ध संबंधी अंश पढ़ गया। ताल्स्ताय ने इतिहासकारों की खूब मरम्मत की है। वे रूस, फ्रांस का युद्ध वैसे ही नहीं समझ पाए जैसे हमारे यहां के बुद्धिजीवी 1857 का महत्त्व नहीं समझे। किस शान से बूढ़े ने जन-प्रतिरोध के बारे में लिखा है :

... The cudgel of the people's war was lifted with all its menacing and majestic strength, and without consulting anyone's tastes or rules, and regardless of any thing else, it rose and fell with stupid simplicity, but consistently, and belaboured the french till the whole invasion had perished.

(17.1.62)

सबेरे के साढ़े तीन बजे हैं यानी अभी रात खूब है। बाहर खूब कोहरा पड़ रहा है। सर्दी काफ़ी है। कहीं ज़ोरों से बर्फ़ गिरी है। मैं जल्दी सो गया था। उठकर तुम्हें पत्र लिख रहा हूं।

निरालाजी के जितने पत्र थे, तुम्हारे, अमृत नागर तथा थोड़े बहुत अन्य मित्रों के जो पत्र थे, सबको एक सिरे से पढ़ गया हूं। बड़ा विचित्र अनुभव होता है। दोस्तों के साथ अपने को भी देखता हूं मानो वर्षों के पतं उघड़ते चले जाते हैं और मैं अपने से, तुमसे, निरालाजी से फिर मिलता हूं। मन पर उदासी नहीं छा जाती, न तो यह भाव जागता है कि फिर नौजवान हो जाएं (जवान तो अब भी हैं!) और न यह भाव पैदा होता है कि हाय, वे दिन बीत गए, फिर कभी न लौटेंगे।

इसके विपरीत पुराने संघर्षों की झलक देखकर संतोष होता है कि वृया नहीं जिए, भरसक भाषा और साहित्य के लिए काम किया, खासकर तुमने और नागर ने बड़ी विषम परिस्थितियों में काम किया है।

किसी साहित्यिक को ऐसी पत्नी मिले जो उसके धन न कमाने पर न खीझे, तो यह उसके जीवन का सबसे बड़ा पुण्य समझो। समझ गए न?

मुझे इस बात पर बड़ी प्रसन्नता है कि साहित्यिक जीवन के आरंभ से ही तुमसे और अमृत नागर से मेरी दोस्ती बराबर बनी हुई है और संदेह, कटुता या ईर्ष्या-द्वेष की हल्की छाया भी इस मैत्री पर इस लंबी अवधि में एक बार भी नहीं पड़ी।

मेरा विचार बहुत जल्दी संस्मरण लिखने का है जिनमें तुम्हारी और अमृत नागर की स्वभावतः विस्तृत चर्चा रहेगी। ज़रा निरालाजी की जीवनी समाप्त कर लूं। अभी लिखना शुरू नहीं किया किंतु सामग्री काफ़ी बटोर ली है।

तुम अभी बिस्तर में होगे। राम करे, जब उठो तब चमकते से सूर्य का मुंह देखो और मुवाकिल तुम्हारे ऊपर नोटों की वर्षा करें।

डा. रामविलास शर्मा की पुस्तक *प्रवरत्न* (राजपाल एंड सन, दिल्ली) से साधार

रामचरितमानस में कुछ आधुनिक काव्य-कला की विशेषताएं

डा. रामविलास शर्मा एम.ए.

एक संत कवि जैसे तुलसीदास और एक आधुनिक कवि जैसे रवींद्रनाथ, इन दोनों में अंतर है। तुलसीदास उस कोटि के कवियों में हैं, जिनके लिए विषय की गरिमा ही सब कुछ है। उन्होंने कविता करने के लिए कला की साधना नहीं की, भावावेश में जब कविता की तो कला स्वयं उनकी अनुगामिनी हुई। जब आवेश कम हुआ तो कविता अपनी ऊंचाई से गिर गई। संत कवियों में इसी कारण इतनी काव्य-विषमता है। कला का उन्होंने अलग से अध्ययन नहीं किया। सुंदर विषय को सुंदर से सुंदर ढंग से कैसे सजाया जा सकता है, इस पर उन्होंने विशेष मायापच्ची नहीं की। उनमें कला का विकास भाव के साथ अपने-आप होता है, जान-बूझकर वे कला द्वारा अपने भाव की सुंदरतर अभिव्यंजना करना अथवा उसके हल्केपन को ज्ञात न होने देना नहीं सीखे। क्या पूर्व और क्या पश्चिम, सर्वत्र हम ऐसे कवियों के अनुगामियों को क्रमशः उनके उदाहरण से लाभ उठाते देखते हैं। अपने पूर्ववर्तियों की बुराइयों और भलाइयों का मनन कर ये आधुनिक अपना मार्ग साफ करते जाते हैं। काव्य-कला इस भांति अनुदिन निखरती जाती है। तुलसीदास के समय अलंकार एवं छंद-ग्रंथों की कमी न थी। आज और भी नहीं है। हम अपने आधुनिकों को देखते हैं कि वे इन शास्त्रों का सहारा ले अपनी कविता चमकाना पसंद नहीं करते। क्या छंद, क्या अलंकार, क्या अन्यत्र, वे अपना कुछ मौलिक उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। यह प्रवृत्ति जो आधुनिक कवियों की विशेषता है, हम तुलसीदास में पाते हैं। उन पर लक्षण-ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है और सदा अच्छे के लिए नहीं। परंतु उनकी मौलिकता उससे बहुत ऊपर चमकती दिखाई देती है।

पहले उनके छंद चौपाई को लेते हैं। यह इतना छोटा और साधारण छंद है कि ऐसे-वैसे कवि के हाथ आते ही सुनार की हथौड़ी की तरह नियमित समय पर ठुक्-ठुक् शब्द करने लगता है। तुलसीदास की चौपाइयां इतने

गीत-भंगों से होकर चलती हैं कि अंत के विराम की अविराम पुनरावृत्ति भूल-सी जाती है। बार-बार समान तुक का आना खटके नहीं, इसलिए उन्होंने उसमें विभिन्नता रखी है। साधारणतः अंत में दो गुरु अक्षर आते हैं; परंतु उनकी एक-सी ध्वनि न हो, इसलिए वह वहां पर कभी-कभी तो लघु या गुरु लघु का प्रयोग करते हैं। बालकांड में 31वें दोहे के पश्चात् देखिए—

रामचरितमानस की कला की सूक्ष्मता उसके सभंग स्वर-विस्तार पर निर्भर है। छोटे-बड़े स्वर पारस्परिक आकर्षण में बंधे बीच में कोमल व्यंजनों को डाल कविता का मनोहर जाल बुनते चलते हैं। भाव के अनुकूल ऊंचा-नीचा करते वे उसे नीरसता की भूमि पर गिरने से बचाए रहते हैं। प्रत्येक चौपाई-समूह के बाद जब दोहा आता है तो स्वर-विस्तार का एक दीर्घ आवृत्त समाप्त होता है। पाठक को यहां कुछ क्षण विराम करने का अवसर मिलता है, उसके पश्चात् वह दूसरी तरंग पर बहने के लिए तैयार होता है। बीच में जो छंद आते हैं, वे चौपाइयों की गति को बदल दीर्घ विराम देते हैं। जिन सूक्ष्म स्वर-तंतुओं से यह सारा जाल बुना गया है, उन पर हाथ रखते उनके बीच की छोटी-छोटी गांठों को खोज निकालना अत्यंत दुष्कर है; फिर भी कहीं-कहीं हमें उनका आभास मिल जाता है और हम कह उठते हैं, यहां के माधुर्य का कारण स्वरों का इस भांति सजाना है।

रामचरित चिंतामनि चारु ।
संत सुमति तिसु भग सिंगारु ॥
जगमंगल गुनग्राम राम के ।
दानि मुक्ति धन धरम धाम के ॥
सदगुरु ज्ञान बिराग जोग के ।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ॥

यहां तुक में लघु-गुरु के प्रयोग से चौपाई की गति में विभिन्नता आ जाती है; एक विचित्र ढंग से छंद अंत में खिंच जाता है। पहली पंक्ति की अपेक्षा औरों में विराम अधिक भारी होकर गिरता है। थोड़ा आगे की और चौपाइयां देखिए—

मन करि विषय अनल बन जरई ।
होइ सुखी जौ यह सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि भावन ।
विरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन ।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥

रचि महेश निज मानस राखा ।
पाइ सुसमउ सिवा मन भाखा ॥
तातें रामचरितमानस बर ।
धरेउ नाम डिअ हेरि हरषि हर ॥
इन पांच चौपाइयों में तुकों की

कितनी भिन्नता है पहली में लघु-गुरु,

दूसरी, तीसरी में गुरु के बाद दो लघु, चौथी में गुरु-गुरु और पांचवीं में लघु के बाद दो लघु। सबके प्रभाव भिन्न हैं। यह एक रास्ता है जिससे 'बटु-समुदाई' के वेद पढ़ने को उन्होंने 'दादुर धुनि चहुं दिसा सुहाई' से दूर रखा है।

चौपाई के भीतर ही उसका गति-वैचित्र्य बनाए रखने के लिए उन्होंने एक और सूक्ष्म प्रयोग किया है, जो वैसे पढ़ने में ऊपर नहीं दिखाई देता। यह

है यति को एक ही स्थान पर न गिरने देना। चौपाई में यदि 8-8 पर निरंतर यति हो तो वह अवश्य थोड़ा-सा पढ़ने पर पाठक को उबा दे। यहां चौपाई के भीतर जो यति आती है, एक तो अत्यंत हल्की होती है-तिस पर कवि उसको एक जगह नहीं रहने देता। अंग्रेजी साहित्य के विद्यार्थियों को विदित है कि पोप और उसके अनुयायियों द्वारा समानता के कारण Heroic Couplet में कितनी नीरसता आ गई थी; जिन साधनों से रोमांटिक कवियों ने उसे दूर किया और पोप के पहले वह दूर रखी गई थी, वह यति को एक जगह सदा न गिरना था। नीचे की चौपाइयों में यति-विभिन्नता देखिए-

राखि न सकइ। न कहि सक जाहू।
 दुहू भाति। उर दारुन दाहू।
 लिखत सुधाकर। गा लिखि राहू।
 विधिगति बाम। सदा सब काहू।
 धरम सनेह। उभय मति बेरी।
 भइ गति सांप। छुछंदरि केरी।
 राखीं सुतहिं। करौं अनुरोधू।
 धरमु जाइ। अरु बंधु बिरोधू।
 कहीं जान बन। तौं बड़ि हानी।
 सकट मोच। बबस भइ रानी।
 बहुरि समुझि। तिय धरमु सयानी।
 राम भरत दोउ। सुत सम जानी।
 सरल सुभाउ। राम महतारी।
 बोली बचन। धीर धरि भारी।
 तात जाउं बलि। कीन्हहु टीका।
 पितु आयसु सब। धरम क टीका।

मैंने जहां-जहां यति दी है, किसी का कहीं-कहीं मतभेद हो सकता है। जब यदि बहुत हल्की आती है तो कहना कठिन होता है कि वह यहां गिरी। कहीं यति मानना भी खटकता है; एक चौपाई भाग इतना गुंथा होता है। परंतु यदि भिन्नता है, यह स्पष्ट है। पहली में 7, 9 और 6, 10 पर, दूसरी में 8, 8 और 7, 9 पर, तीसरी में 7, 9 और 7, 9 पर, चौथी में 7, 9 और 6, 10 पर, पांचवीं में 8, 8 और 7, 9 पर, छठी में 6, 10 और 9, 7 पर, सातवीं में 7, 9 और 7, 9 पर तथा आठवीं में 8, 8 और 8, 8 पर यति है।

रामचरितमानस की कला की सूक्ष्मता उसके सभंग स्वर-विस्तार पर निर्भर है। छोटे-बड़े स्वर पारस्परिक आकर्षण में बंधे बीच में कोमल व्यंजनों को डाल कविता का मनोहर जाल बुनते चलते हैं। भाव के अनुकूल ऊंचा-नीचा करते वे उसे नीरसता की भूमि पर गिरने से बचाए रहते हैं। प्रत्येक चौपाई-समूह के बाद जब दोहा आता है तो स्वर-विस्तार का एक दीर्घ आवृत्त समाप्त होता है। पाठक को यहां कुछ क्षण विराम करने का अवसर मिलता है, उसके पश्चात् वह दूसरी तरंग पर बहने के लिए तैयार होता है। बीच में जो छंद आते हैं, वे चौपाइयों की गति को बदल दीर्घ विराम देते हैं। जिन सूक्ष्म स्वर-तंतुओं से यह सारा जाल बुना गया है, उन पर हाथ रखते उनके बीच की छोटी-छोटी गांठों को खोज निकालना अत्यंत दुष्कर है; फिर भी कहीं-कहीं हमें उनका आभास मिल जाता है और हम कह उठते हैं, यहां के माधुर्य का कारण स्वरों का इस भांति सजाना है। बालकांड के इन आरंभ के सोरठों को लीजिए-

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर बदन
 करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ-गुन-सदन।
 मूक होई बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन

जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलि-मल-दहन।
 नील सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन बारिज-नयन।
 करौ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर सयन।
 कुंद-इंदु सम देह, उमारमन करुना अयन।
 जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन-मयन।।
 बंदौ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
 महा-मोह-तम-पुंज, जासु बचन रवि-कर निकर।।

स्वरों की अद्भुत मैत्री यहां स्पष्ट है। पहले सोरठे में 'होइ' और 'सोइ' का दीर्घ 'ओ' दूसरे सोरठे के 'होई' में अनुवृत्त होता है। दोनों को वह एक स्वर के बंधन से बांध लेता है। तीसरे के 'नील-सरोरुह' में पुनः वह उठता है; अंत के सोरठे के 'महामोह' में भी हम उसे सुनते हैं। सबसे अधिक आवृत्ति यहां 'आ' स्वर की होती है। पहले के 'गननायक' और 'बुद्धिरासि' में, दूसरे के 'बाचाल' 'जासु' 'कृपा' और 'दयाल' में, तीसरे के 'स्याम' 'बारिज', 'धाम', 'सदा' और 'छीर सागर' में, चौथे के 'उमारमन' 'करुनाअयन', 'जाहि' और 'कृपा' में तथा पांचवें के 'कृपासिंधु', 'महा-मोह' और 'जासु' में। प्रत्येक दोहे में 'आ' का यह अनुवर्तन वह प्रधान तार है, जिससे सब सोरठे आपस में गुंथे हुए और एक खिंचाव से ऊपर उठे हुए हैं। अब 'औ' को देखिए। पहले के 'करौ' में, दूसरे के 'द्रवौ' में, तीसरे के 'करौ' में और वैसे ही चौथे के 'करौ' में तथा पांचवें के बंदौ में उसकी अनुवृत्ति होती है। दूसरे-तीसरे सोरठों की मध्य यति 'आल' और 'आम' पर होती है। 'आ' को और न दोहरा चौथे सोरठे की मध्य यति 'एह' पर होती है। 'ए' स्वर-वैचित्र्य के लिए काम देता है। इसी भांति दूसरे सोरठे के 'मूक' का ऊ और पांचवें के 'वर-रूप' का ऊ। तीसरे सोरठे का पहला चरण 'नील-सरोरुह' के 'ई' से उठता है, उसी के अंतिम चरण के 'छीर-सागर' में उसकी मधुर अनुवृत्ति होती है। जैसे दो खों पर, सोरठा इन दो स्वरों पर सध जाता है। इन सोरठों की पारस्परिक मैत्री स्वरों मात्र पर निर्भर नहीं; छोटे-छोटे अनुप्रास सर्वत्र बिखरे हैं और साथ ही पदों के बड़े आवर्त भी आते हैं। पहले के दूसरे चरण में 'करिवर-बदन' है, दूसरे के उसी चरण में 'गिरिवर-गहन' है। तीसरे में तरुन-अरुन की मधुर लपेट है। उसी के तीसरे चरण का 'मम', चौथे सोरठे के पहले चरण के 'सम' से मेल खाता है। पांचवें सोरठे में दूसरे चरण के 'वर-रूप' के 'अर' की अनुवृत्ति उसी के अंतिम चरण के 'कर-निकर' में होती है। इसके अतिरिक्त चार सोरठों के दूसरे चौथे चरणों के अंत में 'अन' आता है और जैसे चौथे सोरठे में, कभी वह बीच में भी आ जाता है। सोरठों के पश्चात् जब 'बंदौ गुरु-पद-पदुम-परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।' आदि चौपाइयां शुरू होती हैं तो आरंभ में ही हम पांचवें सोरठे के पहले चरण का 'बंदौ गुरु-पद' यहां दोहराया पाते हैं। नीचे की चौपाइयां इस भांति उस सोरठे से विलग नहीं होने पातीं। साथ ही गुरु पदों पर विशेष जोर पड़ता है। कंज के स्थान में यहां 'पदुम-परागा' का प्रयोग अर्थ का जो मधुर विकास करता है, उस पर जो लिखा जाए थोड़ा।

दोहा और उसके बाद आने वाली चौपाइयां स्वरों से किस भांति जोड़ी गई हैं, यह दो उदाहरणों से और दिखाता हूँ।

बालकांड में-
 राजत राजसमाज महं, कांसल-राज-किसोर।
 सुंदर-स्यामल-गौर-तन, बिस्व-बिलोचन-चोर।।
 सहज मनोहर मूरति दोऊ
 कोटि-काम-उपमा लघु सौऊ।

यहां 'कोसल', 'बिलोचन', 'मनोहर', 'दोऊ', 'कोटि' और 'सोऊ' के 'ओ' दोहे और चौपाई के चरणों को आपस में बांधते हैं।

अयोध्याकांड में—

सबके उर अभिलाषु अस, कहहि मनाइ महेसु।

आपु अछत जुवराज-पद, रामहिं देउ नरेसु।।

एक समय सब सहित समाजा।

राजसभा रघुराज बिराजा।।

यहां 'सबके', 'महेसु', 'देउ' और 'नरेसु' के 'ए' स्वर को 'एक' के 'ए' में उठाकर चौपाई चलती है।

अनुप्रासों का दुरुपयोग तुलसीदास के पूर्व भी हुआ था और पश्चात् भी। ऐसा तब होता था, जब लोग समझते थे कि उनके बहुल प्रयोग मात्र से कविता में चमत्कार आ जाएगा। रामचरितमानस में उनकी कमी नहीं; परंतु मौलिकता यह है कि उसमें विभिन्नता है, जान-बूझकर वे एक साथ इकट्ठे नहीं किए गए और एक स्वाभाविक रीति से इधर-उधर फूट निकलते हैं। अनेक कवि-कृतियों में उन स्थलों की आलोचकों द्वारा प्रशंसा की गई है, जहां पाठ-ध्वनि अर्थ की व्यंजना में सहायता देती है। रामचरितमानस की 'कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।' इसके लिए अनेक बार उद्धृत की गई है। यहां दर्शनीय यह है कि पहले चरण में कङ् के बाद किङ् तथा कन के बाद किनि आता है; उसके बाद धुनि सुनि में 'उनि' की आवृत्ति होती है। चौपाई का दूसरा चरण 'क' से आरंभ होता है, जैसे पहला हुआ था; दोनों की मैत्री का यह प्रच्छन्न कारण है। कंकन के 'अन' की अनुवृत्ति लषन सन में होती है और सुनि के 'उनि' की स्वभावतः 'मुनि' में अनुप्रास इस तरह विचित्रता लिए एक-दूसरे से मिलते हैं; उनसे अर्थ की सुंदर अभिव्यक्ति होती है। परंतु सर्वत्र यह कला इतने ऊपर नहीं रहती। तुलसीदास स्वरो से बड़े-बड़े काम लेते हैं। परंतु उनका वह कार्य अर्थ के ऊपर नहीं झलकता। बालकांड की यह प्रसिद्ध चौपाई लीजिए—

अब जनि कोउ माखै भटमानी।

बीर-बिहीन मही मैं जानी।।

दूसरे चरण में चार बार दीर्घ 'ई' स्वर का प्रयोग हुआ। प्रत्येक शब्द पर स्वरपात है। इतनी बड़ी पृथ्वी वीरों से हीन है, कैसा दुख है, इस अर्थ के द्योतन में इस स्वरानुवृत्ति से सहायता मिलती है। थोड़ा आगे का दोहा लीजिए—

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बालपतंग।

बिकसे संतसरोज सब, हरषे लोचन-भृंग।।

प्रत्येक चरण में 'अं' के साथ स्वर ऊपर उठता है; इससे रामचंद्र के मंच पर चढ़ने का भाव स्पष्ट होता है। बालकांड के एक दोहे के इन चरणों में 'निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।' एक विशेषता है, जो अन्यत्र भी हम रामचरितमानस में पा सकते हैं। अनुस्वार वाला वर्ण, उसके आगे-पीछे दीर्घ 'आ' 'ओ' 'ई' आदि स्वर तथा 'घ' 'भ' से गंभीर ध्वनि वाले व्यंजन रात्रि के अंधकार और वन की दुर्गमता को प्रकट करते हैं। ऐसे ही अनुस्वार-युक्त वर्ण के बाद 'ओ' स्वर का सुंदर प्रयोग नीचे देखिए—

लखन लखेउ रघुबंसमनि, ताकेउ हर-कोदंड।

पुलकि-गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मांड।।

दिसि-कुंजरहु कमठ अहि कोला

धरहु धरनि धरि-धीर न डोला।

रामु चाहहिं संकर-धनु तोरा।

होहु सजग सुनि आयसु मोरा।

दोहे में तीन बार 'अं' की अनुवृत्ति होती है; उसी का 'ओ' के साथ दोनों चौपाइयों के पहले चरणों में प्रयोग होता है। रामचंद्र के कार्य की महत्ता और लक्ष्मण का ब्रह्मांड को चरण तले चाप प्रतिज्ञा करना भली-भांति ध्वनित होता है। दोहे में 'ल' और 'च' के अनुप्रास पहली चौपाई के पहले चरण में 'क' के, दूसरे चरण में 'घ' और 'र' के तथा दोनों चौपाइयों के चारों चरणों में 'ह' के अनुप्रास देखने योग्य हैं।

एक और भी सुंदर उदाहरण सुंदरकांड में है—

स्याम-सरोज-दाम-सम सुंदर।

प्रभु-भुज करि-कर सम दसकंधर।

सो भुज कंठ कि तब अति धोरा।

सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

पहली चौपाई के 'ज' और 'अ' की शक्ति दूसरी के 'भुज कंठ' में जैसे एकत्र हुई हो। सीता की प्रतिज्ञा अपनी दृढ़ता के स्वर की भी पूर्ण शक्ति पाए है। ऊपर उद्धृत किए स्रोतों में से एक में जो 'तरुन-अरुन' में पद का आवर्त आता है, वह रामचरितमानस की एक विशेषता है। ये आवर्त इतनी स्वच्छंदता से और इतनी स्वाभाविकता से आते हैं कि इनको अनुप्रासों की किसी सीमा में रखना न संभव है, न उचित होगा। दोहों, चौपाइयों, छंदों में ये सर्वत्र बिखरे हैं। कभी ये अर्थ की पुष्टि करते हैं, कभी छंद के चरणों को आपस में बांधते हैं, कभी अपने सौंदर्य के ही लिए रहते हैं। कुछ उदाहरण चौपाइयों से लीजिए—

उठहु राम भंजहु भवचापा।

मेटहु तात जनकपरितापा।

कहलगि सहिअ रहिअ मनमारे

नाथ साथ धनु हाय हमारे।

(बालकांड)

नयन नीर पुलकित अति गाता।

मन धरि धीर कही मृदु बाता।

(अयोध्याकांड)

(सुंदरकांड)

प्रभु सनमुख धाए खल कैसे

सलभ समूह अनल कहुं जैसे।

(लंकाकांड)

राम कहा सेवकन्ह बुलाई।

प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।

(उत्तरकांड)

यहां दो चरणों में समान आवर्तों की आवृत्ति उनके पारस्परिक बंधन का कारण होती है। स्वाभाविकता भी देखिए, ऐसा नहीं जान पड़ता, एक भी हठात् सौंदर्य के लिए लाया गया हो। बिना खोजे हुए बहुतों पर ध्यान भी नहीं जाता। दूसरे उदाहरण में लक्ष्मण की उक्ति इन्हीं आवर्तों द्वारा उनका आवेश प्रकट करती है। इस प्रकार का सौंदर्य सबसे अधिक छंदों में है। प्रत्येक छंद में आवर्तों के लिए जैसे कुछ जगह पूर्वनिश्चित रक्खी जाती हो। उदाहरण देखिए—

होनहार का करतार को

रखवार जग खरभरु परा।

दुइ माय केहि रतिनाथ जेहि

कहुं कोपि कर धनु-सरु धरा।

(बालकांड)

पृष्ठ 38 पर जारी

राम की शक्तिपूजा

डा. रामविलास शर्मा एम.ए.

राम की शक्तिपूजा पाश्चात्य महाकाव्यों का अधिक स्मरण दिलाती है, प्राच्यों का कम। उन महाकाव्यों में भी उसका सान्निध्य सबसे अधिक Paradise Lost से है। छंद का गठन, भाषा का ओजपूर्ण किंतु अत्यंत संयमित प्रवाह, साथ ही भावों की एक असाधारण गरिमा—ये गुण हमें मिल्टन के काव्य में मिलते हैं। **राम की शक्तिपूजा** महाकाव्य नहीं है, खंडकाव्य भी नहीं, यह एक लंबी कविता है, परंतु उसमें ये सभी गुण वर्तमान हैं। अंतर दोनों के बाह्य परिमाण का है; और इस बात को अनेक आलोचकों ने स्वीकार किया है कि मिल्टन का महाकाव्य अपने सभी अंशों में, समुचित संगठित, महान नहीं है। पौराणिक उपाख्यान को जिस प्रकार कवि ने काव्य में कल्पना द्वारा सजीव किया है, वह बहुत कुछ पाश्चात्य Epics के अनुकूल हुआ है। कवि ने थोड़े में अपने पात्रों का चित्रण किया है किंतु वे अपनी छाप हृदय पर किसी Epic के ही पात्रों की तरह डालते हैं। राम, महावीर, विभीषण आदि पर, आदि कवि से लेकर आज के कवियों तक, न जाने कितना लिखा गया, फिर भी उनके भीतर से कवि ने जिन प्रतीकों की व्यंजना की है वह तात्त्विक और आधुनिक दृष्टिकोण की सूचक है। संकेत व्यंजनाओं से यह कविता गुंथी हुई है और इन्हीं से हम उसके मूल अर्थ तक पहुंचते हैं; प्रतीकवाद का उथला रूप इसमें कहीं भी नहीं है। इस प्रकार की प्रतीक व्यंजना का मिल्टन में अभाव है; छंद और भाषा का संगठन इस प्रकार हमारे पुराने काव्यों में नहीं किया गया; इस कविता के चारित्रिक घात-प्रतिघात ऐसी मानसिक—यदि उसे मानसिक कहा जा सके, —भूमि पर होते हैं जहां बहुत कम कवियों की पहुंच है; इसीलिए यह कविता पुरातन और आधुनिक काव्य में अद्वितीय है, जिसका अर्थ यह नहीं कि वह सर्वोत्कृष्ट है। वह नवीन है, किसी भी महाकाव्य—सी मूल्यवान और वह हिंदी की संपत्ति है।

आरंभ इन पंक्तियों से होता है—“रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र में लिखा अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर आज का.....

कवि का ध्येय राम-रावण का युद्ध-वर्णन नहीं है; इसलिए वह सूर्य को अस्त कर पहले ही बता देता है कि आज का युद्ध समाप्त हो चुका है। ऊपर की पंक्तियों के बाद युद्ध का वर्णन चलता जाता है किंतु वह चित्र का पश्चाद्भाग सज्जित करने के लिए; कवि का वह मूल-विषय नहीं। कुछ-कुछ इसी प्रकार मिल्टन ने भी खुदा और शैतान के युद्ध का वर्णन किया है।

संकेत-व्यंजना का, ऊपर की दो पंक्तियां सुंदर उदाहरण हैं। दिन समाप्त हो चुका है परंतु जो घटनाएं उस काल में घटित हुई हैं, वे जैसे उसी दिन के ज्योतिपत्र पर अंकित कहीं सुरक्षित हैं। कवि ऐसा आभास देता है कि ये घटनाएं क्षणिक नहीं, उनकी महत्ता अनंत है और वे अनंत काल तक रहेंगी। साथ ही ‘अपराजेय समर’ में ...हमें युद्ध के अनिश्चित परिणाम का बोध होता है, राम की मनोभूमि पर जो संग्राम होने वाला है हम कुछ-कुछ उसके लिए तैयार हो जाते हैं।

एक ही पुरुष की बात का अनेकों पर जो भिन्न प्रभाव पड़ता है, कवि ने थोड़े में, उनकी चारित्रिक विशेषताओं को झलकाते हुए दिखा दिया है। कवि जहां चित्र-सौंदर्य में समुद्र के तूफान और हवा के झकोरों को एक में मिला प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित कर देता है, वहीं वह छोटे-छोटे मनोवैज्ञानिक तथ्यों की ओर इंगित करने में भी नहीं चूकता। वह प्रकृति और मनुष्य के मन में होने वाले संघर्ष को, क्या छोटे क्या बड़े परिमाण में, समाज सफलता के साथ चित्रित कर सकता है। इस उबा देने वाली शांति का वर्णन पढ़ हम क्षण भर को भूल जाते हैं कि अभी जल और वायु अपनी असंयमित क्रीड़ाओं में लगे हुए थे।

दूसरे पैरा में दोनों सेनाओं का अपने-अपने शिविरों की ओर लौटना वर्णित है। रावण की सेना की प्रसन्नता और राम की सेना का विषाद आगामी घटनाओं के लिए और भूमि तैयार करते हैं युद्ध का परिणाम अनिश्चित अवश्य रहा है परंतु जय-कांक्षी राम के लिए वह पराजय के ही समान है। प्रथम दो पंक्तियों में राक्षस-सेना की प्रसन्नता का वर्णन इस प्रकार है—

लौटे युगदल, राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल,

विंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।।

राक्षसों के अत्याचार से पृथ्वी त्रस्त है, यह ध्वनि पहली पंक्ति की, स्पष्ट है। दूसरी में उल्लास के आधिक्य से आकाश का विकल होना, अपनी सांकेतिकता में, और भी सुंदर है। राक्षसों का उल्लास आकाश के उल्लास से कुछ सामंजस्य खाता दिखाई पड़ता है, आकाश-तत्व और राक्षसों

के किसी भीतरी संबंध की ओर कवि यहां इंगित करता दिखाई देता है। अंधकार, आकाश, तमोगुण, राक्षस—ये सब अविभक्त, प्रायः एक ही संज्ञा के सूचक, इस कविता में आते हैं। यह अधिक स्पष्ट हो जाता है, जब हम आगे पढ़ते हैं—*रावण-महिमा श्यामा विभावरी अंधकार...*

रावण और वह भयानक रात्रि, जो राम को घेरे हुए है, एक ही हैं। आकाश में शिव का वास है और वह रावण के इष्टदेव हैं, इसलिए आकाश-तत्व से रावण का गहन संबंध है। कवि ने आगे कहा है—

यह महाकाश, है जहां वास शिव का निर्मल—

इसलिए रावण की विजय पर आकाश का उल्लसित होना अत्यंत स्वाभाविक है।

विंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।

यहीं कवि हमें जता देता है कि यह राम-रावण का, दो व्यक्तियों का,

संग्राम नहीं है; यह उन आदि-शक्तियों का संघर्ष है जो विश्व में सतत क्रियाशील रहती हैं। राम-रावण किन शक्तियों के प्रतीक हैं, यह कवि ने कहा नहीं है, उनकी ओर संकेतमात्र किया है। चरित्रों की मानवीयता सुरक्षित रहती है। राम अपनी वानर सेना के साथ अपने शिविर की ओर चलते हैं। जटा-मुकुट खुल गया है और उनकी पीठ बाहुओं और छाती पर फैल गया है। और यहां भी एक जबरदस्त संकेत देख हम सिहर उठते हैं।

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार।

इस अंधकार, रावण की महिमा, ने राम को आक्रांत कर लिया है; आशा की तारिकाएं अपनी क्षीण ज्योति में बहुत दूर पर टिमटिमाती दिखाई देती हैं। राम जहां अपने सेनानियों के साथ बैठते हैं, वहां भी एक पर्वत है; उसे भी रावण की महिमा, श्यामा, विभावरी इसी प्रकार आक्रांत किए हैं।

अगला, इस कविता का एक अत्यंत सुंदर पैराग्राफ है। राम के मानसिक संघर्ष के लिए कवि ने जो प्रकृति की सेटिंग दी है वह अत्यंत ओजपूर्ण, साथ ही सांकेतिक है।

है अमा निशा; उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।

अंधकार का आधिक्य इससे द्योतित है कि आकाश ही उसे उगलता दिखाई देता है। मिल्टन के Hell की Palpable darkness इससे अधिक तामसी नहीं है। यहां अंधकार एक तत्व के रूप में क्रियाशील है; उसका संबंध आकाश से है और आकाश का, शिव से, रावण से। राम के चारों ओर यह चतुर्दिक् प्रवाहित अंधकार जितना चित्ररूप में सुंदर है उतना ही अपनी सांकेतिकता में सार्थक और उपयुक्त। दिशाओं का इस समय ज्ञान नहीं; जड़ शक्तियों ने चेतन को परास्त कर रखा है; पवन भी स्तब्ध है, शायद उसका संबंध हनुमान से है, इसलिए पीछे अप्रतिहत रूप से विशाल समुद्र गर्जन कर रहा है; अंधकार के साथ मिलकर वह भी राम को भयान्चित करने में लगा हुआ है। पर्वत जैसे ध्यानमग्न, इन क्रियाओं से उदासीन, चुपचाप खड़ा है। सिर्फ एक मशाल जल रही है।

केवल जलती मशाल।

‘केवल’ का प्रयोग बहुत ही प्रभावोत्पादक हुआ है। इस अंधकार और समुद्र की उच्छृंखल क्रीड़ाओं के बीच सिर्फ एक मशाल जल रही है। हमें इसी से भावी विजय के लिए आशा मिलती है और हम धैर्य के साथ राम का दैन्य देखने के लिए प्रस्तुत होते हैं।

एक ओर राम की अपराजिता शक्ति, दूसरी ओर वैसा ही रावण का प्रतिरोध, रामचंद्र मन-ही-मन विकल हो उठते हैं।

स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय भय;
जो हुआ नहीं आज तक हृदय दमनीय श्रांत
एक भी, अयुत लक्ष में रहा जो दुराक्रांत
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार...

इसी समय राम को सीता का स्मरण होता है। यह राम की निर्बल मानसिक अवस्था का द्योतक है। कवि ने इंगित से इसे भी आगे स्पष्ट कर दिया है। क्षण भर के लिए हम जनक की वाटिका में पहुंच जाते हैं और राम और सीता का,

नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय संभाषण।

देखने लगते हैं। कवि ने राम की इस चारित्रिक निर्बलता को बड़े सुंदर ढंग से निबाहा है। राम इस दृश्य में इतने तन्मय हो जाते हैं कि आवेश में उनका हाथ फिर धनुष उठाने के लिए बढ़ जाता है। राम की इस क्रिया का कवि ने मार्मिकता से उल्लेख किया है-

पुलकित तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त
हर-धनुर्भंग को पुनर्वा ज्यों उठा हस्त...

इस आवेश से एक दूसरी भावना का जन्म होता है; वह रावण-विजय की बात फिर सोचने लगते हैं। भावनाओं का यह सान्निध्य दिखाकर कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दिया है। समर में अपना पराक्रम-प्रदर्शन और आज का रावण-विरोध स्मरण कर राम की आंखों से दो बूंद आंसू गिर पड़ते हैं। यहां का चित्रण कविता के सर्वोत्कृष्ट प्रभावोत्पादक स्थलों में से एक है-

वे आए याद दिव्य शर अगणित-मंत्र पूत
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर
ताड़का, सुबाहु विराध, शिरात्रय दूषण खर
फिर देखी भीमा मूर्ति आज रन देखी जो
आच्छादित किए हुए सम्मुख समग्र नभ को
ज्योतिर्मय अम्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण-
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन
लख शंकाकुल हो गए अतुल बल शेष-शयन-
खिंच गए दृगों में सीता के राममय नयन
फिर सुना-हंस रहा अट्टहास रावण खलखल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल।

आकाश की ओर उड़ते प्रज्वलित बाण चित्र में वैसे ही सुंदर हैं जैसे वे राम की शक्ति के परिचायक। परंतु आगे जिस भीमा मूर्ति का वर्णन है उसके आगे ये कुछ भी नहीं जंचते। बाणों के तेज को स्वीकार कर कवि ने इस मूर्ति की ही अनंत तेजस्विता को अधिक स्पष्ट किया है। वह सामने सारे आकाश को, रावण के सहायक शंभु के वास को, ढांपे हुए राम के सारे अस्त्रों को अपने ऊपर ही रोप लेती है। इस महाशक्ति में बाणों की क्षुद्र शक्तियां बुझ-बुझकर लीन हो जाती हैं। राम की निबलता, -सीता का ध्यान, -उन्हें फिर दबा लेती है। उनकी आंखों में सीता के नेत्र जिनमें राम का चित्र स्वयं अंकित है, खिंच जाते हैं। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक व्यंजना का यह एक ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण है जैसा और साहित्यों में खोजने पर मुश्किल से ही मिलेगा। सीता की राम-दर्शन की लालसा और वैसी ही राम की वियोग-व्यथा, कवि का चित्र सूक्ष्म साथ ही भावुकतापूर्ण है। राम की इस निर्बलता के ही समय रावण का हंसना सुनाई देता है। Dramatic Contrast का यह एक सुंदर उदाहरण है। रावण का विजय-मद और राम की पराभव-दीनता, दोनों की ही तुलना बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से की गई है।

हनुमान भक्तिपूर्वक राम की क्रियाएं देख रहे थे। उनके चरण अस्ति, नास्ति के दो रूप एक ही पुरुष में अपनी तादात्म्यता प्रदर्शित करते उन्हें दिखाई देते हैं। पहले भक्त को यह भान नहीं होता कि उसके भगवान रो रहे हैं; वह उन अश्रुबिंदुओं को आकाश की तारिकाएं या दो हीरे समझता है। परंतु जब उसकी समझ में असली बात आ जाती है तब उसकी शक्ति हठात् प्रबल वेग से स्पंदित हो उठती है।

‘ये अश्रु राम के’ आते ही मन में विचार
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल सागर अपार
हो श्वसित पवन-उनचास पिता-पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल
शत घूर्णावर्त, तरंग भंग उठते पहाड़
जल, राशि-राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बंध प्रतिसंघ धरा, हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय अथ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष
शत वायु वेग बल, डुबा अतल में देशभाव
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षब्ध कर अट्टहास।

रावण के अट्टहास का उत्तर राम की ओर से दिया गया। राक्षस-पति के इष्टदेव भी इस शक्ति के सम्मुख सिहर उठे। राम से प्रबल राम की अर्चना सिद्ध हुई। और हनुमान की सभी क्रियाएँ बैठे-बैठे होती हैं। बाह्य और आंतरिक संसार का भेद हम भूल जाते हैं। शक्ति-सागर एक हनुमान के भीतर उद्वेलित होता है, दूसरा सागर लंका के चारों ओर का है, जिसे वायु की धपेड़ों ने विचलित कर दिया है। जल और वायु, प्रकृति के आदि-तत्वों के संघर्ष के भीतर से हम हनुमान की शक्ति को आकाश की ओर बढ़ते देखते हैं। क्या हनुमान ने पहले सीता से न कहा था कि वह उसे अकेले राम के पास ले जाने में समर्थ थे वह रावण की विजय में फिर समर्थ दिखाई देते हैं, रावण की ही नहीं, रावण के इष्टदेव शंकर की भी। हनुमान के इस वेग का समकक्षी वर्णन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। आधुनिक हिंदी-कविता के अत्यंत ओजपूर्ण स्थलों में से यह एक है। इससे कुछ ओज में कम परंतु अधिक सुचारु रूप से निबाहा हुआ कवि की अन्य कृति तुलसीदास का अंतिम भाग है। तुलसीदास की मुक्ति के साथ कवि तत्कालीन और पुरातन भारत की भी मुक्ति की ओर इंगित करता है। यहां हनुमान की शक्ति इस क्रियाशीलता के बाद उन्हीं में फिर निहित हो जाती है। कपि को समस्त आकाश-प्रस्ता देख शिव क्षण भर को विचलित हो उठते हैं। रावण-महिमा की गहन रात्रि इस राम अर्चना के तेज के सम्मुख फटने लगती है। देवी से प्रार्थना कर उसे अंजना-रूप में कपि के पास भेज वे कपि को शांत करते हैं।

इसके बाद विभीषण की वक्रता है। अपने सामंतों से घिरे राम बरबस मिल्टन के शैलान की याद दिलाते हैं; यहां के तर्क-वितर्क भी कुछ-कुछ Paradise Lost की दूसरी पुस्तक के वाद-विवाद से मिलते-जुलते हैं।

विभीषण को कवि ने वाल्मीकि के अनुरूप अधिक, तुलसीदास के कम, चित्रित किया है। ‘रावणो लोकरावणः’ से मेल खाते पद यहां भी आते हैं—

रावण, रावण, लम्पट, खल, कलमष गताचार...।

वाल्मीकीय रामायण में विभीषण की राम-शक्ति के भीतर हम उसकी राज्य-लोलुपता देखते हैं, वहीं निर्बलता यहां भी अंकित की गई है। विभीषण के पास राम को उत्साहित करने के लिए इससे बढ़िया दूसरी तरकीब नहीं कि वह उन्हें सीता के दुख की याद दिलाए और उन पर व्यंग्य करे कि उन्होंने उसे लंका का राज्य खूब दिया।

मैं बना किंतु लंकापति
धिक, राघव धिक, धिक!

इस एक पंक्ति के व्यंग्य द्वारा कवि विभीषण की सारी निर्बलता स्पष्ट

कर देता है। राम पर इन ओज भरे शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी विरक्ति बहुत ही गहरी है; वे शब्द सुनते हैं पर उनके अर्थ तक पहुंचने की चेष्टा नहीं करते। कवि ने राम की निराशा का सुंदर चित्रण किया है।

बोले रघुमणि—‘मित्रवर, विजय होगी न समर
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण
उतरीं या महाशक्ति रावण से आमंत्रण
अन्याय जिधर हैं उधर शक्ति!’ कहते छल-छल
हो गए नयन, कुछ बूंद पुनः ढलके दृग-जल;

राम की निराशा फिर हमें वाल्मीकि का स्मरण कराती है, अत्यंत मानवीय और नाटकीय चरित्र-विकास की कसौटी पर निखरी हुई। तुलसीदास में जहां राम निराश होते हैं वहां भी जैसे स्वतः नहीं, प्रकट, केवल दर्शकों के लिए; और कवि-सूत्रधार तुलसीदास उसका अर्थ समझाते चलते हैं। पहली बार उनके आंसू गिरने पर हनुमान का पौरुष जागा था; इस बार लक्ष्मण की बारी है। थोड़े से शब्दों में,—‘चमका लक्ष्मण तेजः प्रचंड’ कवि लक्ष्मण के चरित्र की झांकी हमें दिखा देता है। चरित्र-चित्रण की पटुता यहीं दर्शनीय है। यह लक्ष्मण हमारे कितने परिचित जान पड़ते हैं। और भक्त हनुमान—

धंस गया धरा में कपि गह युग पद मसकंदंड।

जाम्बवान सब बातें समझते हुए स्थिर हैं; सुग्रीव घाव-सा खाए अत्यंत व्याकुल हैं और विभीषण मन ही मन सोचते हैं कि आगे अब और कौन-सा पांसा फेंका जाय। इस प्रकार, मौन में रहा सुस्पष्टित वातावरण विषम।

एक ही पुरुष की बात का अनेकों पर जो भिन्न प्रभाव पड़ता है, कवि ने थोड़े में, उनकी चारित्रिक विशेषताओं को झलकाते हुए दिखा दिया है। कवि जहां चित्र-सौंदर्य में समुद्र के तूफान और हवा के झकोरों को एक में मिला प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित कर देता है, वहीं वह छोटे-छोटे मनोवैज्ञानिक तथ्यों की ओर इंगित करने में भी नहीं चूकता। वह प्रकृति और मनुष्य के मन में होने वाले संघर्ष को, क्या छोटे क्या बड़े परिमाण में, समाज सफलता के साथ चित्रित कर सकता है। इस उबा देने वाली शांति का वर्णन पढ़ हम क्षण भर को भूल जाते हैं कि अभी जल और वायु अपनी असंयमित क्रीड़ाओं में लगे हुए थे।

आगे राम-युद्ध का वर्णन करते हैं। एक बार कवि यह दिखा चुका है कि राम के बाण देवी ने अपने ऊपर सहते रावण की रक्षा की थी। यह उसी का और सविस्तार वर्णन है। शक्ति की इस कल्पना में ओज है साथ ही राम की पराजय में एक बहुत ही मार्मिक वेदना। कविता भर में मुझे यह सबसे दोषहीन पैराग्राफ लगा, इसलिए इसे पूरा उद्धृत करता हूं। कवि अपनी पूर्ण प्रौढ़ता में यहां दिखाई देता है; भाषा और भाव पर अद्भुत आधिपत्य है।

निज सहज रूप में संयत हो जानकी-प्राण
बोले—‘आया न समझ में यह दैवी विधान’
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ ऊपर
यह रहा शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार-बार शर निकर त्रिशित
हो सकती जिनसे यह संसृत संपूर्ण विजित
जो तेजःपुंज सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिनमें निहित पतनघातक संस्कृति अपार—
शत शुद्धि-बोध सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक
जिनमें है क्षात्र-धर्म का धृत पूर्णाभिषेक

जो हुए प्रजापतियों से संयम से रक्षित
वे शूर हो गए आज रण में श्रीहत खंडित!
देखा है महाशक्ति रावण को लिए अंक
लाछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक
हत मंत्र पूत शर संवृत करती बार बार
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र बार पर बार!
विचलित लख कपिदल क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों
झक-झक झलकती वहि वामा के दृग त्यों-त्यों
पश्चात्, देखने लगीं मुझे बंध गए हस्त
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बंधा मैं, हुआ त्रस्त!

संग्राम से पूर्व राम ने भी शंकर की उपासना की थी परंतु उन्होंने राम का साथ न दे रावण का ही साथ दिया। शक्ति की उपासना अभी राम द्वारा पूर्ण रूप से नहीं संधी। बार-बार बाण बरसाने पर भी वे श्रीहत खंडित हो जाते हैं। और इन बाणों में पतन-घातक संस्कृति है; राम, विध्वंस के साथ पालन करना भी जानते हैं। बाणों का मंत्र पढ़कर चलाया जाना पुराण-प्रसिद्ध है परंतु उनके भीतर विनाश और निर्माण देखना मौलिक और आधुनिक है। ऐसे ही स्थल इस कविता को पुरानी कथाओं के अनुवर्तन मात्र से भिन्न, एक मौलिक कृति के रूप में हमारे सामने रखते हैं। महाशक्ति का रावण को अंक में लेना, जैसे चंद्रमा अपने अंक में कलंक धारण करता है, दोनों के वैचित्र्य से एक अपूर्व चित्र तैयार करता है।

जाम्बवान जो सब बातें समझते हुए अभी तक चुप थे अपना मौका देख अब राम को शक्ति की नए रूप से पूजा करने की मंत्रणा देते हैं। अनुभवी सेनानी की भांति वे राम की अनुपस्थिति में आगे का कार्यक्रम निश्चित करते हैं और राम को साधना के लिए छुट्टी देते हैं। राम जाम्बवान की बात मान लेते हैं और प्रकृति में देवी की कल्पना कर पुलकित होते उसका कर्म दूसरों को भी समझाते हैं। हनुमान इसके बाद पूजा के फूल लाने चल देते हैं। भोर होते ही राम आसन पर बैठ जाते हैं; दूर पर युद्ध का कोलाहल सुनाई पड़ता है परंतु वे चुपचाप अपने ध्यान में लीन बैठे रहते हैं। एक दिन पूजा में बीत जाता है और उनकी साधना गहन होती जाती है। पांच दिन बीतते हैं और किसी योगी की भांति उनका मन एक चक्र से दूसरे चक्र पर चढ़ने लगता है।

चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन
प्रति जप से खिंच खिंच होने लगा महाकर्षण।

छह दिन पार होने पर अंतिम चक्र रह जाता है और राम के पास कमल भी एक रह जाता है। दुर्गा इसी समय आधी रात को छिपकर वह कमल चुरा ले जाती हैं। कमल न मिलने पर अपनी स्वाभाविक निराशा से वह विकल हो उठते हैं।

धिक् जीवन में जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!
जानकी हाथ उद्धार प्रिया का न हो सका!

लेकिन राम फिर संभलते हैं और सोचते हैं—

कहती थीं माता मुझे सदा राजीबनयन
दो नील कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
पूरा करता हूं देकर, मात एक नयन।

इस विपत्ति के समय माता का स्मरण होना और फिर नयन राजीव से देवी की अर्चना के लिए सन्मथ होना—यहां राम की बालसुलभ सरलता और साहस अत्यंत करुण हैं। अनेक पौराणिक कथाओं में जैसे भगवान ठीक मौके पर आकर भक्त को मरने से बचा लेते हैं वैसे ही यहां देवी राम को यह अंतिम कमल समर्पित करने से रोक लेती है।

साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन-धन्य राम
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त धाम!

देवी अपने पूर्ण रूप में प्रकट होती है और राम के मुख में लीन हो जाती हैं।

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन!

इस प्रकार संशय से आरंभ कर निराशा के बीच होते हुए विजय की पूर्ण आशा में इस कविता की समाप्ति होती है।

राम की शक्तिपूजा और तुलसीदास निश्चय निरालाजी की आज तक की कृतियों में महत्तम हैं। एक तरह से वे बिल्कुल नई हैं जिनकी तुलना उनके गीतों और मुक्तों से करनी भी न चाहिए, परंतु इन्हें पढ़ते हमें अनुभव होता है कि कवि की प्रतिभा अपने पूरे विकास के लिए गीत और मुक्तकों से अधिक परिमाण चाहती है। भावों की गुत्थियां उलझाता-सुलझाता हुआ वह बड़ी-बड़ी इमारतें तैयार कर सकता है। जिस सतह के भाव हमें इन दो कविताओं में मिलते हैं, उस सतह के भावों के लिए हम व्यर्थ ही उनकी पहली कविताओं में खोज कर सकते हैं। एक नई बात चरित्र-चित्रण की है जिसकी आभा मात्र 'पंचवटी-प्रसंग' में मिलती है। उसके साथ इन दो में से किसी की भी तुलना करने पर कवि की प्रौढ़ता समझ में आ जाती है। रहस्यवाद में जो कुछ भी अत्यंत ओजपूर्ण है वह इन कविताओं में समाहित है। युद्ध की आकांक्षा, संघर्ष से प्रेम, विजय का उल्लास, ये ही इन कविताओं की मौलिकता है। रहस्यवाद और निराशा का समन्वय यहां आधी के आगे रुई की तरह उड़ जाता है। यहां की मानसिक क्रियाएं बड़ी ही गतिशील और वेगवान होती हैं परंतु उस सतह पर, जो मनुष्य के विकास में सबसे ऊपर की होती है। और फिर भी ये कविताएं साहित्य में नई, कवि के लिए भी नई हैं। अब भी अधिक विकास की गुंजाइश है। 'यहां तक ही, इससे आगे नहीं—इनकी पूर्णता के लिए नहीं कहा जा सकता जैसे कवि की कुछ अन्य छोटे परिमाणवाली कृतियों के विषय में कहा जा सकता है। इसी राम की शक्तिपूजा में Pathos का एक उत्कृष्ट उदाहरण मिल सकता है—

फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर से अंतर सींचते हुए—

इनसे अधिक नीरस और हल्की पंक्तियों की एक सुंदर कविता में कल्पना करना मेरे लिए दुष्कर है। परंतु वे क्षम्य हैं, इसलिए कि वे कवि निराला की हैं। क्या शेक्सपियर के साधारण पात्र कभी-कभी हास्यास्पद आलंकारिकता के साथ नहीं बोलते? अनुभव की हमें यहां एक नई भूमि मिलती है; भाषा और भावों का गठन और ओज अधिकांश स्थलों पर अनुपम हैं और हमारे लिए यह काफी है। शब्दों के प्रास देते हुए कवि ने जो अपनी पंक्तियों की गति में भंग दिए हैं वे पढ़ने में बड़े सुखद लगते हैं—

वारित सौमित्रि-मल्लपति—अगणित-मल्लरोध

पृष्ठ 24 पर जारी

रामविलास जी की पहली डायरी

विजय मोहन शर्मा

रामविलास जी डायरी लिखते थे, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि वे डायरियां लिखते थे। लेकिन यह डायरियां उस तरह की नहीं थीं जैसी लोग आमतौर पर लिखते हैं। यह डायरियां वह अपने निजी उपयोग के लिए लिखते थे और जैसा उनका चरित्र था उनमें किसी तरह की बनावट या दिखावा बिल्कुल नहीं था। इन डायरियों को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है—पहला, वह डायरियां जिनमें वह रोजमर्रा की महत्वपूर्ण घटनाएं या बातें रिकॉर्ड करते थे। इन डायरियों में यथासंभव तिथि और समय का ध्यान रखा जाता था। घर में कौन आया, कौन गया, दिन में क्या महत्वपूर्ण काम किया, कोई अप्रत्याशित घटना हुई—अपने पढ़ने-लिखने से संबंधित बातें भी इसमें दर्ज होती थीं, कभी कभी अपने लिए नसीहतें। आने-जाने वालों ने अगर उनका समय नष्ट किया या समय पर न आकर देर से आए तो उनको प्रसाद स्वरूप कुछ 'उद्गार' भी।

दूसरा, वह डायरियां जिनमें वह लगभग हमेशा साथ रखते थे—ख़ास तौर पर रात को सोते समय—एक पेन और एक टार्च भी साथ रहती थी। काम करते-करते अथवा सोते-सोते कोई नया विचार या आइडिया मन में आया तो उसे तुरंत नोट कर लिया—मन में कब क्या चलने लगता है इस पर नियंत्रण रखना आम आदमी के लिए तो मुश्किल होता ही है, उनके लिए और भी मुश्किल था क्योंकि उनका मन पंखी कभी-कभी सातवें आसमान तक की उड़ान भरने लगता था—कभी-कभी पत्नी की बीमारी में तीमारदारी करते हुए, उनके सिरहाने बैठे हुए उनका मन इधर-उधर 'उड़ने' लगता था, वह अपने मन को बहुत समझाते थे कि यह समय और अवसर इस तरह की उड़ानें भरने का नहीं है, लेकिन मन तो मन। वह भला क्यों मानने लगा—ऐसे में मन की बात डायरी में नोट कर उसे शांत कर लेते थे—इसी तरह सोते समय कोई विचार परेशान करने लगे तो उसे नोट करके फिर से सो जाने में मदद मिलती होगी—तीसरी किस्म उन डायरियों की थी जो विषय विशेष के लिए बनाई जाती थीं। कभी-कभी यह डायरियां पुस्तक-विशेष या प्रोजेक्ट विशेष के लिए बनाई जाती थीं। इनमें जो लिखा जाता था वह अक्सर प्रतीकात्मक होता था, संदर्भ

जाने बिना उनको समझ पाना मुश्किल था।

डायरियों के भर जाने पर अथवा उनका काम समाप्त हो जाने पर उन्हें 'स्क्रेप बुक्स' में बदल दिया जाता था। पुरानी डायरियों के इस रूप को यह नाम मेरा ही दिया हुआ है। उन्हें अखबारों में या पत्र-पत्रिकाओं में जो चीज़

अच्छी लगती थी उसे काट कर डायरी यानी स्क्रेप बुक्स में चिपका लेते थे। इन चिपकाई हुई चीज़ों में कार्टून थे, फोटोएं थीं, डाक टिकट थे और ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानकारी भी थी। लेकिन यह प्रविष्टियां किन लोगों से संबंधित थीं, किन लोगों को रामविलास जी ने इस लायक समझा कि उनके चित्र या उनसे संबंधित जानकारी को अखबारों से काटकर अपनी स्क्रेप बुक में लगाया जाए, यह जानना भी बड़ा दिलचस्प है लेकिन इस संबंध में चर्चा कभी और। इस समय जिस डायरी की चर्चा हम कर रहे हैं, वह संभवतः उनकी पहली डायरी है जो एक पारंपरिक डायरी की तरह शुरू होती है—इसमें रामविलास जी ने शुरू की बातें अंग्रेज़ी में लिखी हैं—डायरी के ऊपर तारीख दर्ज है डायरी 1935; फरवरी 35 लखनऊ। डायरी में ऊपर औरिया,

डायरियों के भर जाने पर अथवा उनका काम समाप्त हो जाने पर उन्हें 'स्क्रेप बुक्स' में बदल दिया जाता था। पुरानी डायरियों के इस रूप को यह नाम मेरा ही दिया हुआ है। उन्हें अखबारों में या पत्र-पत्रिकाओं में जो चीज़ अच्छी लगती थी उसे काट कर डायरी यानी स्क्रेप बुक्स में चिपका लेते थे। इन चिपकाई हुई चीज़ों में कार्टून थे, फोटोएं थीं, डाक टिकट थे और ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानकारी भी थी। लेकिन यह प्रविष्टियां किन लोगों से संबंधित थीं, किन लोगों को रामविलास जी ने इस लायक समझा कि उनके चित्र या उनसे संबंधित जानकारी को अखबारों से काटकर अपनी स्क्रेप बुक में लगाया जाए, यह जानना भी बड़ा दिलचस्प है लेकिन इस संबंध में चर्चा कभी और। इस समय जिस डायरी की चर्चा हम कर रहे हैं, वह संभवतः उनकी पहली डायरी है जो एक पारंपरिक डायरी की तरह शुरू होती है।

इटावा के किसी गणेश परसाद शुक्ल का पता लिखा है, नीचे दस्तखत भी अंग्रेज़ी में ही हैं—बाद में सन 1975 में एक बार दस्तखत हिंदी में किए गए हैं। डायरी के मुखपृष्ठ की प्रतिलिपि चित्र संख्या एक में दर्शाई गई है।

इसकी पहली प्रविष्टि बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर के दर्शन और भाषण का वर्णन किया है—रवींद्रनाथ ठाकुर लखनऊ आए हुए थे और रामविलास जी निराला जी के साथ उन्हें देखने और उनका भाषण सुनने गए थे—लौटकर उन्होंने डायरी में यह वर्णन लिखा होगा और साथ ही रवींद्रनाथ ठाकुर का एक चित्र भी बनाया—लेकिन चित्र उन्हें पसंद नहीं आया, इसलिए उसे उन्होंने काट दिया—उनके बनाए हुए चित्र की प्रतिलिपि को चित्र संख्या दो में दर्शाया गया है—डायरी में आगे चलकर रोजमर्रा की महत्वपूर्ण बातें संक्षिप्त रूप में लिखी गई हैं—इस डायरी की पहली प्रविष्टि इस प्रकार आरंभ होती है,

The First of March, Friday 1935

Today was a day of glory. I saw Tagore, heard him, was quite close to him, as even to have touched him if I liked. My eyes were filled with tears and heart with devotion. The greatest man of India, of the East and of the World. धन्य बंगाली, धन्य हिंदुस्तान...

इस पूरे प्रकरण का अनुवाद कुछ इस प्रकार है,

पहली मार्च 1935, शुक्रवार

आज का दिन बड़ा शुभ था। मैंने टैगोर को देखा, सुना। मैं उनके इतने निकट था कि चाहता तो छू सकता था—मेरी आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं और हृदय श्रद्धा भाव से। भारतवर्ष का महानतम पुरुष, एशिया का भी और विश्व का भी। धन्य बंगाली, धन्य हिंदुस्तान—

वह लगभग आधा घंटा बोले, मुख्यतः पूर्व के दर्शन पर, 'मैटैरियलिज़्म' की बेड़ियों से 'स्परिट'

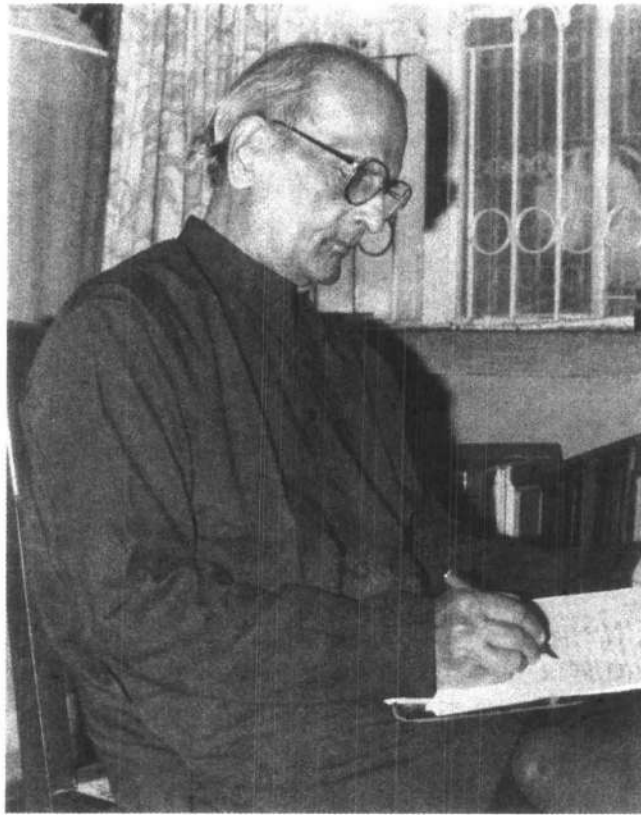
को मुक्त करने पर उनकी अपने संदर्भ में कही बातों से मेरी आंखों में आंसू आ गए, पहले वाक्य मात्र से मुझे रोमांच हो आया था। अपने जीवन में उन्होंने कितने हजार जीवन जिए होंगे और अपनी मृत्यु में कितनी बार वह नहीं मरेंगे? उन्होंने अनेक सुंदर बातें कहीं, हम लोगों और आने वाली संतानों से उनके लिए जगह रखने के लिए कहा, जगह चबूतरों पर नहीं, बल्कि अपने दिलों में—हम लोग जीवन की ऐसी राह पर खड़े हैं जहां सूर्य उदय हो रहा है, वह जिस जगह खड़े हैं वहां सूर्यास्त हो रहा है इसलिए हम उन्हें अपने प्रकाश से सहायता दे सकते हैं—

अपना भाषण समाप्त करने और कविता पढ़ लेने के बाद वह कार के पास आए। आते समय डी. पी. मुखर्जी और एक अन्य ने उनकी सहायता की। उस समय मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा। वह थोड़ा-सा झुक गए थे। उनके चेहरे पर अद्भुत आभा थी, आंखों में चमक, लेकिन मुझे वह रहस्यवादी कवि की जगह सांसारिक सौंदर्य के महान प्रेमी ज्यादा लगे जैसा कि उन्होंने कहा था, हमें सौंदर्य की आत्मा को पदार्थ के माध्यम से देखना चाहिए। जब वह कार में बैठे थे, मैं खिड़की के पास था और छात्रों का झुंड आसपास था। छात्रों की भीड़ इतनी बढ़ गई थी कि कार चलाने में मुश्किल हो रही थी। डी. पी. मुखर्जी उनके बगल में बैठे थे।

उन्होंने एक गहरे लाल रंग की वेलवेट की टोपी पहन रखी थी और कलथई गाउन पहन रखा था। मैं उनके चेहरे को देखने में इतना मगन था कि मैंने इस पर ध्यान ही नहीं दिया कि उन्होंने जूते कैसे पहन रखे थे।

उनकी आवाज़ गंभीर थी, संगीतमय। अपनी उम्र के लिए आश्चर्यजनक रूप से मजबूत। उनका बोला हुआ प्रत्येक शब्द मैंने बड़े ध्यान से सुना।

निस्संदेह यह मेरे जीवन का महानतम, प्रसन्नतम, सौभाग्यतम और रौशनतम दिन था। और फिर भला हो निराला जी का जिन्होंने उनकी



कविताओं से मेरा परिचय कराया।

उनकी नाक बहुत लंबी नहीं थी, लगभग निराला जी जितनी चमक और गोरेपन को छोड़कर निराला जी के नक्श ज्यादा प्रभावशाली हैं, बड़ी-बड़ी आंखें, ज्यादा उभरी हुई शेक्सपीयर जैसी 'चीक बोन्स'। निराला जी भी बहुत प्रभावित हुए थे और देर तक टैगोर के बारे में बात करते रहे थे।

एक बात और—उन्होंने सच ही कहा, मैं अपने गीत गा चुका हूँ, अपने स्वप्न देख चुका हूँ, अब तो मैं उन्हें सिर्फ दोहराता भर हूँ।

10.4.35

(उन दिनों रामविलास जी निराला जी के साथ ही रह रहे थे। जो भी कविता लिखते थे उसे निराला जी को दिखाते थे। रामविलास जी ने एक कविता लिखी थी जिसका शीर्षक था 'मेनका'। रामविलास जी ने बाद में इस कविता को अपने संकलन में से निकाल दिया)

कल निराला जी मेनका कविता को लेकर मेरा मजाक उड़ा रहे थे। उन्होंने पहली बीस लाइनें पढ़ीं। (वह पूरी कविता पहले पढ़ चुके थे, यह नकल किसी पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजने के लिए की गई थी।) वह खास तौर से इन लाइनों को लेकर हंस रहे थे,

मेनका महेंद्र-प्रार्थिता, जहां तपस्थली में बैठे ऋषि विश्वामित्र।

उन्होंने कहा, उन्हें ऐसा लगता है, जैसे विश्वामित्र की चोरी पकड़ी गई हो और वह भागने की कोशिश कर रहे हों। मैं उनसे सहमत नहीं था और मैंने कहा, आपको यह नहीं मालूम कि इस कविता को कैसे पढ़ना है। उन्हें बुरा लगा होगा लेकिन मुझे और भी बुरा लगा जब उन्होंने कहा, यह कोई वर्स (कविता) नहीं है। मुझे विश्वास है कि यह कविता है। उन्होंने कहा, इसमें कवित्व की गति नहीं है। लेकिन मैं चाहता भी नहीं था कि इसमें गति हो।

14.4.35

(रामविलास जी और पंत जी की पहली मुलाकात का जिक्र)

16 अप्रैल मंगलवार के दिन संध्या समय निराला जी मुझे पंतजी के घर ले गए और उनसे मेरा परिचय कराया। कल पंत जी ने हम लोगों के साथ 'हिमालयन' में खाना खाया। मेरे अनुरोध पर निराला जी ने अपनी कविता सुनाई,

जग के उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन

लेकिन बड़ी मुश्किल से कविता सुनाने के लिए तैयार हुए। कुछ उखड़े-उखड़े से लग रहे थे।

27.7.35

शाम को अभी हसरत आया था। माधुरी आँ के किस्से सुना रहा था। बांके बिहारी पांडे जी को बनाने को कह रहा था संपादकीय एक अनुवाद करने पर टिप्पणी लिख दीजिए। निराला जी रूपनारायण का पक्ष लेकर कुछ देर तक

उनका डिफेंस पेश करते रहे-एक ऐसी महफिल में जो कुछ सुनने को तैयार न थी-हसरत ने रामकृष्ण को पैसे देने के बारे में कहा कि अभी कुछ नहीं दे सकते! हसरत की 'शक्ति' कविता को देख कर कहा, तुम रामविलास से भी दो कदम आगे बढ़ रहे हो ! (संदर्भ मेनका) 'सांग ऑफ सन्यासिन' का अनुवाद शायद उनको अच्छा नहीं लगा; केवल निरालाजी के कहने से चूक कर दिया था छपेंगे, इसलिए वचनबद्ध थे।

निरालाजी का लेखक बहुत बुरा लगा-हसरत से बोले, अभी तुमको कुछ आशा ही न करनी चाहिए-छप जाएं चीजें तो अहोभाग्य सम्झो-हम लोग पांच-छह रुपये पेज ले सकते हैं इत्यादि, अपने विषय में बहुत बढ़कर-... न जाने कितनी थीसिस बह जाती हैं-इत्यादि-

रूपनारायण ने अनुवाद किए हैं-मौलिक गद्य उतना अच्छा नहीं है-साहित्य का ज्ञान कम है-निराला जी उनके लिए आजकल बहुत बहस करते हैं- जैसे वह इनको फेवर करते हैं उमेश कहता था, सदा इनकी पीठ पीछे बुराई करता है-अपशब्दों का प्रयोग भी।

निराला जी ने जो सीख हसरत को दी थी उसके पीछे उनका व्यंग्य भी था जिसका जिक्र मैंने किया था-सीधी-सीधी पत्रकारिक बातें लिखने में कल्याण है। आत्मसम्मान की अत्यंत चतुराई से रक्षा करनी चाहिए-सुंदर मौलिक काम की पत्रिकाओं में कद्र नहीं। उसे लिखकर घर पर इकट्ठा करते रहो-'सांग ऑफ सन्यासिन' के मेरे अनुवाद को हसरत के अनुवाद से सुंदर बताया था!

लोककथाएं

इसके अगले पृष्ठ पर रामविलास जी ने एक सूची दी है-उन्होंने अलग-अलग सूत्रों से कुछ लोककथाएं सुनकर उनका एक संकलन निकालने की योजना बनाई थी-इस तालिका में कहानियों के नाम, किस से सुनी पृष्ठ संख्या आदि की सूचना है। दुर्भाग्यवश यह संकलन प्रकाशक से खो गया-

पृष्ठ संख्या	कहानी का शीर्षक	सुनाने वाले का नाम	कहां पर लिखी	किस दिन समाप्त की
9	चंपावती की राजकुमारी	पिताजी	लखनऊ	—
13	अकल लो अकल	पिताजी	लखनऊ और ऊंचगांव	1.10.35
7	चांदी का वृक्ष, सोने की पत्तियां, मोतियों के गुच्छे	श्रीमती इंदु दत्त शर्मा	ऊंचगांव	4.10.35
10	यज़ीर का लइका	काशी (ऊंचगांव)	ऊंचगांव और लखनऊ	10.10.35
8	ब्राह्मण, गधा भगवान	काशी (ऊंचगांव)	लखनऊ	16.10.35
6	कोदो दलने वाला राजा	काशी (ऊंचगांव)	लखनऊ	17. 10. 35
5	गैन्दरानी	काशी (ऊंचगांव)	लखनऊ	18. 10. 35
5	छः पैसे वाला	मतऊ	लखनऊ	30. 10. 35
6	चार सुर	मतऊ	लखनऊ	5. 5. 35
9	देश निकाला	मतऊ	लखनऊ	6. 5. 35

इसके आगे लिखा है कि पुस्तक प्रकाशक तिवारी के अचानक देहांत हो जाने के कारण छप न सकी और खो गई-रामविलास जी उन दिनों कहानियां इकट्ठा करने और उपन्यास लिखने में लगे थे-उन्होंने अपना उपन्यास छार दिन पांच महीने में समाप्त कर लिया था-झायरी में इसके बारे में लिखा है,

चार दिन-आरंभ की : 14 अप्रैल 1934; समाप्त की : 21 सितंबर 1934, प्रेस के लिए दोबारा लिखी (छापने के लिए स्वच्छ कापी) 11 अक्टूबर 1934
कुल समय-14 अप्रैल से लेकर 11 अक्टूबर, 1934-5 महीने

संपर्क : सी-358, विकासपुरी, नई दिल्ली

राम की शक्तिपूजा

पृष्ठ 21 से आगे

बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।

आदि पंक्तियों में शब्दों के आवर्त दर्शनीय हैं और उनके पाठ-सुख को बढ़ाते हैं। माधुरी में अपने एक लेख में मैंने रामचरितमानस में ऐसे सानुप्रास आवर्तों के सौंदर्य पर लिखा था। तुलसीदास के आवर्त मधुर होते हैं और कला की सूक्ष्मता दर्शित करते हैं। निरालाजी के अधिक ओजपूर्ण और स्वर-सौंदर्य के लिए होते हैं। परंतु पंक्ति में इस प्रकार का भंग आवर्तों द्वारा ही नहीं, और सूक्ष्म रूप से, स्वर और व्यंजनों की सजावट से भी किया जाता है।

हर-धनुर्भंग को पुनर्बार ज्यों उठा हस्त

वे आए याद दिव्य शर अगणित-मंत्र पूत

लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक-

आदि पंक्तियों में स्वर का उत्थान स्वर-व्यंजनों की कुशल मैत्री पर निर्भर है। पर छंद-सौंदर्य की बहुत तरकीबें हैं, उनका परिगणन संभव नहीं।

पंक्तियां जैसे-

अकझक झलकती वहिन बामा के दृग त्यों-त्यों

अत्यंत प्रभावपूर्ण है किंतु उनके स्वर विस्तार की व्याख्या करना उतना ही कठिन है, शायद व्यर्थ भी। कवि अपनी कला को भूल जाता है, शब्द भावावेश में आप निकलते हैं, तर्क उनकी पहले सिद्धि नहीं करता। जहां उदात्त स्वर की ऐसी प्रधानता है, वहां निम्न पदों पर की गई स्वरों की मैत्री भी हृदय पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहती।

कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन!

आदि पंक्तियां अपनी कोमलता में यथास्थान बीच-बीच में अलग ही सजी हुई हैं। क्या भाव क्या छंद, दोनों के उत्थान-पतन और मैत्री अद्भुत हैं। चरित्र-चित्रण की लघुता और साथ ही कथा का सुगठन इस कविता के लिए हिंदी की सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से होने का दावा करते हैं। कहानी कहते वक्त जैसे मिलानी दी जाती है, वैसे ही अन्य साहित्यों की मौलिक कृतियों के सामने इसे रख हम उन्हें बगलें झांकते देख मन में खुश हो सकते हैं। हिंदी में इस कविता की प्रतिद्वंद्विता करने वाली कवि की दूसरी कृति तुलसीदास जिस पर फिर कभी लिखूंगा। तब तक आशा है वह कोई ऐसी रचना देंगे जो इन दोनों से भी बढ़कर होगी।

* राम की शक्तिपूजा, निरालाजी की काव्य-कृति, सन् 1936 ई. के पृष्ठ 11-12 पर प्रकाशित है। भारत के साप्ताहिक अंक, सोमवार 16 अक्टूबर

(साभार : माधुरी, मई 1938)

महान भारतीय आलोचक-विचारक

रविभूषण

रामविलास शर्मा की जन्मशती किसी भी भारतीय कवि, लेखक, आलोचक की जन्मशती की तुलना में इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने समाज, भाषा और साहित्य के संबंध में नई, मौलिक, विचारोत्तेजक और विवादास्पद स्थापनाएं-अवधारणाएं प्रस्तुत की हैं। हिंदी समाज, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के संबंध में उनके विचार सर्वमान्य नहीं हैं, पर यह भी सच है कि वे हमें नए सिरे से सोचने के लिए, संवाद के लिए, वाद-विवाद और बहस के लिए प्रेरित करते हैं। एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा है—“मैं चाहूंगा कि मुझे बिल्कुल याद न किया जाए। इसके बजाय मैं जिन समस्याओं को हल करने में लगा रहा या जिन प्रश्नों पर सोचता-विचारता रहा, उन्हें याद किया जाए।”

रामविलास शर्मा हिंदी भाषा और साहित्य के गौरव, हिंदी आलोचना के हिमालय, हिंदीभाषी, भारतीय जनता के हितैषी, महान देशभक्त, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के मार्क्सवादी आलोचक, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, संप्रदायवाद के विरोधी, हिंदी के स्टैंडर्ड गद्यकार, बहुभाषाविद, कवि, संपादक, अनुवादक, जीवनी-लेखक, पत्र-लेखक, भाषा वैज्ञानिक, प्रचलित और मान्य अर्थों से भिन्न इतिहासकार और अर्थशास्त्र के गंभीर अध्येता, संस्कृति-सभ्यता समीक्षक, लोक-चिंतित हिंदी जाति और हिंदी नवजागरण के मौलिक चिंतक, उपनिवेशवाद, रूढ़िवाद, जातीय-बिरादरीवाद के विरोधी, भारतीय परंपरा और संस्कृति के प्रति आस्थावान, लोकतांत्रिक, प्रगतिशील, जनवादी, वर्तमान

सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था से असंतुष्ट एक नई लोककल्याणकारी समाजवादी व्यवस्था के आकांक्षी, परिवर्तनकारी हैं—कनाडा के बुद्धिजीवी प्रोफेसर रॉबर्ट लैक्सर के अनुसार मानव समाज में एक ‘आश्चर्य’ उनका व्यक्तित्व और कृतित्व—दोनों नवजागरण काल के महान व्यक्तियों की याद दिलाता है।

रामविलास जी का लेखन काल लगभग छियासठ वर्षों का है—1934 से 2000 के आरंभ तक। सौ से अधिक उनकी पुस्तकें (पुस्तिकादि सहित) प्रकाशित हैं और यह सच है कि उनके समस्त लेखन का अब तक व्यापक-गंभीर अध्ययन नहीं किया गया है। यूरोप के पहले दार्शनिक थलेसे से लेकर मार्क्स और लेनिन तक ही नहीं, आज के अमरीका तक और भारत में ऋग्वेद से

लेकर अपने समय के भारत तक उन्होंने जो विचार किया है, वह केवल अपनी व्यापकता के कारण नहीं, कई विवेचनाओं-दृष्टियों के कारण महत्वपूर्ण हैं। रामविलास जी ने सदैव अपनी मान्यताएं-स्थापनाएं बिना किसी झिझक के प्रस्तुत की हैं। तथ्यों, साक्ष्यों और तर्कों से उन्होंने अपनी जो धारणाएं व्यक्त कीं, उन्हें निरस्त करने के लिए वैसे ही प्रमाण जुटाने होंगे। वे साधक थे। निराला की साहित्य-साधना की तरह ही रामविलास जी की भी साधना है।

हिंदी समाज और हिंदी जाति का छिटपुट रूप से उल्लेख रामविलास जी के पहले भी हुआ था। पर उसे व्यवस्थित, सुचिंतित, सुविचारित, सुतार्किक

रूप से एक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उन्हें ही है। हिंदी जाति का साहित्य (1986) के प्रकाशन से दशकों पहले 1949 से ही उन्होंने हिंदी जाति पर विचार करना आरंभ किया था। भाषा और समाज (1961) महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (1977), भारतीय साहित्य के इतिहास की समीक्षाएं (1986), हिंदी जाति का साहित्य (1986), भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, खंड-1 (1982), भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद (1992) तथा भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, खंड-1-2, 1999) उनके प्रमुख ग्रंथ हैं, जिनमें जाति और हिंदी जाति पर उनके महत्वपूर्ण विचार हैं। मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन के जाति-संबंधी विचारों को डा. शर्मा ने आगे बढ़ाकर हिंदी जाति की नई स्थापना दी।

रामविलास शर्मा साम्राज्यवाद विरोधी आलोचक हैं। उनके लेखन में ‘एकात्मकता, अंतःसंबद्धता और अंतःसूत्रता’ है। किसी भी विषय को उन्होंने अलग और निरपेक्ष रूप में नहीं देखा। उनके लिए जीवन यथार्थ ही सब कुछ था। जहां से ‘सभी प्रकार के शास्त्र, साहित्य और दर्शन सैद्धांतिक मान्यताएं विकसित करते हैं’। निरंतर साठ वर्ष तक उन्होंने साम्राज्यवाद का अपने लेखन में विरोध किया। उन्होंने अपने को ‘आग्रहहीन इतिहासकार’ नहीं कहा है। अपने को ‘इतिहासकार’ और ‘इतिहास-विवेचक’ न मानने के बाद भी उन्होंने अपने ‘साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी आग्रह’ की बात कही है। समाज को वे सदैव विकासमान मानते थे और ‘जो प्रवृत्तियां सामंतवाद को खत्म करने वाली हैं, साम्राज्यवाद को खत्म करने वाली हैं, देश को आगे बढ़ाने वाली हैं’ उनका उन्होंने सदैव समर्थन किया।

हिंदी और बांग्ला में ही नहीं, मराठी में भी ‘जाति’ शब्द पहले से प्रयुक्त होता रहा है। ‘महाराष्ट्रीय जाति का अभ्युदय’ लेख कार्तिक प्रसाद ने 1902 की सरस्वती में लिखा था। कम्युनिस्ट घोषणा पत्र (1848) में अंतर्राष्ट्रीयता पर विशेष बल दिया गया था, जिससे कड़्यों को यह गलतफहमी हुई की जातीयता और अंतर्राष्ट्रीयता में विरोध है। कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में यह धारणा मौजूद है कि आधुनिक जातियां पूंजीवाद की देन हैं। रामविलास जी की स्थापना यह है कि जाति का निर्माण औद्योगिक पूंजीवाद के दौर में न होकर व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में होता है। औद्योगिक क्रांति के सदियों पहले इटली में जाति निर्माण हो चुका था।

भारत बहुजातीय राष्ट्र है और अनेक भारतीय इतिहासकारों के अनुसार

आधुनिक साहित्य का निर्माण और भारत में जातियों का निर्माण अंग्रेजों के आगमन के बाद हुआ अर्थात् भारत में जाति-निर्माण अंग्रेजों की देन है। रामविलास जी ने बार-बार तर्कों, तथ्यों और उदाहरणों से यह साबित किया है कि भारत में अंग्रेजों की भूमिका विघटनकारी और विध्वंसकारी थी। वे जातियों के निर्माण के बिना जातीय भाषा, साहित्य और संस्कृति का अस्तित्व नहीं देखते। उनकी विचार और चिंतन दृष्टि उन आलोचकों से सर्वथा भिन्न है, जो भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास को सामाजिक विकास से जोड़कर नहीं देखते। उन्होंने 1949 में 'हिंदुस्तानी जाति' की बात कही थी। अंग्रेजी में लिखा हुआ उनका यह लंबा लेख पार्टी के मुखपत्र *कम्युनिस्ट* में प्रकाशित हुआ था और उसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ था। अब यह लेख *राष्ट्रभाषा की समस्या* (1956) में 'भारत की भाषा-समस्या' शीर्षक से संकलित है। इस लेख में उन्होंने राहुल सांकृत्यायन और शिवदान सिंह चौहान की आलोचना की और जनपदों के आधार पर जाति के विभाजन को गलत माना, हिंदी-उर्दू को एक भाषा माना। उस समय हर बोली के लिए प्रजातंत्र बनाने की मांग उठी थी। उन्होंने लिखा- 'प्रश्न यह है कि अवधी, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी आदि बोलियां हैं या भाषाएं। उनके बोलने वाले हिंदुस्तानी जाति के अंतर्गत हैं या भिन्न-भिन्न स्वतंत्र जातियों के रूप में होंगे?' ऐसी मांग राहुल सांकृत्यायन कर रहे थे और रामविलास जी इसे 'प्रतिक्रियावादी' कह रहे थे, जो 'केवल सामंती वर्गों के हित में है, जो इस तरह एक पतनशील व्यवस्था की रक्षा करना चाहते हैं।' प्रश्न यह है कि आज यह पतनशील व्यवस्था मौजूद है या नहीं और इसके रक्षक-संरक्षक हैं या नहीं?

हिंदी जाति हिंदू संप्रदायवाद और हिंदू राष्ट्र की काट है। जाति में सभी धर्म और जाति के लोग होंगे। बांग्ला देश का निर्माण बांग्ला जाति और बांग्ला भाषा के कारण हुआ। हिंदी जाति की एकता का प्रश्न रामविलास जी के लिए सबसे बड़ा प्रश्न था। हिंदुस्तानी जाति के निर्माण पर 1953 में *इंडियन लिटरचर* में रामविलास जी का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने हिंदीभाषी इलाके के एक होने की बात कही थी। उन्होंने लिखा- 'अंग्रेजों ने 1857 से सबक लेकर हमारे इलाके को सबसे ज्यादा टुकड़ों में बांटा है। सदियों से एक साथ रहने वाले आगरा और दिल्ली भी अलग हो गए।' एकता से खतरा शासक वर्ग को हमेशा रहा है। 1857 में अंग्रेजों ने हिंदीभाषी जनता की एकता और शक्ति पहचान ली थी। भाषा, क्षेत्र, संप्रदाय, धर्म, जाति-बिरादरी स्वतंत्र भारत में अलगाववादी आंदोलन के प्रमुख रूप रहे हैं। रामविलास जी ने इन विविध रूपों में धर्म और जाति-बिरादरी वाला रूप प्रमुख माना और बार-बार अलगाववादी आंदोलनों को अशक्त और समाप्त करने के लिए जातीय चेतना का विकास आवश्यक समझा। *भाषा और समाज* में ही उन्होंने यह लिखा था- 'अंग्रेजों ने यहां की जातियों के विकास को हर तरह से रोका, सांप्रदायिकता के आधार पर उन्हें विभाजित करने की नीति अपनाई, इसका यह अर्थ नहीं कि स्वाधीन भारत के विचारक भी जातियों का विकास रोकें और उनके अस्तित्व से ही इंकार कर दें।' साम्राज्यवादी शक्तियां सदैव जातियों को विभाजित करने का प्रयत्न करती हैं। एकता से- किसानों-मजदूरों की एकता हो या विभिन्न धर्म के लोगों की एकता-इनसे उन्हें घबराहट होती

है। हिंदी जाति भारत की सबसे बड़ी जाति है। इसे तोड़ने में जहां प्रभुवर्ग सक्रिय रहता है, रामविलास शर्मा उसे जोड़ने में, एक करने में सदैव सक्रिय रहे। यह वह लड़ाई है, जो लगभग उन्होंने स्वतंत्र भारत में अंत तक अकेले लड़ी। जिन लोगों ने इसका समर्थन किया, उन्हें रामविलास जी का भक्त कहा गया।

भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में हिंदी जाति सबसे बड़ी जाति है। भारत के कुल क्षेत्रफल 32, 87, 263 वर्ग किलोमीटर का 41.23 प्रतिशत क्षेत्रफल (13,55,401 वर्ग किलोमीटर, चंडीगढ़ को छोड़कर) हिंदी प्रदेश का है। हिंदी जाति की एकता का महत्व आसानी से समझा जा सकता है। रामविलास जी इसकी एकता को ज़रूरी समझते थे। रामविलास जी के लिए जातीयता की समस्या राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से जुड़ी हुई है। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए वे यह आवश्यक मानते थे कि हिंदी जाति आंतरिक रूप से एकताबद्ध हो। किसी भी राजनेता, समाजशास्त्री, कवि-लेखक ने ऐसी चिंता नहीं की। हिंदी जाति की प्रतिरोधात्मक शक्ति को बढ़ाना लेखकीय दायित्व है। रामविलास जी ने हिंदी जाति के अंतर्गत हिंदू-मुसलमान दोनों को रखा। भले इनके धर्म दो हों, पर इनकी जाति एक है। अंग्रेजों के आगमन के पहले दोनों एक ही जाति के अंग थे, दोनों की भाषा भी एक थी। गिलक्राइस्ट ने धर्म के आधार पर भाषा को विभाजित किया। *भाषा और समाज* पुस्तक में उन्होंने लिखा- 'जो एक सांस्कृतिक भेदभाव की बात थी, उसे गिलक्राइस्ट ने बढ़ा-चढ़ाकर धार्मिक भेदभाव की बात बना दिया। अवध, ब्रज, बुंदेलखंड, भोजपुरी जनपदों आदि के गांवों में हिंदू और मुसलमान अपने-अपने यहां की भाषाएं बोलते हैं, धर्म के कारण उनमें



कहीं भी अलगाव नहीं है, इस बात को उन्होंने बिल्कुल भुला दिया।' हिंदी जाति की एकता से ही किसानों और मजदूरों की एकता कायम हो सकती है और साम्राज्यवादी तथा सामंती शक्तियां कमजोर हो सकती हैं।

रामविलास शर्मा साम्राज्यवाद विरोधी आलोचक हैं। उनके लेखन में 'एकात्मकता, अंतःसंबद्धता और अंतस्सूत्रता' है। किसी भी विषय को उन्होंने अलग और निरपेक्ष रूप में नहीं देखा। उनके लिए जीवन यथार्थ ही सबकुछ था। जहां से 'सभी प्रकार के शास्त्र, साहित्य और दर्शन सैद्धांतिक मान्यताएं विकसित करते हैं'। निरंतर साठ वर्ष तक उन्होंने साम्राज्यवाद का अपने लेखन में विरोध किया- ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भाषाई साम्राज्यवाद और अमरीकी साम्राज्यवाद का। उन्होंने अपने को 'आग्रहहीन इतिहासकार' नहीं कहा है। अपने को 'इतिहासकार' और 'इतिहास-विवेचक' न मानने के बाद भी उन्होंने अपने 'साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी आग्रह' की बात कही है। समाज को वे सदैव विकासमान मानते थे और 'जो प्रवृत्तियां सामंतवाद को खत्म करने वाली हैं, साम्राज्यवाद को खत्म करने वाली हैं, देश को आगे बढ़ाने वाली हैं' उनका उन्होंने सदैव समर्थन किया। उनका समस्त लेखन साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध है। किसी भी भारतीय लेखक-आलोचक ने लगातार साठ वर्ष तक ऐसी लड़ाई नहीं लड़ी है। वे जिन चार जगहों-झांसी, लखनऊ, आगरा और दिल्ली में रहे, उनमें झांसी उनका सबसे प्रिय शहर था। बचपन में उन्होंने अंग्रेजों से लड़ने वाले लोगों पर लिखे गए गीत सुने थे। आरंभ में

झांसी की जिस सरस्वती पाठशाला में उन्होंने तीन वर्ष तक पढ़ाई की थी, वह पाठशाला सामान्य नहीं थी। उसका मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों का प्रचार-प्रसार था। छह-सात वर्ष की आयु में ही वे झांसी आए थे। मार्क्सवाद के संबंध में पहली जानकारी उन्हें यहीं प्राप्त हुई थी। इंटर में वैशम्पायन उनके साथी थे। चंद्रशेखर आज़ाद के मित्र मास्टर रुद्रनारायण ने उन्हें कलाई-पंजा लड़ना सिखाया था। वह लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी भाषा में पहले पी-एच.डी. थे। चार-पांच पुस्तकों को छोड़कर उनका समस्त लेखन हिंदी में है। *एस्सेज आन शैक्सपीरियन ट्रेजेडी* के 1998 के नए संस्करण की चालीस पृष्ठों की भूमिका हिंदी में है।

रामविलास शर्मा ने कभी समझौतों को महत्व नहीं दिया। वे सदैव संघर्ष के साथ रहे। 1939 के एक लेख 'राजनीतिक नेता और हिंदी' में उन्होंने लिखा—'आज की भारतीय राजनीति समझौते पर निर्भर है। x x x हमने हिंदी साहित्य में समझौता करना नहीं सीखा। जो प्रांतीयता और सांप्रदायिकता को लेकर आगे बढ़ता है, वह राष्ट्रीयता का द्रोही है, उसे एक राष्ट्रप्रेमी समझौता कैसे कर सकता है? x x x हमारे साहित्य का उद्भव ही एक विदेशी साम्राज्यवाद के प्रतिरोध से हुआ था और सदियों तक देश की भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए हमारे साहित्यिकों ने इस विदेशी साम्राज्यवाद से मोर्चा लिया है और यह मोर्चा नए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी जारी है।' साम्राज्यवाद विरोध रामविलास शर्मा का मुख्य एजेंडा है। 1857 इसी कारण उनके यहां सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 1857 में एक चीज बहुत साफ दिखाई देती है—'भारत के दूर-दूर के प्रदेशों में अंग्रेजों के प्रति उत्कट घृणा...क्या आज राजनीतिक समझदारी से प्रेरित इसी तरह की साम्राज्यवाद के प्रति घृणा भारत में दिखाई देती है? साम्राज्यवाद? कौन-सा साम्राज्यवाद? ब्रिटिश साम्राज्यवाद? वह है कहाँ? अमरीकी साम्राज्यवाद? नहीं, भारत और अमरीका संसार के दो महान जनतंत्र हैं' (*सन् सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद* के दूसरे संस्करण की भूमिका) 1857 के बाद 1946 के नाविक-विद्रोह को वे कभी नहीं भूलते। रामविलास जी का इतिहास लेखन और इतिहास विवेचन इतिहास निर्माण से जुड़ा है। वे साम्राज्यवाद विरोध को सामंतवाद विरोध से अलग कर नहीं देखते। एक नैरंतर्य और ऐतिहासिक क्रम से उन्होंने जनजागरण को जोड़कर देखा है। बोलचाल की भाषा में साहित्य-रचना को वे आधुनिक जातियों के गठन से जोड़कर देखते हैं और इसे 'सामंत विरोधी जागरण' कहते हैं। पलासी की लड़ाई (1757) से 1857 की लड़ाई तक को वे 'जनजागरण का दूसरा दौर' कहते हैं, जो पहले दौर से भिन्न है। यह लड़ाई विदेशी शत्रु से है इसलिए यह 'साम्राज्य विरोधी जागरण' है। भारतेंदु युग को उन्होंने साम्राज्य विरोधी जागरण से जोड़ा। भारतेंदु और उनके युग के लेखकों को 1857 से जोड़ने वाली दो चीजों का उन्होंने उल्लेख किया है—राष्ट्रीय स्वाधीनता का उद्देश्य और अंग्रेजी राज के स्वरूप की पहचान। अंग्रेज साम्राज्यवादियों को उन्होंने हिंदुस्तान का सबसे बड़ा शत्रु माना। स्वाभाविक है कि वे इतिहासकार जो अंग्रेजों की प्रगतिशील भूमिका को स्वीकारते हैं, रामविलास से असहमत हों। अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका उन्होंने कभी नहीं स्वीकारी। *भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद* के दो खंड (1982) और मार्क्स और पिछड़े हुए समाज (1986) में प्रमुख रूप से और अन्यत्र अनेक बार उन्होंने इस बात पर बार-बार बल दिया है कि अंग्रेजों की भारत में विध्वंसकारी भूमिका थी। एडम स्मिथ, एडमंड बर्क और विलियम डिग्बी की पुस्तकों से कई उदाहरण देकर उन्होंने यह साबित किया है कि अंग्रेजों ने भारत को तबाह किया, बर्बाद किया। साम्राज्यवाद के विनाश को विश्व मानवता की प्रगति के लिए आवश्यक कहा है और विश्व मानवता की वंशहरी के लिए रामविलास जी का इतिहास

लेखन है। 1853 में मार्क्स ने अंग्रेजों द्वारा भारतीय ग्राम समाजों के विध्वंस की बात कहते हुए इंग्लैंड को 'स्वार्थों' से प्रेरित कहा था। मार्क्स ने ग्राम समाज के विध्वंस को 'सामाजिक क्रांति' के रूप में देखा था। रामविलास जी का प्रश्न है—'विश्व मानवता की प्रगति के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश अधिक आवश्यक था या भारत के ग्राम-समाजों का?' (वही)

रामविलास शर्मा की विशेषता यह है कि उन्होंने 'पैराडाइम' बदल दिया। उन्होंने अपने लेखन से अंग्रेजी राज के प्रशंसकों को करारा जवाब दिया और हिंदी आलोचना को—मार्क्सवादी आलोचना को भी एक नई दिशा-दृष्टि दी। अंग्रेजों ने भारत में रेल, सड़क, डाक, तार आदि का निर्माण अपने लाभार्थ किया। उन्होंने भारत की 'अभ्युदयशील पूंजी' को धक्का पहुंचाया। भारत की औद्योगिक-व्यापारिक प्रगति रोक दी और भारतीय शिक्षा संस्थाओं का नाश किया। धार्मिक रूढ़ियों का प्रचार किया, चुंगी के कारण निर्यात-व्यापार बंद कराया। रामविलास शर्मा के लिए 'इतिहास' ही नहीं 'समकालीन परिदृश्य' भी महत्वपूर्ण है। *इतिहास और समकालीन परिदृश्य* शीर्षक से प्रकाशित चार खंडों की पुस्तकमाला—*स्वाधीनता संग्राम और बदलते परिप्रेक्ष्य* (1992), *भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद* (1992), *पश्चिम एशिया और ऋग्वेद* (1994) और *भारतीय नवजागरण और यूरोप* (1996) की अपनी रॉयल्टी उन्होंने छात्रों, नौजवानों और इस पुस्तकमाला के पाठकों के लिए छोड़ दी। उनके लिए आज का भारत और आज का विश्व प्रमुख था। साम्राज्यवाद विरोध को उन्होंने जातीय चेतना से जोड़ा। 'हिंदी जाति' की उनकी संकल्पना में यह साम्राज्यवाद विरोध मौजूद है। साम्राज्यवाद से संप्रदायवाद के रिश्ते की चर्चा उन्होंने बार-बार की है। वे जातिवाद को सामंतवादी व्यवस्था की देन कहते हैं और यह बताते हैं कि साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के सामंती अवशेषों पर अधिक भरोसा करता है। संप्रदायवाद उनके अनुसार सामंती तत्वों की विचारधारा है। 'संप्रदायवाद का सारतत्त्व यह है कि हमारा दुश्मन अंग्रेज नहीं है, अमरीका नहीं है, साम्राज्यवाद नहीं, हमारा दुश्मन हमारे घर का दूसरा संप्रदाय है। संप्रदायवाद को मुख्य शत्रु मानने से साम्राज्यवाद को फायदा पहुंचता है।' वे 'संप्रदायवाद' को 'साम्राज्यवाद की शक्ति' कहते हैं। (*आज के सवाल और मार्क्सवाद*)।

'साम्राज्यवाद' को 'पूंजीवाद की चरम अवस्था' कहा गया है। औद्योगिक पूंजी नहीं, महाजनी पूंजी साम्राज्यवाद में प्रमुख होती है। पूंजी की तीन अवस्थाओं—व्यापारी, औद्योगिक और महाजनी पर रामविलास जी ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। महाजनी पूंजी का जन्म 1870 से माना जाता है। 1857 में जब महाजनी पूंजी नहीं थी, तब हम उसे साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन किस तर्क से कहेंगे? रामविलास जी स्थापित मान्यताओं को—मार्क्सवाद की ही वह क्यों न हो आंख मूंदकर नहीं स्वीकारते। वे प्रश्नों की एक शृंखला प्रस्तुत करते हैं और सबको बहस के लिए आमंत्रित करते हैं। हिंदी आलोचना में उनके प्रमुख और महती योगदान से हम सभी परिचित हैं, पर साहित्येत्तर प्रश्नों पर उनके विचारों को अधिक लक्षित नहीं किया गया है। उन्होंने यह लिखा है कि 1857 में महाजनी पूंजी नहीं थी पर इस मंज़िल में ब्रिटिश पूंजीवाद को भारत किसे मिला? वह उसे औद्योगिक पूंजीवाद से प्राप्त हुआ, जो उसे व्यापारिक पूंजीवाद से प्राप्त हुआ था। व्यापारिक पूंजीवाद को रामविलास शर्मा ने जितनी प्रमुखता दी है, उतनी प्रमुखता शायद ही किसी अर्थशास्त्री ने दी हो। 'उत्पादन' को ही नहीं, 'विनिमय' को भी महत्व देने के कारण वे व्यापारिक पूंजी को प्रमुख स्थान देते हैं, व्यापारिक पूंजीवाद की उनकी अवधारणा विनिमय से जुड़ी हुई है। 'जाति' का निर्माण उन्होंने व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में देखा है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि भारत में हिंदी जाति ही नहीं बांग्ला, तमिल

आदि जातियों का गठन अंग्रेजों के आगमन के पूर्व हुआ है। बारहवीं-तेरहवीं सदी से हिंदी को जातीय भाषा मानने के कारण वे इस समय से आधुनिककाल का आरंभ मानते हैं जो हिंदी साहित्य-इतिहास-लेखन के लिए एक नई दृष्टि देता है।

भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ (1986) में और अन्य कई पुस्तकों में रामविलास जी ने मानव समाज के गठन के बदलते रूपों पर विचार किया है। मानव समाज के बिना भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है और भाषा के बिना साहित्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अब तक केवल हिंदी और भारतीय आलोचकों ने ही नहीं, विश्व के भी अधिकांश आलोचकों (मार्क्सवादी भी) ने मानव समाज के गठन के साथ भाषा और साहित्य को जोड़कर देखने का गंभीर और व्यापक प्रयत्न नहीं किया था। इस प्रयत्न के कारण रामविलास जी का स्थान विश्व-भर में अप्रतिम हो जाता है। 'किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास लिखना हो, इस बात पर विचार करना आवश्यक होगा कि उस भाषा के व्यवहार करने वाले मानव समाज के गठन का रूप कौन-सा है?' (**भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ** की भूमिका) आदिम साम्यवादी व्यवस्था से लेकर पूँजीवाद तक सामाजिक गठन के विविध रूपों पर उन्होंने विचार किया है। भारत बहुजातीय राष्ट्र है। यहां यह जानना जरूरी है कि जातियों का गठन कब-कैसे हुआ। रामविलास जी उन ऐतिहासिक कारणों की तलाश करते हैं जिससे 'एक जातीय, द्विजातीय, बहुजातीय राष्ट्रों का निर्माण होता है।' यह विवेचन मार्क्सवादी साहित्य में नहीं था। इस विवेचन से उन्होंने मार्क्सवादी साहित्य को समृद्ध किया है। **भाषा और समाज** के पहले संस्करण (1961) की भूमिका में उन्होंने लिखा है—'यदि भाषा का संबंध समाज से है, उसका विकास सामाजिक संपर्क के एक साधन रूप में होता है तो यह स्पष्ट है कि समाज का अध्ययन किए बिना सामाजिक संपर्क स्थापित करने के साधन का अध्ययन भी नहीं हो सकता।' रामविलास जी ने हिंदी ही नहीं, भारतीय समाज और साहित्य का गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। वे **संस्कृति और साहित्य** (1948), **प्रगति और परंपरा** (1948) और **भाषा, साहित्य और संस्कृति** (1954) को सदैव जोड़कर देखते रहे। उनका अध्ययन-विवेचन बहुआयामी है। उनकी आलोचना पर एकांगी और खंडित दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता। उनके समक्ष भारतीय भाषा, भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति थी। उन्होंने केवल आर्य भाषाओं पर विचार न कर द्रविड़ भाषा परिवारों से उसके संबंध की ओर ध्यान दिलाया। उनके समक्ष पूरा भारत था। पुस्तकों के शीर्षकों में भी इसे देखा जा सकता है। **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी** के तीन खंड (1979, 1980, 1983), **आर्य और द्रविड़ भाषा-परिवारों का संबंध** (1979), **भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद** के दो खंड (1982), **भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ** (1986), **भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद** (1992), **भारतीय साहित्य की भूमिका** (1996), **भारतीय नवजागरण और यूरोप** (1996), **भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश** के दो खंड (1999), **भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास** (2001) और **संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएँ** (2010)। किस भारतीय आलोचक, लेखक और विचारक के यहां यह विस्तृत भारतीय फलक है? इतना ही नहीं, रामविलास जी के यहां एशियाई चिंता भी है, जिसे हम **मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज** (1986) और **पश्चिम एशिया और ऋग्वेद** (1994) में देख सकते हैं।

अमरीकी समाज विज्ञान के प्रवर्तक बोआस ने सर्वप्रथम 'एक ही आदि भाषा से किसी परिवार की अनेक भाषाओं के उत्पन्न होने के सिद्धांत का खंडन किया था', पर भारत में ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के संबंध में ग्रियर्सन,

सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, धीरेंद्र वर्मा, भोलानाथ तिवारी, उदयनारायण तिवारी आदि भाषा वैज्ञानिकों ने जो बातें कहीं, उस सबका 'क्रांतिकारी विरोध' रामविलास जी ने किशोरी दास वाजपेयी के यहां देखा और बाद में **भाषा और समाज** में उन्होंने ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की मान्यताओं को निरस्त किया। उन्होंने इंडोयूरोपियन भाषा के लिए एक आदिभाषा के मत-सिद्धांत को निरस्त करते हुए 'अनेक स्रोत भाषाओं का सिद्धांत' सामने रखा। उन्होंने हिंदी भाषा को 'राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का माध्यम' कहा है। रामविलास शर्मा के महत्व को समझने के लिए समग्रता में उनका अध्ययन आवश्यक है। **भाषा और समाज** पुस्तक के पहले भाषा को समाज से जोड़कर न के बराबर अध्ययन किया गया था। 'सामाजिक विकास के संदर्भ में भी भाषा का अध्ययन किया जा सकता है, यह बात सुनते ही वे (वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान के विदेशी आचार्य और उनके भारतीय शिष्य) ऐसे चौंक उठते हैं, जैसे विप्रवर के चौके में शूद्र घुस आया हो।' (**भाषा और समाज** की भूमिका) ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का यह निष्कर्ष था कि 'सभी भारतीय भाषा परिवारों के स्रोत भारत से बाहर के हैं और भारत को अपनी कोई प्राचीन भाषा-संपदा नहीं है' (**भाषा और समाज** की भूमिका)। रामविलास जी ने इस निष्कर्ष को अस्वीकार किया। उनका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ऐतिहासिक भौतिकवाद से जुड़ा है। उन्होंने विवरणात्मक भाषा-विज्ञान और परिणामी कारण पद्धति की आलोचना की। 'भाषा की निसर्ग सिद्ध द्वंद्वात्मक प्रकृति' को सदैव ध्यान में रखा। किशोरीदास वाजपेयी ने **हिंदी शब्दानुशासन** में 'संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश' वाली मंजिल को अस्वीकार किया था, जिसे आज भी विश्वविद्यालयों के अनेक हिंदी प्रोफेसर गले लगाए बैठे हैं। रामविलास जी को किशोरीदास वाजपेयी के **हिंदी शब्दानुशासन** और **भारतीय भाषा विज्ञान** से प्रेरणा मिली। उन्होंने वाजपेयी जी के विचार का विकास और विस्तार किया। उन्होंने 'गण समाजों के सुदीर्घ भाषाई विकास' पर बल दिया। रामविलास जी ने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश वाले भारतीय भाषाओं के विकास-मानचित्र के स्थान पर एक दूसरा मानचित्र प्रस्तुत किया। 'यदि प्राकृत अपभ्रंश के जाल से निकलकर जनपदीय भाषाओं की वास्तविकता पहचानी जाए, तो आधुनिक भाषाओं के विकास का दूसरा मानचित्र आंखों के सामने आए। तब भारतीय भाषाओं में रचे हुए साहित्य का इतिहास लिखने में अधिक सुविधा हो' (**भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ**)। रामविलास जी के लिए सदैव वर्तमान महत्वपूर्ण था—'भारत के वर्तमान सामाजिक संदर्भ में भाषा वैज्ञानिक कार्य एक राजनीतिक कर्तव्य की पूर्ति भी है।' उनके यहां केंद्र में हिंदी प्रदेश है उन्हें भाषा वैज्ञानिक न मानने वालों की संख्या आज भी अधिक है। उनकी विशेषता यह है कि वे प्रचलित और मान्य विचारों पर प्रश्न खड़े करते हैं और नए विचार-सिद्धांत, जो क्रांतिकारी हैं प्रस्तुत करते हैं। यथास्थितिवादी शक्तियां इसे नहीं स्वीकारतीं।

'हिंदी नवजागरण' की अवधारणा उन्होंने सर्वप्रथम **महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण** (1977) पुस्तक में रखी। इसने अब तक सबसे अधिक बहसें खड़ी की हैं। अब तक बंगाल नवजागरण की ही बात की जा रही थी। भारतीय नवजागरण में कहीं भी हिंदी नवजागरण नहीं था। नवजागरण के संबंध में रामविलास जी की एक दृष्टि है। 'समाज जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में पहुंचता है, उस संक्रमण को हम नवजागरण की संज्ञा दे सकते हैं।' (**भारतीय नवजागरण और यूरोप**) क्या भारतीय समाज सदैव एक ही अवस्था में रहा है? उसके विकास की कुछ मंजिलें रही हैं या नहीं? गण व्यवस्था, जन व्यवस्था, लघु जाति, महाजाति कई मंजिलें हैं समाज सदैव आगे नहीं बढ़ता, वह पीछे भी हटता है। रामविलास जी इसलिए 'यह बिल्कुल संभव' मानते थे कि—'किसी समाज में एक ही कोटि के नवजागरण की

आवृत्ति हो' (भारतीय नवजागरण और यूरोप) उन्होंने भारत में चार नवजागरणों की चर्चा की है। ऋग्वेद से पहले का नवजागरण, उपनिषदों से दूसरा नवजागरण, भक्ति आंदोलन से तीसरा नवजागरण और उन्नीसवीं सदी से संबंधित चौथा नवजागरण। भक्ति आंदोलन को 'लोक जागरण' कहा है। 19वीं सदी या आधुनिक नवजागरण के वे चार चरण मानते हैं-1857 का स्वाधीनता संग्राम, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और निराला का लेखन या छायावाद युग भारतीय नवजागरण अधूरा है।

रामविलास शर्मा के अनुसार ऋग्वैदिक समाज आदिम साम्यवाद के बाद का समाज है जिसमें अवकाश भोगी वर्ग नहीं है और न स्त्री-पुरुष की दासी है। यहां श्रम का सम्मान है और व्यक्तिगत संपत्ति का महत्व है। ऋग्वेद में भोग करने के लिए नहीं, कर्म करने के लिए सौ वर्ष जीने की कामना है। आज भोग और उपभोग पर अधिक ध्यान है। उत्पादक वर्ग गौण हैं और उपभोक्ता वर्ग महत्वपूर्ण। ऋग्वेद में श्रम का महत्व है और आज श्रम-श्रमिक की कद्र नहीं है। "संसार और जीवन में आस्था रखने वाले इन मूल्यों का महत्व भारत के लोग तब पहचानेंगे जब एक बार फिर वे अपने श्रम फल के स्वामी होंगे और अपनी समाज व्यवस्था का पुनर्गठन करेंगे। (भारतीय नवजागरण और यूरोप) ऋग्वेद के मंत्रों को कर्मकांड के जाल में बांधने का कार्य ब्राह्मण काल में हुआ। इसी काल में पुरोहित वर्ग प्रमुख हुआ। रामविलास जी ने कभी ब्राह्मण काल और पुरोहित वर्ग की प्रशंसा नहीं की। ऋग्वैदिक काल पर उनका विचार करना बहुत महापुरुषों-शिखरपुरुषों को नागवार लगा था। रामविलास जी ने साफ शब्दों में कहा है- 'ऋग्वेद का अध्ययन वैज्ञानिक प्रगति में बाधक नहीं, सहायक है।' (भारतीय नवजागरण और यूरोप) ऋग्वेद को पुरोहितों ने धर्मशास्त्र बनाया। रामविलास जी ने ऋग्वेद का अध्ययन 'मार्क्सवाद के दार्शनिक स्रोतों के अध्ययन' की दृष्टि से किया। रामविलास जी ने ऋग्वेद को दार्शनिक काव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। वे दर्शन, इतिहास और संस्कृति से चिंता-मुक्त मार्क्सवादी नहीं थे। जो लोग उनके ऋग्वेद और परंपरा प्रेम पर प्रश्न करते हैं, वे मार्क्स के शोध प्रबंध 'देमोक्रीतस और एपिक्यूरस के प्रकृति-दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन' पर ध्यान नहीं देते। भौतिकवादी मार्क्स हों या अध्यात्मिक रोमांशवादी, दोनों 'यूरोप के सांस्कृतिक विकास में भारत के महत्व' को स्वीकारते हैं। रामविलास जी के अनुसार ऋग्वेद का चिंतन द्वंद्ववादी है और 'वे भारतीय दर्शन के आदि संस्थापक हैं' रामविलास जी के लिए केवल 'वैज्ञानिक आविष्कार' महत्वपूर्ण नहीं है। 'वैज्ञानिक पद्धति' का भी महत्व है। अपने समर्थन में उन्होंने आइंस्टाइन और डेस्मोंड बरनाल को उद्धृत किया है। उनके अनुसार पंचतत्व दर्शन के तत्व बनने से पहले काव्य के विषय थे-भारतीय दर्शन की अनेक धाराएं-उपधाराएं ऋग्वेद से निकली हैं और भारतीय-चिंतन-परंपरा को भलीभांति समझने के लिए उन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन किया। ऋग्वेद को वे नए सिरे से व्याख्यायित करते हैं। जिस प्रकार मार्क्स ने प्राचीन दर्शन से प्रेरणा ली, लगभग उसी प्रकार रामविलास शर्मा भारतीय दर्शन से प्रेरणा लेते हैं। वे न तो दार्शनिक हैं, न इतिहासकार, न अर्थशास्त्री, न समाजशास्त्री, पर ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं पर उनके अपने विचार हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ऋग्वेद और उपनिषद काल के बीच ब्राह्मण काल पर, जिसमें पुरोहित वर्ग प्रमुख हुआ, रामविलास जी ने विचार नहीं किया है। विश्व दर्शन के इतिहास में उपनिषद काल को रामविलास जी क्रांतिकारी युग कहते हैं। भारत में जब भी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए आंदोलन हुए हैं उनके सूत्रधारों ने उपनिषदों के चिंतन को आधार बनाया है। (भारतीय नवजागरण और यूरोप) उपनिषदों के दार्शनिक यथार्थवाद से वह प्रभावित थे और

उपनिषदों के दार्शनिक यथार्थवाद का विरोध वे कर्मकांड से मानते हैं। 'उपनिषदों में जो दर्शन बीज रूप में है उन्हीं से आगे लोकायत, सांख्य, योग, वैशेषिक आदि का विकास हुआ और इन्हीं की आधारभूत दृष्टि अपनाकर चरक ने शरीर विज्ञान, कौटिल्य ने समाज विज्ञान और पाणिनी ने भाषा विज्ञान के ग्रंथ रचे। (भारतीय नवजागरण और यूरोप) भक्तिकाल को उन्होंने लोक जागरण का काल कहा और भक्तिकालीन कवियों में तुलसीदास को शीर्ष पर रखा। आधुनिक भाषाओं में भक्तिकाव्य का विकास सबसे पहले दक्षिण में हुआ था-तमिल में। तमिलनाडु और कर्नाटक में भक्ति-आंदोलन की समान स्थिति नहीं थी। हिंदी भक्ति-काव्य का विवेचन करने वालों को तमिलनाडु के आलवार संतों की वाणियों का संग्रह *दिव्य प्रबंध* देखने की उन्होंने सलाह दी है। कन्नड़ कवि बसवेश्वर और तेलुगु कवि वेमना द्वारा धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के खंडन की चर्चा करते हुए उन्होंने कबीर को याद किया है। भक्ति-आंदोलन में स्त्रियों के योगदान को वे नहीं भूलते। 'तमिलनाडु की आण्डाल, कर्नाटक की अक्कमादेवी हिंदी प्रदेश की मीराबाई और कश्मीर की लालदेव (लल्लेश्वरी)-इन चार कवियों पर उन्होंने एक साथ विचार किया। उनकी आलोचना केवल हिंदी साहित्य तक सीमित नहीं है। भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कृति पर अब तक ऐसा एक साथ विचार किसी भी आलोचक ने नहीं किया है। उनकी चिंता में पूरा भारत है। उनके लिए परंपरा का सदैव महत्व रहा है। परंपरा का मूल्यांकन (1981) आवश्यक है, न कि परंपरा का पूर्ण और अंध स्वीकार। हिंदी में ऐसे मार्क्सवादी आलोचक भी हैं जिनके लिए परंपरा का कोई महत्व नहीं है। रामविलास जी ने परंपरा को खारिज कर आधुनिकता को कभी महत्व नहीं दिया। 'जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फकीर नहीं हैं, जो रूढ़ियों तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है।' (परंपरा का मूल्यांकन) अध्यात्मवादी विचारकों और यात्रिक भौतिकवादियों ने परंपरा को जड़ इकाई माना, जबकि रामविलास जी ने उसमें क्या मूल्यवान है और क्या हासमान, इसे समझने और विवेक से काम लेकर उससे संबंध स्थापित करने की बात कही। प्रगति और परंपरा (1948) उनकी आरंभिक पुस्तक है। 'हिंदी समालोचना का दायित्व' (1948) निबंध में उन्होंने आरंभ में ही आलोचक का उत्तरदायित्व 'अपने साहित्य और संस्कृति की उदार और जनहितैषी परंपराओं की रक्षा' का विकास माना था। उनके लेखों में 'परंपरा की रक्षा और उसके विकास पर काफी जोर है।' वाल्मीकि, भवभूति, तुलसीदास, संतसाहित्य, रीतिकालीन काव्य परंपरा का उन्होंने नए सिरे से मूल्यांकन किया है।

1857 से रामविलास जी हिंदी नवजागरण का आरंभ मानते हैं- 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।' यह पहली पंक्ति है महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (1977) की भूमिका की। हिंदी नवजागरण की अवधारणा मौलिक और क्रांतिकारी है। निराला की साहित्य साधना के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी वाली पुस्तक प्रकाशित हुई थी। हिंदी नवजागरण को वे बंगाल के नवजागरण से भिन्न मानते हैं। भारतीय नवजागरण का संबंध इसके पहले राजा राममोहन राय से जुड़ा था। भारतीय साहित्य की भूमिका (1996) के आठवें अध्याय में 'राजा राममोहन राय और बंगाल का नवजागरण' पर विचार है। हिंदी नवजागरण की सबसे बड़ी विशेषता सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी वेतना है। यह नवजागरण रूढ़िवाद का विरोधी, उद्योग-धंधों का पक्षपाती, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थक तथा रहस्यवाद विरोधी है। बंगाल को उन्होंने 'नए रहस्यवाद का मूल स्रोत' और गुजरात को 'उद्योगीकरण और आधुनिक विज्ञान का विरोध करने

वाली विचारधारा का मूल स्रोत' माना है। हिंदी नवजागरण का महत्व पूरे भारत के लिए महत्वपूर्ण है। यूरोपीय नवजागरण से प्रभावित 'विद्वान' भारतीय नवजागरण और हिंदी नवजागरण को नहीं समझ पाते। जातीय चेतना, जातीय भाषा और जातीय जागरण के बिना नवजागरण संभव नहीं है। रामविलास जी ने हिंदी नवजागरण को सामंतवाद और साम्राज्यवाद विरोध से जोड़कर देखा। *भारतीय साहित्य की भूमिका* में वे तमिलनाडु में नवजागरण पर विचार करते हैं और सुब्रह्मण्यम भारती के साहित्य में जातीय चेतना पर प्रकाश डालते हैं। वे यूरोप के पुनर्जागरण काल से तमिलनाडु के नवजागरण की तुलना करते हैं और भारत में नवजागरण की समस्याओं को साहित्य तक सीमित नहीं देखते। 'उनकी परिधि में दर्शन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा स्थापत्य शिल्प चित्र, नृत्य, संगीत आदि ललित कलाएं भी आती हैं' (*भारतीय साहित्य की भूमिका*) रामविलास जी ने इन सभी कलाओं पर विचार किया है। वे 'ध्रुवपद' को 'नवजागरण का मुख्य गीत प्रकार' कहते हैं, जिसका चलन खुसरो से लेकर तानसेन के बाद तक रहा। भारतीय संगीत के लिए ब्रिटिश शासनकाल को उन्होंने 'अंधकार युग' कहा है। "भातखंडे उन थोड़े से लोगों में हैं जिन्होंने इस अंधकार युग में संगीत की दीपशिखा को जलाए रखने का प्रयत्न किया।" (*भारतीय साहित्य की भूमिका*) संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएं (2010) पुस्तक का प्रकाशन उनके निधन के वर्षों बाद हुआ।

रामविलास शर्मा का हिंदी आलोचना में शुभागमन निराला पर लिखे गए लेख के विरोध में हुआ। 23 जुलाई 1934 के अभ्युदय में ज्योति प्रसाद निर्मल ने निराला पर लिखे अपने लेख में निराला पर आक्रमण किया था। रामविलास जी ने उसी के उत्तर में 'निराला जी की कविता' शीर्षक लेख लिखा- 'निराला जी की कविता नए युग की आंखों से यौवन को देखती है। नायक-नायिकाओं की इस रीति के बहुत से वर्णन हुए, पर यहां एक नवीन सौंदर्य है।' इसके बाद रामविलास जी की कलम कभी नहीं रुकी। पहली प्रकाशित आलोचना-पुस्तक प्रेमचंद (1941) है। प्रेमचंद पर कम आक्रमण नहीं हुए थे। उन्हें 'धृष्टा का प्रचारक' और 'ब्राह्मणों का विरोधी' कहा गया था। पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा- "प्रेमचंद के युग को देखते हुए हम कह सकते हैं कि क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रांतिकारी था।" उन्होंने प्रेमचंद की तुलना शरतचंद्र से किए जाने पर आपत्ति प्रकट की। दो वर्ष बाद *भारतेंदु युग* (1943) पुस्तक प्रकाशित हुई। इस समय कई ऐसे प्रगतिशील लेखक थे। जिनके लिए पहले का साहित्य गौण था "किताब लिखने से पहले ही इस पर बहस शुरू हो गई थी कि यह हमारे काम की चीज है या नहीं" (*मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य*) प्रेमचंद के बाद डा. शर्मा भारतेंदु युग की ओर क्यों मुड़े? "यह स्वाभाविक है कि किसी बीते युग के बारे में लिखते हुए हमारा ध्यान अपने युग और उसकी समस्याओं की ओर भी जाए। यदि मुझे भारतेंदु युग से आज के युग का एक घनिष्ठ संबंध न दिखाई देता तो मैं यह पुस्तक अभी न लिखता।" (भूमिका) अपनी आलोचना में उन्होंने आलोच्य कवि-लेखक और उनके युग को अपने युग से जोड़कर देखा, जो कृति, कृतिकार और उनके युग का एकांत विवेचन नहीं था। अब यह स्थिति है कि भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, निराला और रामचंद्र शुक्ल पर कोई भी विचार उनके बगैर संभव नहीं है। उनका काम मील का पत्थर है। उनकी अधिकांश आलोचना-पुस्तकों का संबंध हिंदी साहित्य और प्रगतिशील साहित्य के अंतर्विरोधों से है। अपनी आलोचना के द्वारा उन्होंने साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ सामाजिक प्रवृत्तियों से भी लड़ाई लड़ी उनके विरोध और आक्रमण के ठोस कारण हैं। प्रतिगामी विचारधारा के

समर्थकों-पोषकों, रीतिवादियों-रूढ़िवादियों-कलावादियों को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। आलोचना और विचारधारा के क्षेत्र में उन्होंने अकेले जो लड़ाई लड़ी, उसका किसी भी भाषा में दूसरा कोई उदाहरण नहीं है। प्रगतिशीलों और मार्क्सवादी लेखकों-आलोचकों से उन्होंने अधिक लड़ाई लड़ी हिंदी जाति के शीर्ष लेखकों, हिंदी जाति, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के प्रगतिशील पक्ष पर जिस किसी ने आक्रमण किया, उसका उन्होंने मुंहतोड़ उत्तर दिया।

हिंदी आलोचना को रामविलास जी ने रसवाद, रीतिवाद, रूढ़िवाद, पाश्चात्योन्मुखता, विचारहीनता व्यक्तिवादिता और भावोच्छ्वास से मुक्त कर वैज्ञानिक तथा जातीय दृष्टि प्रदान की। निराला और डा. शर्मा अभिन्न हैं। एक के बिना दूसरे का स्मरण नहीं किया जा सकता। *निराला की साहित्य साधना* खंड। निराला की जीवनी है, जो हिंदी के जीवनी-साहित्य में अप्रतिम है। *निराला की साहित्य साधना* खंड दो में उन्होंने निराला की कविताओं पर जैसा विचार किया है, वह आज भी अकेला उदाहरण है। निराला पर पुस्तक लिखने से पहले उन्होंने 1943 में 'कवि' शीर्षक से कविता लिखी- *वह सहज विलम्बित मंथर गति जिसको निहार गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार निराला पर उनकी एक अन्य कविता अर्चना* (1952) है- *यह कवि अपराजेय निराला जिसको मिला गरल का प्याला दहा और तन टूट चुका है पर जिसका माथा न झुका है*। इस कविता में उन्होंने लिखा- *यह कवि है अपनी जनता का*। रामविलास जी जनता के अपने आलोचक हैं- उनकी आलोचना से हिंदी आलोचना ही नहीं, भारतीय आलोचना भी समृद्ध हुई है। वे महान भारतीय आलोचक-विचारक हैं। पहली बार उन्होंने ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के *सम्पत्ति शास्त्र* और रामचंद्र शुक्ल द्वारा हैकल की पुस्तक *रिडल ऑफ दि यूनिवर्स* के अनुवाद *विश्व प्रपंच* तथा 155 पृष्ठों की लंबी भूमिका और उसके महत्व से सबको परिचित कराया। शुक्ल जी पर आक्रमण करने वालों को उन्होंने नहीं बख्शा *आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना* (1955) की भूमिका की आरंभिक पंक्तियां हैं- हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है, जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को। उन्होंने बाह्य जगत और मानव-जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।

छायावादी कविता के बाद डा. शर्मा ने प्रगतिशील कवियों-कंदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन और मुक्तिबोध पर लिखा है *थ्रनई कविता और अस्तित्ववाद* (1978) के बाद उन्होंने आलोचना की कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे स्वयं कवि हैं। *तारसप्तक* में उनकी कविताएं हैं और *रूप तरंग* (1956) 'सदियों के सोए जाग उठे' (1988) उनके कविता-संग्रह हैं *वार दिन* (1936) उनका उपन्यास है और *महाराजा कठपुतली सिंह* (1946) तथा *पाप के पुजारी* (1994) उनके नाटक हैं। उन्होंने कई पुस्तकों के अनुवाद किए। *भक्ति और वेदांत* (1933), *कर्मयोग* (1936), *राजयोग* (1936), *विवेकानंद के लेखों के अनुवाद* हैं। *सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास* (1944), *माओ त्से तुंग ग्रंथावली के प्रथम भाग* (1957), *पूँजी के दूसरे खंड का अनुवाद* (1974) और *रजनी पामदत्त की पुस्तक इंडिया टुडे का आज का भारत* शीर्षक से (1977) अनुवाद किया। *मित्र संवाद* (1992)

नवजागरण की अवधारणा

देवशंकर नवीन

अगस्त 1976 में अपनी पुस्तक *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* पूरी करते हुए, भारतीय मनीषा के एकांत साधक रामविलास शर्मा ने नवजागरण की अवधारणा पर बड़ी विलक्षणता से विचार किया है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।' यद्यपि बाद के दिनों में लिखी अपनी कृतियों में उन्होंने भारतीय नवजागरण के सूत्र ऋग्वेद, उपनिषद, सांख्य, दर्शन, न्याय-वैशेषिक आदि में भी टटोलने की कोशिश की। भारत और यूरोप के नवजागरण पर विचार करते हुए उन्होंने भारतीय दर्शन की उत्कृष्टता, प्राचीनता और सुसंगति को रेखांकित किया। पर सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम से शुरू हुए हिंदी प्रदेश के नवजागरण की छह विशेषताओं की विषय व्याख्या उन्होंने दी है। उनकी राय में इस संग्राम की विशेषताएँ हैं—

1. पूरे देश की एकता और एकसूत्रता की चिंता
2. सामंत हित की चिंता के बजाए जनहित में राज्यसत्ता की मूल समस्या का निराकरण
3. अंग्रेजों द्वारा जमींदारों-साहूकारों के प्रभुत्व को बढ़ावा देने की धारणा के प्रतिपक्ष में सामंत विरोधी धारणा को पुष्ट करने का ध्येय
4. फौज में सिपाहियों, सूबेदारों के रूप में कार्यरत सर्वधर्म, सकलवर्ण किसानों की अगुआई में संग्राम
5. सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त, कर्मनिष्ठ सैन्य-दल का गठन
6. हिंदी पट्टी में इस संग्राम की क्रियाशीलता।

नामवर सिंह की राय है कि उन्नीसवीं सदी के आरंभ से भारत के नवशिक्षित बौद्धिकों में एक नई चेतना का उदय हुआ, जिसके अग्रदूत राजा राममोहन राय माने जाते हैं। इस चेतना को यूरोप के 'रिनेसा' के वज़न पर अपने देश में कहीं 'पुनर्जागरण' कहीं 'नवजागरण' कहा जाता है। चेतना की यह लहर देर-सवेर कमोबेश भारत के सभी प्रदेशों में फैली। किंतु अधिक चर्चा 'बंगाल नवजागरण' और 'महाराष्ट्र प्रबोधन' की ही होती है।...प्रो. सिंह ने भारतेन्दु के 'स्वत्व निज भारत गहै' में 'स्वत्व' का अर्थ 'जातीय अस्मिता', 'जातीय पहचान', 'आइडेंटिटी' लगाया; उस 'पहचान' की पहली शर्त थी अपनी भाषा अर्थात् भारतेन्दु के शब्दों में कहें तो 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।' उन्होंने कहा कि सन् 1857 के गदर का केंद्र हिंदी प्रदेश ही था, इसलिए हिंदी नवजागरण की प्रकृति पर गदर की स्मृति की छाया पड़ना स्वाभाविक ही था।...

हिंदी नवजागरण मुख्यतया 'सांस्कृतिक' था और अधिकांश लेखन स्वदेशी संस्कृति के उत्थान को दृष्टि में रखकर किया गया।...

कोशीय अर्थ में 'नवजागरण' और 'पुनर्जागरण' को समानार्थी माना गया है। इसे लोग 'रिनेसा' के अनुवाद के रूप में देखते हैं। इसका अंतराल यूरोपीय इतिहास का दो सौ वर्षों (सन् 1350-1550) का वह दौर माना जाता है, जब कला और साहित्य के नए अनुसंधान और विकास से वहां के नागरिक परिदृश्य में नई चेतना उत्पन्न हुई, आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ। वह ऐसा दौर था, जिसमें नए-नए अनुसंधान और अन्वेषण हुए; धर्म और दर्शन को नए तरीके से परिभाषित किया जाने लगा; विभिन्न कला-रूपों में नई चिंतनधारा का सूत्रपात हुआ; राजनीति और समाज-व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ; यूरोप के एक भाग, खासकर इटली, नीदरलैंड, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड...एक नई सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित हुआ।

नवजागरण-युग के इसी अंतराल में मध्ययुगीन धारणाओं के बंधन से मुक्त होकर यूरोप व्यक्तित्व-चेतना के विकास में लग गया। चर्च का प्रभाव घटा और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई। मध्ययुग में मनुष्य की दृष्टि सदा जिस परलोक पर टिकी रहती थी, अब वहां लोक का संचरण हुआ। ऐहिक मूल्यों का मान बढ़ा, इहलोक की प्रतिष्ठा हुई और परलोक की धारणा पराभूत हुई। धर्म की तुलना में दर्शन का महत्त्व बढ़ा। धर्मनिरपेक्ष मानववाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। ईश्वर की चिंता त्यागकर मनुष्य अपने में लौट आया, खुद को समझने की प्रवृत्ति अपनाई। सन्तों की जगह दार्शनिकों और सन्यासियों की जगह

बुद्धिजीवियों ने ले ली; फलस्वरूप मन और स्वभाव का वश में करने की धारणा के बदले उसे विकसित करने का दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा। यूरोप की इस घटना को सन्यासवाद के प्रति उपभोगवाद का विद्रोह माना जाता है। यूरोप की मध्ययुगीन कूपमण्डूकता भंग कर यूनानी-रोमीय साहित्य, कला, दर्शन के नवतामूलक इस आग्रह में वहां की सांस्कृतिक उदारता परिलक्षित हुई। पश्चिमी यूरोप में भी इन प्रवृत्तियों का यथेष्ट और वांछित प्रचार-प्रसार हुआ।

मेरी समझ से तो नवजागरण समय-सापेक्ष धारणा है, और यह होता रहा है। सामाजिक परिदृश्य में जब कभी रूढ़ हो गई मान्यताओं की निरर्थकता से मुक्त होकर लोग नई और समय-सापेक्ष चिंतन-पद्धति अपना लेंगे, उसे

विगत तीन दशकों में किसी ने भी हिंदी नवजागरण पर कुछ करना शुरू किया है, तो उसका काम रामविलास जी का संदर्भ लिए बगैर संपन्न नहीं हुआ। रामविलास जी ने हमें न केवल हिंदी नवजागरण की विकास-परंपरा की जानकारी दी है बल्कि उन्होंने नवजागरण की परंपरा पर गंभीरता से चिंतन करने वाले दृष्टि-संपन्न अनुवर्ती लोगों की एक बड़ी शृंखला भी विकसित कर दी है, और यह शृंखला निरंतर बढ़ती जा रही है।

आजकल : सितंबर 2012 □ 31



उस दौर का नवजागरण कहा जाएगा। साहित्यकोश में विद्वानों का मत है कि भारत के संदर्भ में हम गुप्तयुग को नवजागरण युग कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी राय में एक नवजागरण का श्रीगणेश प्रायः अंग्रेजी सभ्यता के संपर्क के फलस्वरूप सन् 1857 के आंदोलन के बाद अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर हुआ। इस नवजागरण काल के मुख्य प्रेरणा-स्रोत-ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, कांग्रेस-आंदोलन, थियोसॉफिकल सोसायटी जैसे आंदोलन आदि हैं। इस नवजागरण के विषय में रामविलास शर्मा ने विस्तार से बातें की हैं।

तथ्य है कि हर चिंतक की चिंतन-पद्धति उनके दृष्टिकोण द्वारा निर्देशित होती है। प्रथम स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि का विधिवत् अनुशीलन करते समय रामविलास शर्मा बड़े काम आते हैं। प्रथम स्वाधीनता संग्राम की विशिष्टताओं को सूचीबद्ध करते हुए उन्होंने जैसी व्याख्या दी, उसमें हिंदी नवजागरण की धारणा बड़ी स्पष्टता से रेखांकित है। उस परिप्रेक्ष्य में रामविलास शर्मा की चिंतन-प्रक्रिया का अनुशीलन करते हुए उनकी समाज चिंता मुखर हो उठती है। उनका जन-सरोकार, जन-मन, जन-बल तथा नागरिक-निष्ठा के प्रति उनकी आस्था एवं आश्वस्ति से एक विराट चिन्तक की छवि सामने आती है। प्रसंगवश यहां प्रो. शम्भुनाथ का उल्लेख मुनासिब होगा। वे कहते हैं कि मार्क्स ने सन् 1857 के विद्रोह को राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में देखा ही था, अंग्रेज होकर फ्लोरा एनी ने भी इसे एक महान विद्रोह के रूप में याद किया। जबकि कई भारतीय इतिहासकारों की नजर में यह विद्रोह एक गद्दारी थी, जिसके सफल होने पर भारत पिछड़ जाता।...

अंग्रेज इतिहासकार ने अपनी सीमाओं में 1857 के महान विद्रोह को 'कृषकों के शान्त एवं स्थिर जीवन में जागरण लाने की कोशिश' और 'जीवन की दो परंपराओं की टकराहट' के रूप में देखा। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय नवजागरण की एक धारा भारतीय परंपरा की साम्राज्यवादी परंपराओं के प्रभुत्व की है तो दूसरी धारा भारतीय परंपरा की साम्राज्यवादी परंपराओं से टकराहट की है। एक को हम एकांगी नवजागरण तथा दूसरे को समग्र नवजागरण कहेंगे। यह ध्यान में रखना चाहिए कि नवजागरण की दूसरी धारा अनिवार्यतः अतीतवादी या आधुनिकता विरोधी नहीं थी, सच्ची आधुनिकताओं से इसने अपनाया तथा रूढ़ अतीत को केंचुल की तरह उतार फेंका।...

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तकों—*महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*, *भारतीय नवजागरण और यूरोप* तथा *भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं* में नवजागरण के संदर्भ में इस आधुनिकता की व्याख्या भी विस्तार से की है। आगे चलकर नौजवान पीढ़ी के कई समालोचकों और इतिहास अध्येताओं ने भी सन् 1857 के इस संग्राम को संगठित प्रतिरोध का जन ऐतिहासिक संदर्भ, 'लोक-प्रतिरोध', 'जनसंघर्ष', 'लोकयुद्ध' आदि संज्ञा-शीर्षक दिया।

अंग्रेज प्रवक्ता टामस मुनरो ने कहा था कि 'भारतवासियों को सभ्य बनाने की बात का मतलब ही मैं अच्छी तरह समझ नहीं सका हूँ...खेती करने की उत्तम रीति, अतुलनीय कारीगरी, ... प्रत्येक गांव में पाठशालाओं की प्रतिष्ठा ... यदि सभ्यता के अंग हों, तो हिंदू, यूरोपियनों से किसी अंश में कम सभ्य नहीं हैं।'।

भारतीय नवजागरण, और हिंदी जनजागरण के उत्थान-प्रसंग सन 1857 के गदर पर ऐसी भ्रांत दृष्टि वाली भारतीय टिप्पणियों का सतर्क निराकरण लोग चाहें तो बड़े आराम से रामविलास शर्मा की कृतियों में ढूंढ सकते हैं। राष्ट्रीय एकता की सुचिन्तित दृष्टि के समर्थन में उन्होंने सुस्पष्ट तर्क दिया कि उस संग्राम के दिनों में चूँकि भारतीय सामंतवाद राष्ट्रीय एकता की पहचान खो चुका था, इसलिए अलग-अलग बादशाहों, नवाबों और राजाओं की सत्ता कायम करने के बदले सभी सामंतों को एक ही झंडे के नीचे संगठित करने का प्रयत्न किया गया था, जो एक सामंत-विरोधी कार्य था। यह वैसा संग्राम था जिसका नेतृत्व सिपाहियों, सूबेदारों के रूप में किसानों ने तो किया ही, साथ ही उनके नेतृत्व में गांवों के गैर-फौजी किसानों ने भी लड़ाई लड़ी। ये किसान सभी धर्म, वर्ण, और जाति के थे।

भारतीय सेना समिति बनाते समय सैन्यबल की कार्यकुशलता को ध्यान में रखा गया, उसके धर्म, वर्ण को नहीं। यद्यपि रुपए लुटाकर सांप्रदायिक दंगा करवाने के बड़े-बड़े यत्न अंग्रेजों ने किए, पर उन्हें सफलता हाथ न लगी। रामविलास जी ने स्पष्ट कहा कि—'सन 1857 का स्वाधीनता संग्राम अंग्रेजों द्वारा प्रेरित संप्रदायवाद की सबसे बड़ी पराजय था।'।

उल्लेखनीय है कि सन 1857 के संग्राम का मुख्य रणक्षेत्र हिंदीभाषी प्रदेश था। फौजी सिपाहियों और किसानों ने संगठित होकर इस संग्राम को जहां कार्यरूप दिया, वह क्षेत्र हिंदी का क्षेत्र है। रामविलास जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि जिस देशी फौज की सहायता से अंग्रेजों ने अपना राज्य फिर से कायम किया, उनमें अधिकांश अहिंदी प्रदेशों के सिपाही थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इस विषय पर इस क्षेत्र में जितने लोकगीत रचे गए, उतने बाकी के सभी प्रदेशों को मिलाकर भी नहीं हैं। इसी कारण उन्होंने इसे हमारा जातीय संग्राम भी कहा।

प्रो. नामवर सिंह ने 'भाषा' के संदर्भ में जिस 'स्वत्व' और 'जातीय अस्मिता' को स्मरण किया, उस पर रामविलास शर्मा स्पष्ट कहते हैं कि 'जिस सामाजिक इकाई में नवजागरण के कार्य संपन्न होते हैं, उसे हम जाति की संज्ञा देते हैं। भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण समस्या यह है कि अंग्रेजी राज कायम होने से पहले यहां किसी भी जाति का निर्माण हुआ था या नहीं? यदि हुआ था, तो पूंजीवादी विकास भी हुआ था, और उस हालत में भारतीय समाज को सामंती व्यवस्था से आगे ले जाने का श्रेय अंग्रेजी राज को नहीं दिया जा सकता...'।

यहीं आकर अपने समय के समाजवेत्ताओं, इतिहासवेत्ताओं की जीवन-दृष्टि स्पष्ट हो जाती है।

रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण की पहली मंजिल सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम, दूसरी मंजिल भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग, और तीसरी मंजिल महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग को माना है। इन तीनों चरणों की अपनी-अपनी प्रासंगिकता है। पहले ने नागरिक मन में साहस और स्फूर्ति दी, दूसरे ने साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक दुनिया में इसकी क्रियाशीलता बढ़ाई। भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके मंडल के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता, नागरिक सम्मान और जातीय अस्मिता को सुरक्षित, अनाहत, और अक्षत रखने की व्यवस्था बतलाई। 'लेवी प्राणलेवी' शीर्षक लेख लिखकर भारतेंदु ने ब्रिटिश-विरोध का अपना स्वर मुखर किया। आम बोलचाल की भाषा में किसानों पर केंद्रित कई रचनाएं लिखीं, जो उन्हें संगठित और आंदोलित करने की दृष्टि से लिखी गई थीं।

नवजागरण के बारे में रामविलास शर्मा की स्पष्ट राय है कि जो नवजागरण सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य-विरोधी, सामंत-विरोधी प्रवृत्तियां, द्विवेदी युग में और पुष्ट हुईं। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा उनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियां क्रांतिकारी रूप में व्यक्त हुईं।

भारतीय नवजागरण अथवा हिंदी नवजागरण भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास-क्रम में ऐसा महत्वपूर्ण प्रसंग-बिन्दु है, जिसकी दीर्घ परंपरा और परवर्ती काल के उसके प्रभाव-सूत्र के सहारे ही हम अपने होने के तर्क और सार्थकता ढूंढ सकते हैं। भारतीय परंपरा के विराट चिंतक रामविलास शर्मा 'भारतेंदु युग' और 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी युग' के महत्वपूर्ण योगदान को इस प्रक्रिया में रेखांकित तो करते ही हैं, साथ-साथ नवजागरण के विस्तृत फलक, और प्राचीन सूत्र-संकेत तलाशने की दृष्टि भी देते हैं। नवजागरण की धारणाओं के उदय एवं विकास-क्रम पर रामविलास जी ने अपनी कई कृतियों में विस्तार से उल्लेख किया है।

इस समय हिंदी नवजागरण पर बात करने वालों की संख्या बड़ी है, पर ध्यान देने की बात है कि विगत तीन दशकों में किसी ने भी हिंदी नवजागरण पर कुछ करना शुरू किया है, तो उसका काम रामविलास जी का संदर्भ लिए बगैर संपन्न नहीं हुआ। रामविलास जी ने हमें न केवल हिंदी नवजागरण की विकास-परंपरा की जानकारी दी है बल्कि उन्होंने नवजागरण की परंपरा पर गंभीरता से चिंतन करने वाले दृष्टि-संपन्न अनुवर्ती लोगों की एक बड़ी शृंखला भी विकसित कर दी है, और यह शृंखला निरंतर बढ़ती जा रही है। महावीर प्रसाद द्विवेदी की अवधारणाओं को रेखांकित करते हुए वे एक संकेत देते हैं कि इस युग की सही पहचान तभी हो सकती है जब हम एक तरफ गदर और भारतेन्दु युग से उसका संबंध पहचानें और

नया गौरव

रामविलास शर्मा

विगत उस गौरव का क्या मूल्य
गिरे गिरि से धरणी की ओर?

उठे फिर देखो ये श्रमशील
अगम पथ का पाने को छोर

हमारा अप्रतिहत उत्थान
यही है नव गौरव का ज्ञान।

(1936)

रूपतरंग (वाणी प्रकाशन) से साभार

दूसरी तरफ छायावादी युग, विशेष रूप से निराला के साहित्य, से उसके संबंध पर ध्यान दें।

विषय विशेष पर गंभीरतापूर्वक चिंतन-अनुशीलन की रामविलास शर्मा की पद्धति परवर्ती और समकालीन अध्येताओं को बहुत कुछ देती रही है। किसी भी वैचारिक बिंदु की पृष्ठभूमि में उसकी गुणवत्ता का मूल्यांकन, और परिणति एवं अनुवर्ती विचार-व्यवस्था पर उसकी प्रभाव-प्रक्रिया के संबंध इतना सावधान और सुव्यवस्थित विचार देने वाले चिंतक, रामविलास जी विरल व्यक्तित्व हैं। वे साफ कहते हैं कि देश का इतिहास समझने के लिए अपने प्रदेश का इतिहास समझना जरूरी है। जो भी इस इतिहास का विश्लेषण करना चाहे, उसे पहले सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम का अध्ययन करना चाहिए। फिर क्रमशः भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, और निराला के साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। तभी नवजागरण की पेचीदा प्रक्रिया समझ में आएगी और जो विभिन्न साहित्यकार और विभिन्न युग एक-दूसरे से कटे हुए दिखाई देते हैं, वे एक ही प्रक्रिया के अंतर्गत परस्पर जुड़े हुए दिखाई देंगे।

कई कृतियों में अपनी अनुशीलन पद्धति द्वारा रामविलास शर्मा ने इस बात की स्पष्ट प्रेरणा दी है कि किसी भी विषय, व्यक्ति, प्रसंग, कृति के संबंध में धारणाएं कैसे सुनिश्चित की जाएं, और कैसे उसे नहीं देखा जाए। उन्होंने मार्क्सवाद-विरोधी लोगों के लिए स्पष्ट तौर पर कहा कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मार्क्सवादी विचारक नहीं थे, पर साथ ही मार्क्सवादियों के लिए कहा कि किसी मार्क्सवादी विचारक को यह भ्रम नहीं होना चाहिए उनका चिंतन द्विवेदी जी के समग्र चिंतन से अधिक वैज्ञानिक और प्रगतिशील है। उनकी राय में भारत के बड़े-बड़े मार्क्सवादी विचारक द्विवेदी जी के लेखन से अब भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। ऐसे विवेकशील, निष्ठावान, विशिष्ट विचारक, चिंतक और नीर-क्षीर विवेकी समालोचक की न केवल नवजागरण संबंधी धारणा, बल्कि उनका संपूर्ण लेखन, उनकी इतिहास-दृष्टि और रचना-प्रक्रिया हमारे लिए धरोहर और प्रेरणा स्रोत है। उनकी स्मृति को शत-शत नमन। □

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज़ एंड ट्रेनिंग, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

पत्रों से झांकते रामविलास शर्मा की छवियां

भारत भारद्वाज

छठे दशक में प्रगतिशील आलोचक के रूप में रामविलास शर्मा का बड़ा नाम ही नहीं, आतंक था। वे प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री थे। प्रेमचंद और निराला पर उनकी पुस्तक निकल चुकी थी। भारतेंदु पर भी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर हो रहे आक्रमण को वह निरस्त कर रहे थे। संभवतः 1956 में उनकी पुस्तक निकली—आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना 1958 से उन्होंने आगरा से मासिक समालोचक का संपादन आरंभ किया। यह पत्रिका बेशक दीर्घायु नहीं हुई, लेकिन समकालीन हिंदी आलोचना के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आलोचना त्रैमासिक पत्रिका के समानांतर।

बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर जिले के एक धूर गांव चांदपुरा में एक नवयुवक पुस्तकालय था, जिसकी स्थापना 1933 में हुई थी। इस पुस्तकालय में पुस्तकें तो बहुत नहीं थीं, लेकिन जो पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं उपलब्ध थीं उनसे समकालीनता की आहट मिलती थी। तब मैं शायद छठे-सातवें क्लास का विद्यार्थी रहा होऊंगा। गुरुजी (बाबू राम सोहाग सिंह, कन्या पाठशाला, चांदपुर के अध्यापक, तब पुस्तकालाध्यक्ष थे)। मैं उनके साथ शाम पांच बजे प्रायः पुस्तकालय जाता था। पुस्तकें उलटते-पलटते मेरी नज़र गई एक पुस्तक पर—जिसका शीर्षक था—प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं। यह पुस्तक मेरे अग्रज प्रो. ब्रजकिशोर सिन्हा को जी.डी. कालेज, बेगुसराय, बिहार से किसी कविता प्रतियोगिता में मिली थी, जिसे उन्होंने पुस्तकालय को भेंट कर दी थी। जब मैंने गुरुजी से इस पुस्तक को 'इशू' करने के लिए आग्रह किया—उन्होंने छूटते ही कहा—हिंदी में बी.ए. (आनर्स) करने के बाद रामविलास शर्मा को पढ़ना।

लेकिन रामविलास शर्मा मेरे मन में बसे हुए थे। बाद के दिनों में न केवल उनसे लंबा पत्र-संपर्क हुआ बल्कि उनका लिखा अधिकांश मैंने पढ़ा। मेरे नाम लिखे उनके पत्रों से रामविलास जी की कई छवियां उभरती हैं। वे साधारण पाठक को भी महत्व देते हैं, उन्हें पत्र लिखकर प्रोत्साहित करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वे पाठकों को आतंकित नहीं करते। उनसे पत्राचार का आरंभ मेरे द्वारा संपादित पदक्षेप (मार्च, 80) से होता है और पत्राक्षेप होता है 20 मार्च 1998 के उनके लिखे अंतिम पत्र से। लगभग 18 वर्षों के बीच चला यह पत्राचार वेशक संक्षिप्त है लेकिन इसमें रामविलास जी की मनुष्यता, संवेदना और अपने समय की चिंता सर्वत्र व्याप्त है। उनकी जन्मशती पर श्रद्धांजलि के रूप में उनके मेरे नाम लिखे कुछ पत्र यहां प्रस्तुत हैं:-

॥५॥ भारत की,

आगत - २
११.१२.८०

आपका ३०/१२ का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई।
म. प्र. द्विवेदी वाला पुस्तक अब प्रकाशक के पास थी, तब
उसके कुछ अंश भागवर सिंह ने 'कालोपमा' में छाप थे।
म. प्र. जी की जीवनी भवस्थ लिखी जानी चाहिए।
किन्तु अन्य कामों से समय निकाल कर इसे लिखना मेरे
लिए संभव न हो गा। नाबाली और भारत वाला पुस्तक
पर राजकल काम कर रहा है। आशा है, प्रगते साल
गामियों तक पूरी हो जायगी।

मुझे नहीं मालूम था। क्या करते हैं। प्यार भी करते

हैं, साहित्य से संपर्क बनाए
ला वह पाठक को सुख
दोनों के लिए लाभकारी होता
है। मैं दोनों स्रोतों में आपकी
सफलता चाहता हूँ।
इधर आप लो अद्वैत
मिलें। आपका

आपका
रामविलास शर्मा

 15
STREET INDIA

A.
17-12-60
Sri Bharat Bhawan
DCIO office,
Khwazabagh
Baramulla
(Kashmir) 193103

प्रथम भाग

25.9.09

१८॥ ने सरस पत्र के उत्तर में एक सखी सुश्रुता का डण
कर निराशा न हो। लंके पर लालच में कण होता है। पढ़ने में
मेहीं; आप स्वच्छ हो कर लिखा करें। प्रेमचंद वाली पुस्तक
रस मरीने निकल जाने वाली थी। जाड़ा घटाया कुछ नहीं है।
पुरानी किताबें; कायापरी करने के साथ, दो तीन साल में निकल
जायेंगी। कुछ के प्रकाशक के लिए राजन मले के उपलब्ध
अन्यक व्यवस्था कर रहा हूं।

आपका पहला पत्र दिलने के बाद मैंने पदकोष या थारल त्रिलो में आपका नाम देखा था। आप बिहार जाने समय इधर रुके तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हो गई। दोपहर को १२ से ३ बजे की रात समय छुड़ कर आप अपना

सुविधा से कभी भी निरस्त न हो
आ सकते हैं। आप साहचर्य के
निचायी नहीं रहे, इससे आपको
लाभ होगा चाहे बहुत ही
बेकार कवायदों से आप बच
गये। 30 साल पहले मैं भी गार
के भीतर मुद्रण में रहा था
और वहाँ के गाव भी देखेंगे।
महाभारत के बाद के दो सत्रोप
जैसे थे। सामाजी युद्ध और
अकृषि शिल्पों से कालीन साहित्य
पर हमारे लिए समय निकलने का
प्रयास है। मन्थ

3/2/55
 भारत
 INDIA
 नया दिल्ली
 REPLY CO
 श्री शारत बलराज
 D10 office
 Khwazabagh
 Baramulla
 193103 (Kashmir)
 पिन डिन

प्रिय भारत जी,
आपका २५/२ का पत्र मिला। इससे पहले
आपका जन्मदिन था, उससे जवाब देने कायक, मेरे
पाद में, कोई बात नहीं, इसलिए आपका जन्म
दिन था। मुझे २५/२ की रक्षा ब्रह्म की संभल
'है' के रूप में थी। कब, कब पाद नहीं। वह
मेरे २५ के जन्मदिन रक्षा ब्रह्म, ब्रह्म
कहे रह लिख रहे थे। मुझे २५ के बारे में
अधिक जानकारी, शक्ति को हाथी। आप
बेकार बाइ से मिल चुके हैं, यह प्रसन्नता की

बात है। पिछले आठ दिनों
यहां आये। तीन दिन
उसे नाराजी थी। प्यादे
थे। जंगल का मूल पाद
में कुछ नये, जादा पुराने
मिठान संकलित है।
विनाद पुस्तक में दिने जल
मेरी कोई पुस्तक अब
नहीं है। सस्नेह
रा. वि. शर्मा

Recd 1.4.81
11-4-81
Bharat Bhaskar
DCIO Office
Khwarabagh
BARANULLA
PIN (Kashmir)

प्रिय भारत जी,
इस महीने के आरंभ से मेरी पत्नी के स्वास्थ्य
हृदय रोग ने उन्हें बहुत कष्ट दे रहा है। उनकी स्थिति अब
भी अपन चिन्ताजनक है।
आपका १५/२ का कार्ड मिला गया है।
आपका
रा. वि. शर्मा

प्रियवर,
आपका कार्ड मिला।
स्वास्थ्य हृदय की गति रुक जाने से मेरी
पत्नी का देहांत हुआ। बहुत अप्रत्याशित थी
क्योंकि रक्षा उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार
हुआ था। भस्नेह
मंगल कामना सहित- रा. वि. शर्मा

प्रिय भारत जी,
आपका १/१ का पत्र मिला। पढ़ने में बहुत
सुख मिला।
पिछले दिनों कुछ समय के लिए भूल
गिरे थे।
भाषा परिवार के पहले छंद में नरसी
पर काफ़ी सामग्री है।
मेरी पत्नी मसिमा बिंदु के उपदेश

के लिए मेरे मकले लख
के साथ बनाए गए हैं।
वहाँ काफी सुख है।
मेरे धन हैं
खेप म
रा. वि. शर्मा

24.1.83
15
भारत भारद्वाज
c/o श्री दिलीप कुमार सिंह
जो मल्लपुर
पंच पीठरी
मुम्बई ४०००२५
PIN (कोर)

प्रिय भारत जी,
आपका ३०/२ का कार्ड मिला।
मेरे स्वास्थ्य दि. म. के एक मित्र के राजेन्द्र नाथ
काहेर्य प्रेम, हंस मुख, इतिहास विभाग में थे। लेखिका से
अनति करने हुए अपेक्षा हो गये। दोतीन साल हुए
उनका पुत्रि/पुत्र गवाम केरा हृदय की
समस्या के बाद जाता रहा। कुछ दिन बाद वह भायले
बले में अवसर मिलता है, मुझे से उनका विधवा
पर क्या करत रहेंगे थे।

संसार में क्या हुआ
है। आसपास मिला
दोहाने भर का जलन है।
कुछ पुत्र/पुत्री मुम्बई को
प्रकृति के अंतर्विरोध से
पेदा होता है, कुछ मुम्बई
मुम्बई के अंतर्विरोध से।
इस इलाके अंतर्विरोध से
लड़कें हम पहले अंतर्विरोध
बाज फूल को मारने की
शक्तियाँ पाते हैं। स. प्र. म.
(आत्मजाल शक्ति)

15
भारत भारद्वाज
20/72 मालाबाग
नया दिल्ली
मालाबाग

संपर्क : 211, आकाश दर्शन अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

हिंदीभाषियों का गर्व : रामविलास शर्मा

खगेंद्र ठाकुर

सन् 2000 की तीस मई। मैं भागलपुर में था। 29 मई की शाम को ही मैं वहां पहुंच गया था और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय में ठहरा हुआ था। तीस मई की सुबह पार्टी के जिला सचिव ट्राजिस्टर चालू करके समाचार सुन रहे थे। अचानक उन्होंने मुझे पुकारा। मैं कमरे से निकलकर उनके पास गया। एक कुर्सी रखी थी उस पर बैठ गया। मेरे पहुंचते-पहुंचते समाचारों के शीर्षकों का वाचन समाप्त हुआ, कहा गया-‘अब आप विस्तार से समाचार सुनिए। हिंदी के जाने-माने आलोचक डॉ. शर्मा नहीं रहे। डॉ. शर्मा का निधन रात डेढ़ बजे हो गया। वे 88 वर्ष के थे।

रामविलास शर्मा से मैं जब-जब मिला, वे हमेशा सीना तान कर बैठे दिखे। वे कभी झुके नहीं, सिद्धांत और विचार में तो नहीं ही झुके, शरीर भी कभी नहीं झुका। अब तो वे नहीं रहे, कभी झुकने की नौबत ही नहीं आएगी अब। जो कर गये हैं, जो लिख गये हैं, वह हमारे साथ, हमारे बाद की पीढ़ियों के साथ रहेगा, आगे आने वाली पीढ़ियों को साथ देता रहेगा, प्रेरणा देता रहेगा। कम से कम शोषितों-पीड़ितों, मेहनतकशों को तो वे प्रेरणा और बौद्धिक एवं नैतिक शक्ति देते रहेंगे।

रामविलास शर्मा हिंदी के शीर्षस्थ आलोचक, विचारक और विभिन्न विषयों के प्रवर्तक, चिंतक एवं लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। रामविलास जी का रचनात्मक और लेखकीय व्यक्तित्व इतना विराट है कि किसी भी भाषा की जनता को उन पर गर्व हो सकता है। यह गर्व हिंदीभाषियों को भी है। अमृतलाल नागर ने एक बार एक लेख में लिखा कि रामविलास हिंदी जगत् पर छाए हुए हैं। बात यह है कि जो उनसे मतभेद रखते हैं, वे भी उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। नामवर सिंह ने अपने एक भाषण में (वसुधा में प्रकाशित) कहा कि-“कोई रामविलास जी को समझना चाहे तो उसे कम-से-कम दस साल लगाने होंगे।” यह उन्होंने इसलिए नहीं कहा कि उनका लेखन कठिन है, बल्कि इसलिए कहा कि उनका लेखन बहुआयामी है आलोचना के अलावा, उन्होंने इतिहास लिखा, ऐतिहासिक भौतिकवाद पर लिखा, भाषा और समाज के संबंध के साथ भाषा-विज्ञान संबंधी ग्रंथ लिखे। यों यह उल्लेख भी किया

जा सकता है कि उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ कविता से हुआ। एक बार उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक से कहा कि कविता मेरी स्वाभाविक रचनाशीलता की अभिव्यक्ति रही है। लेकिन दो कारणों से मैं आलोचक हो गया-एक तो दूसरों की गलत बातों का जवाब देने के कारण, दूसरे अपने साथी मार्क्सवादियों की गलत स्थापनाओं को ठीक करने के कारण। जब वे कह रहे हैं, तो संभव है कि उनके आलोचक बन जाने के ये कारण भी रहे हों, लेकिन मैंने पहले भी कहा कि उनका लेखकीय व्यक्तित्व आलोचक के दायरे को तोड़ कर आगे बढ़ गया।

मार्क्सवाद को स्वीकार कर लेने या यह कहें कि उसे आत्मसात कर लेने के कारण उनके व्यक्तित्व का दायित्व बदल गया और बढ़ गया। मार्क्सवाद एक क्रांतिकारी दर्शन है, इसे वे मानते हैं। इसलिए समाज को गुणात्मक रूप से बदलना, समाज में प्रचलित उत्पादन संबंधों को बदलना एक मार्क्सवादी का कर्तव्य और दायित्व हो जाता है। इस सिलसिले में कई कार्य सामने आ जाते हैं। मार्क्सवाद विरोधी और यथार्थवादी लोग मार्क्सवाद पर पहला हमला यही करते रहे हैं कि यह एक विदेशी दर्शन है, यहां तक कि साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन जब उठ खड़ा हुआ, तो कहा गया कि यह विदेशी पौधा यहां की मिट्टी और आबोहवा के अनुकूल नहीं है। यहां इस बात का जवाब देने की जरूरत नहीं, क्योंकि यह सभी जानते हैं कि विचारों की भौगोलिक सीमा नहीं होती। गांधी जी ने ब्रिटिश विचारक रस्किन

रामविलास शर्मा से हम यह तो सीखें कि वे मजदूरों की तरह रोज कम-से-कम आठ घंटे काम करते थे। वह अकेले आधुनिक विद्वान हैं, जिन्होंने अनेक सम्मानों की विपुल राशि को ठुकराया। अकेले रामविलास जी हैं, जिन्हें सम्मानित करने के लिए उनसे पूछा गया कि वे इसे स्वीकार करेंगे या नहीं? उन्होंने कहा-सम्मान स्वीकार लूंगा, रकम नहीं, रकम को जनता के बीच, जनता की निरक्षरता दूर करने के लिए खर्च की जाए। मैं यह मानता हूं और यह भी समझता हूं कि एकदम सही है कि रामविलास शर्मा हों या कार्ल मार्क्स और लेनिन या कोई और उनके सिद्धांत और जीवन-पद्धति में एकता होनी चाहिए। सिद्धांत और जीवन-पद्धति में एकता का अभाव जीवन को पाखंडपूर्ण बना देता है।

की पुस्तक *अन टु दिस लास्ट* (यह अंतिम व्यक्ति तक) पढ़ी थी और उनको अपना मुख्य सिद्धांत बनाया। केवल राजनीति में ही नहीं, साहित्य और संस्कृति में भी। इसी तरह उन्होंने ताल्स्तॉय के मानवतावादी लेखों को पढ़कर प्रेरणा ली। महात्मा बुद्ध के विचार और धर्म का प्रसार दुनिया के एक बड़े हिस्से में हुआ और आज भी उनका प्रभाव वहां मौजूद है। इसलिए विचार या विचारधारा को देशी-विदेशी कहना बुद्धिहीनता है। इनके अलावा हम देख रहे हैं कि विज्ञान के अविष्कारों एवं अनुसंधानों का लाभ पूरी मानवता उठा रही है। व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत लोग ही परिवर्तनकारी विचाराधारा के खिलाफ तर्कहीन बातें कहते हैं।

आलोचना को रामविलास जी ने एक सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार किया। इस दायित्व के पालन की दृष्टि से पहला काम जो उनके सामने आया वह था आलोचना में अपनी परंपरा और चारित्रिक विशेषता की पहचान करना। भारतेंदु की युगांतकारी भूमिका की पहचान तो शुक्ल जी ने ही की थी। रामविलास जी ने भारतेंदु-युग का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया और आगे महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल, निराला आदि से उस इतिहास का संबंध बताया। भारतेंदु-युग की चेतना का प्रवाह आकर बीसवीं सदी के उपयुक्त महापुरुषों से मिलता है।

प्रेमचंद ने अपने कथा-लेखन से वह महान काम किया, जिससे संस्कृत काव्य-शास्त्र से साहित्य मृत हो जाता है। नये शास्त्र और नई सौंदर्य-दृष्टि की जरूरत पड़ गयी। इस ऐतिहासिक परिवर्तन की व्याख्या रामविलास जी ने प्रेमचंद पर लिखी अपनी पुस्तकों में की है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर उनकी पुस्तक *हिंदी आलोचना और रामचन्द्र शुक्ल* 1955 में छपी। शुक्ल जी के अभूतपूर्व आलोचनात्मक अवदान की व्याख्या रामविलास जी ने की। शुक्ल जी ने कविता को नये ढंग से परिभाषित किया। शुक्ल जी ने मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं किया, प्रगतिशील आंदोलन में भी शामिल नहीं हुए, फिर भी उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि से आलोचना-सिद्धांतों का विकास किया। अलंकारवादी सिद्धांतों और रीतिवादी मान्यताओं को उन्होंने पूरी ताकत के साथ रद्द किया। उन्होंने रस-सिद्धांत को भी हू-ब-हू कबूल नहीं किया। रामविलास ने शुक्ल जी पर लिखते हुए यह रहस्योद्घाटन किया कि शुक्ल जी ने 1920 में जर्मन विद्वान हैकल की पुस्तक का अनुवाद हिंदी *विश्व-प्रपंच* नाम से किया और उसमें अपनी ओर से लंबी भूमिका लिखकर विज्ञान को साहित्य और आलोचना से जोड़ा। इस तरह उन्होंने आधुनिक युग की दृष्टि से शुक्ल जी की महान की व्याख्या की। शुक्ल जी के पढ़ते हुए और फिर रामविलास के लेखन पर गौर करते हुए यह महत्वपूर्ण बात सामने आयी कि शुक्ल जी की परंपरा का विकास वे ही लोग करते हैं, जो मार्क्सवादी आलोचक कहे जाते हैं, रामविलास जी उनमें सबसे आगे हैं।

रामविलास शर्मा ने अपनी आलोचनात्मक परंपरा की पहचान करने के बाद हिंदी क्षेत्र और हिंदी जाति के महत्व की ओर ध्यान दिया। हिंदी-जाति यानी हिंदीभाषी जनता की एकजुटता और पूंजीवादी विकास पर आधारित समान हित का विकास। आम तौर से कहा जाता रहा है कि हिंदी जनता में राष्ट्रीयता (जातीयता) का विकास नहीं हुआ, जिस तरह बंगला, मराठी, तमिल, पंजाबी आदि में हुआ। इस समझ का जवाब देने के लिए रामविलास शर्मा ने हिंदी जाति के स्वरूप और विकास तथा भारत की राष्ट्रीय एकता में उसकी भूमिका का खास तौर से अध्ययन किया। उन्होंने कहा कि हिंदी जाति देश की जनता को बड़े पैमाने पर जोड़ती है; क्योंकि हिंदी क्षेत्र विशाल है, हिंदीभाषी जनता अंग्रेजी और चीनी भाषा के बाद दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी और प्रचलित भाषा है। हिंदी क्षेत्र की बोलियों को भी वह आपस में बांधती है। हिंदी किसी के विकास में बाधक नहीं है, बल्कि बोलियों के से लगाव के कारण हिंदी विकसित होती है और हिंदी की मदद से बोलियों की भी प्रगति होती है। हिंदी जाति का साहित्य हिंदी साहित्य है और उसका संबंध बोलियों के साहित्य से भी है। जाति की पहचान से साहित्य की सही पहचान प्राप्त होती है। इस तरह रामविलास जी हिंदी जाति की महत्ता की व्याख्या करते हैं और उसका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी बताते हैं।

रामविलास जी को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने हिंदी

नवजागरण की अवधारणा प्रस्तुत की और उसकी विशेषताओं का विश्लेषण किया। आमतौर से इतिहास के विद्वान मानते हैं कि हिंदी नवजागरण जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन रामविलास जी ने पहली बार *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* नाम की महत्वपूर्ण पुस्तक में हिंदी नवजागरण की चर्चा की और उसकी विशेषताओं का भी विवेचन किया। पहली बात तो यह कि मराठा नवजागरण, बंगला नवजागरण आदि को राष्ट्रीय नवजागरण कहा गया है। इन पर गौर करें तो स्पष्ट होगा कि भारतीय नवजागरण धार्मिक आवरण में समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों के खिलाफ संघर्ष था, राष्ट्रीय नवजागरण में अंग्रेजी को अपनाने पर जोर था, इसके साथ ही बाल-विवाह के खिलाफ विधवा-विवाह के पक्ष में अभियान था। अवश्य इस तरह के अभियानों का पुरातन भारतीय समाज से टकराव था, इसलिए यह नवजागरण था। लेकिन हिंदी नवजागरण में स्वतंत्रता, अपनी भाषा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीकी शिक्षा पर जोर था। इस प्रसंग में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक *संपत्ति शास्त्र* की भूमिका रामविलास जी ने उजागर की। *सरस्वती* के माध्यम से द्विवेदी जी ने वैज्ञानिक चेतना और नई सामाजिक चेतना का प्रसार किया। इस परंपरा में उन्होंने अन्य लेखकों की भूमिका पर विचार किया।

रामविलास जी ने भारतीय संस्कृति के विकास में हिंदी प्रदेश और हिंदी जाति की भूमिका पर विस्तार से लिखा है। यह भी अपने ढंग का अनोखा काम है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि हिंदी संस्कृति का संबंध प्राचीन भारतीय संस्कृति बहुत गहरा है। यही हिंदी क्षेत्र है, जिसमें प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृति का विकास हुआ। इस प्रसंग में उन्होंने सिन्धु सभ्यता और द्रविड़-सभ्यता-संस्कृति का इतिहास प्रस्तुत किया है। द्रविड़-संस्कृति का संबंध उन्होने पश्चिम एशिया की संस्कृति से भी बताया है। इस प्रसंग में *भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश* नाम की उनकी दो खंडों में जो पुस्तक है वह अनोखी है।

रामविलास जी की *भाषा और समाज* नाम की पुस्तक 1961 में छपी थी, जो भाषा के विकास और सामाजिक विकास के अविच्छिन्न संबंध को स्पष्ट करती है। बाद में उन्होंने यूरोपीय भाषा परिवार और हिंदी के संबंध पर तीन खंडों में अभूतपूर्व काम किया। इनमें उन्होंने एक बड़ी बात यह बतायी है कि ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने दक्षिण भारत की भाषाओं को उत्तर की आर्य भाषाओं से अलग कर दिया। लेकिन आर्य भाषाओं और द्रविड़ भाषाओं में गहरा संबंध है। यह देखने की बात है कि रामविलास जी ने भाषा चिंतन को पहली बार ग्रियर्सन और सुनीति कुमार चटर्जी के घेरे से बाहर निकाल कर मौलिकता का परिचय दिया और नये ढंग से विचार भी किया।

रामविलास जी से बहुतों का मतभेद है। ऐसे अनेक प्रश्न हैं मतभेद के। मेरे जैसे छोटे आदमी का भी आलोचना के क्षेत्र में और नवजागरण के प्रारंभ के प्रश्न पर अथवा आलोचना-पद्धति के प्रश्न पर उनसे मतभेद है। मतभेद होना बुरी बात तो नहीं है, मतभेद के लिए अपना मत होना चाहिए। रामविलास जी से हमें, और आगे आने वाली पीढ़ियों को इतना तो सीखना ही चाहिए कि अपने साहित्य, संस्कृति, समाज, भाषा आदि के इतिहास का उनके आपसी संबंधों का विस्तृत अध्ययन करना चाहिए। 1857 की *राज्यक्रांति* नाम से रामविलास जी ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक 1957 में उस महान स्वाधीनता संग्राम की जन्मशती के अवसर पर लिखी और हिंदी क्षेत्र की जनता में पनप रही नई चेतना की अभिव्यक्ति के साथ भारतीय स्वाधीनता-संग्राम से उसके संबंध का विश्लेषण किया। अंत में मैं कहना चाहता हूँ कि जहां आलोचना में या ऐतिहासिक लेखन में रामविलास जी में

चूक दिखायी पड़ती है, उसका अध्ययन भी ज़रूरी है, लेकिन उन्होंने जो सामग्री विभिन्न क्षेत्रों में प्रस्तुत कर दी है, उसे पढ़ कर आज की पीढ़ी उसका विश्लेषण करे यह एक बड़ा काम होगा। रामविलास शर्मा के बारे में लिखना या बोलना कोई साधारण काम नहीं है। काम की व्यापकता और महत्ता की दृष्टि से राहुल जी के बाद रामविलास जी का ही नाम लिया जा सकता है। यह सही है कि रामविलास जी की अनेक आलोचनात्मक धारणाएं गलत साबित हुई हैं, लेकिन रामविलास शर्मा से हम यह तो सीखें कि वे मजदूरों की तरह रोज कम से कम आठ घंटे काम करते थे। वह अकेले आधुनिक विद्वान हैं, जिन्होंने अनेक सम्मानों की विपुल राशि को ठुकराया। अकेले रामविलास

जी हैं, जिन्हें सम्मानित करने के लिए उनसे पूछा गया कि वे इसे स्वीकार करेंगे या नहीं? उन्होंने कहा—सम्मान स्वीकार लूंगा, रकम नहीं, रकम को जनता के बीच, जनता की निरक्षरता दूर करने के लिए खर्च की जाए।

मैं यह मानता हूँ और यह भी समझता हूँ कि एकदम सही है कि रामविलास शर्मा हों या कार्ल मार्क्स और लेनिन या कोई और उनके सिद्धांत और जीवन-पद्धति में एकता होनी चाहिए। सिद्धांत और जीवन-पद्धति में एकता का अभाव जीवन को पाखंडपूर्ण बना देता है। □

संपर्क : क्षितिज जनशक्ति कालोनी, पथ संख्या-24, राजीव नगर, पटना

रामचरितमानस में कुछ आधुनिक....

पृष्ठ 17 से आगे

तनखीन कोउ अति पीन
पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर
सब सद्य सोनित तन भरे।

पुर नारि सकल पसारि अंचल
बिधिहि बचन सुनावहीं।

भरि भुवन रहा उछाहु
रामविवाहु भा सबही कहा।

केहि हेतु रानि रिसानि
परसत पानि पतिहि नेवारई।

जेहि भांति सोकु कलंकु जाइ
उपाइ करि कुल पालहीं।
इठि फेरु रामहि जात बन
जनि बात दूसरि चालहीं।

लागे सराहन भाग सब
अनुराग बचन सुनावहीं।

यह तनय मम सम विनय
बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बांह सुर-नर नाह
आपन दास अंगद कीजिए।।

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि
गिरि लोल सागर खरभरे।

रघुबीर निज मुख जासु गुनगन
कहत अगजग नाथ जो
काहे न होई विनीत परम
पुनीत सदगुन-सिंधु सो।

(उत्तरकांड)

यहां आवर्तों के कारण छंद पढ़ने में जो आनंद आता है, वह उनकी विशेषता का सबसे बड़ा परिचायक है। स्वर की लहरें एक स्थान से उठ दूसरे पर जाकर गिरती हैं। आनंद पूरा छंद पढ़ने में आता है; व्यर्थ स्थान न भरने के लिए मैंने उन्हें पूरा नहीं उद्धृत किया। जहां छंद की और लड़ियां विभिन्न स्वरों से बंधी अपने बंधन का परिचय न देती हुई आगे बढ़ती हैं, वहां ये आवर्त कुछ अपना आकार दिखा पाठक को परम सुख देते हैं। छंद की गति जब रुक-रुककर आवर्त लेती हुई चलती है, तब पदों की आवृत्ति उसमें और सौंदर्य भर देती है। ऊपर के उदाहरणों में हम देख सकते हैं, कहीं-कहीं उनसे अर्थ की भी पुष्टि होती है। पहले उदाहरण में 'आर' की आवृत्ति लोगों की असहायता, संसार के हाहाकार की ओर इंगित करती है। दूसरे उदाहरण में 'आरि' की आवृत्ति से अंचल पसारने का भाव खुलता है। पांचवें में 'आनि' के आवर्त कुछ रानी का राजा द्वारा धीरे-धीरे छुआ जाना भली-भांति दिखाते हैं; तीन आवर्त आने से लड़ियां एक-दूसरे को धीरे-धीरे स्पर्श करती हैं। परंतु इस तरह के विश्लेषण को दूर तक ले जाने में भय है। कवि प्रायः बिना ये सब बातें सोचे उन्हें रखता है; आलोचक उनका सौंदर्य परखते दूर की कौड़ी खोजने का साहस कर सकता है। फिर भी रामचरितमानस में इन आवर्तों का सौंदर्य इतना अधिक है कि यह सोचना कठिन हो जाता है कि कवि अपनी इस कला-चातुरी से अनभिज्ञ रहा होगा। तुलसीदास उन्हें खींच-खांचकर नहीं लाए, पढ़ने पर ऐसा ही लगता है और, यह उनके भाषा के प्रवाह के लिए भी सत्य है। सहृदय कवि-हृदय से फूटी निःशरिणी-सी वह सहज अबाध प्रवाहित है। पर कौन जानता है, इसके लिए उन्हें कितनी साधना करनी पड़ी हो; 'संकर चापु जहाजु' के स्थल पर ही एक बार क्लम रखकर सोचना न पड़ा हो। जैसा भी हो, आवर्तों का यह सौंदर्य आपको रवींद्रनाथ की कविता में, अनेक फ्रांसीसी कवियों के मुक्त छंदों में, वर्तमान हिंदी कवियों में भी निराला जी में बहुतायत से मिलेगा। तुलसीदास यहां भाषा को एक मौलिक ढंग से सजाने में आज की विकसित काव्य-कला का आभास देते हैं। कला की अन्य दिशाओं में संभव है, उनसे भूलें हुई हों। परंतु जहां तक भाषा का संबंध है, वे आधुनिक से आधुनिक के आगे हैं।

(सुंदरकांड)

(साभार : माधुरी, जनवरी 1937)

अखाड़े से जुड़ा आलोचक : रामविलास शर्मा

माजदा असद

रामविलास शर्मा हिंदी जगत में जाना-पहचाना नाम है। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में उनका जवाब नहीं। वह चिंतक भी थे और आलोचक भी। युगबोध उनकी विशेषता थी। मेरी क्या मजाल जो इतने महान व्यक्ति पर कलम उठाऊं। हां कुछ यादें हैं, कुछ बातें हैं जो एक दो मुलाकातों से हुई। आप भी उसे सुन लें।

सन् 1973 में मैं आगरा गई। उन दिनों मेरे सबसे बड़े भाई ज़फ़र मोहसिन वहां सर्विस में थे। वह ताजगंज मुहल्ले में रहते थे। मैं साप्ताहिक हिंदुस्तान के लिए इंटरव्यू लेती थी। उसके संपादक मनोहर श्याम जोशी ने कहा—“आप आगरा जा रही हैं तो रामविलास शर्मा जी का इंटरव्यू ले लें।” मैं इंटरव्यू ले आई। वह बालस्वरूप राही जी को देखने के लिए दे दिया गया।

उन्हें पसंद नहीं आया। जोशी जी ने कहा—“आप इसे धर्मयुग में भेज दें।” मैंने वह इंटरव्यू धर्मवीर भारती को भेज दिया। उन्होंने उसे धर्मयुग में प्रकाशित कर दिया। उसमें प्रो. नामवर सिंह और गोपाल प्रसाद व्यास की चर्चा भी थी। धर्मयुग पढ़कर व्यास जी (बल्लीमारान में) मेरे घर आए, बघाई दी। बहुत खुश हुए। गोपाल प्रसाद जी ने मुझे हिंदी हिंदुस्तान और दिल्ली के हिंदी परिवार साहित्य सम्मेलन आदि से परिचित कराया। व्यास जी का स्नेह मेरे लिए बड़ी प्रेरणा थी। उनके घर भगीरथ पैलेस में आने-जाने की खुली छूट थी। ऐसा लगता था कि हम उनके परिवार के सदस्य हों।

रामविलास शर्मा का इंटरव्यू छपा तो बहुत से पत्र मेरे पास आए और बहुत से धर्मयुग में छपे। दिल्ली हिंदी अकादमी का श्लाखा सम्मान देने हम लांग उनके घर विकासपुरी गए। उन्होंने बड़े प्रेम से स्वागत सम्मान स्वीकार किया। हम सब कार्यकारिणी के सदस्यों को जलपान कराया। धनराशि किसी संस्था को दान कर दी।

बड़ी दिलचस्प बात यह है कि रामविलास शर्मा लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. और उसी विश्वविद्यालय के पहले अंग्रेजी पीएच-डी. हुए। उन्होंने वहां अध्यापन कार्य भी किया। उनके पढ़ाए हुए विद्यार्थी वहां प्रोफेसर हो गए। गुरु प्रो. निर्मल कुमार सिद्धांत उनसे इसलिए नाराज थे कि वह हिंदी में लिखते थे और कम्युनिस्ट थे। उसकी सज़ा उनको यह मिली कि वह लखनऊ विश्वविद्यालय में पांच साल टेंपेरी पढ़ाते रहे। यह उस जमाने का रिकार्ड था। डा. सिद्धांत ने ही उनकी नियुक्ति राजपूत कालेज आगरा करा दी। उनसे कहा—“आगरा बहुत बड़ा केंद्र है, तुम वहां चले जाओ।” इनकी दरखास्त लेकर अपने चपरासी से उसकी रजिस्ट्री कराई। राजपूत कालेज के प्रिंसिपल आर.वी. सिंह साहब ने पूछा—“सिद्धांत तुम्हारी इतनी तारीफ़ करते हैं, तुम्हें लखनऊ विश्वविद्यालय में क्यों नहीं रखा।” रामविलास जी ने उत्तर दिया—“वह चाहते थे कि लखनऊ की तहज़ीब योड़ी आगरा भी पहुंच जाए।” 1943 में वह आगरा आ गए और ऐसे जमे कि यहां से कहीं जाने का नाम

नहीं लिया। के.एम. मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक पद पर भी रामविलास जी ने काम किया 1971 से 1974 तक। मेरी पहली मुलाकात 1973 में उनसे इसी संस्था में हुई।

1936 ई. में उन्होंने निराला के विषय में पहला लेख लिखा। आलोचक बनने का कोई इरादा उनको नहीं था। निराला के विषय में ग़लत आंदोलन चलाया जा रहा था। उसका विरोध करना ज़रूरी था। उस समय के अधिकतर खूमे निराला के खिलाफ़ थे। यहीं से उनका लेखन शुरू हुआ। वह हिंदी लेखन से जुड़ गए। 1934 तक लेख, शोध प्रबंध और कविताएं लिखते रहे। स्कालरशिप मिलता था। खर्च कम था। बीस रुपये महीने में काम चल जाता था। वह लखनऊ में रोज़ पाव भर मलाई ज़रूर खाते थे। उन्हें मालूम था कि

रामविलास शर्मा का चेहरा आज भी मेरी आंखों के सामने है। उनकी आंखों की चमक, चौड़ा माथा, चेहरे पर तेज और प्रतिभा की दमक को क्या भुलाया जा सकता है? हिंदी साहित्य ही क्या भारतीय साहित्य भी उन्हें कभी भुला न सकेगा। ऐसे लोग सदियों में पैदा होते हैं।

अच्छी मलाई कहां मिलती है। बनारस विश्वनाथ मंदिर के नुक्कड़ पर एक बुढ़िया मलाई बनाती थी। यह शमशेर बहादुर सिंह की खांज थी। वह एक ही मकान में निराला के साथ डेढ़ साल तक रहे। उस समय जैसा उन्हें देखा उसके बारे में लिखा। प्रेमचंद पर उनकी पहली पुस्तक 1940 में छपी। उस समय प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य को लेकर कोई किताब नहीं छपी थी। दूसरी पुस्तक भारतेंदु युग के

नाम से 1943 में प्रकाशित हुई। तीसरी और निगला पर पहली पुस्तक 1946 में छपी। इस तरह उन्होंने तीन विषयों पर तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। फिर वह बड़े लीडर बन गए। 1949 में ‘अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ’ के मंत्री बने। इस लीडरी का बड़ा फायदा यह हुआ कि उन्होंने उर्दू लेखकों को निकट से देखा और पहचाना। कैफ़ी आज़मी, मजरूह सुलतानपुरी, नियाज़ हैदर, इस्मत चुगताई आदि से मुलाकात हुई। उस समय उनके लेख उर्दू में अनूदित होकर छपने लगे। बहुत से लोग उनको उर्दू का लेखक समझते थे। हैदराबाद में एक उर्दू प्रेमी सज्जन उनसे बोले—“आप तो ज नते हैं साहब, उर्दू क्या चीज़ है? आप हिंदी वालों के चक्कर में कैसे आ गए।” उनकी इस लीडरी की खास अदा यह थी कि उन्होंने कार्यवाही कभी अंग्रेजी में नहीं होने दी। न हिंदी-उर्दू वालों को अलग-अलग बैठने दिया। हमेशा मिली-जुली सभाएं कराई। एक तरह का तजुर्बा किया कि जो कुछ हमें कहना है, वह सरल भाषा में कहें। उर्दू-हिंदी वालों की समझ में आती है या नहीं। उस समय बहुत से लोग उन्हें भाषा की समस्या का बहुत बड़ा विशेषज्ञ मानते थे। उन्होंने अंग्रेजी छोड़ने और भारतीय भाषाओं में लिखने पर ज़ोर दिया। संभवतः इसलिए मुल्कराज आनंद ने एक सभा में ऐलान किया कि वे अंग्रेजी में लिखना छोड़कर पंजाबी में लिखेंगे। हंसराज रहबर ने ऐलान किया कि वह उर्दू में लिखना छोड़कर पंजाबी में लिखेंगे। लेकिन ये लोग अपनी बात पर दृढ़ नहीं रहे। 1950 में कम्युनिस्ट पार्टी और प्रगतिशील लेखकों में झगड़ा हो गया। 1953 के अखिल भारतीय सम्मेलन में कृष्ण चंदर मंत्री चुने गए। इस तरह उन्हें किताबें लिखने के लिए छुट्टी मिल गई। यों तो लेखन और लीडरी का

साथ-साथ चलना मुश्किल है, लेकिन नेतागिरी के अपने लाभ हैं। रामविलास जी को इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि देश की दूसरी भाषाओं, साहित्य और लेखकों से परिचय हुआ। जानकारी बढ़ी। उनकी योजना भारतीय साहित्य का इतिहास लिखने की भी थी। इस योजना के बीज उस समय बोए गए जब उन्हें बहुत-सी भाषाओं के लेखकों के साहित्य से प्रेरणा मिली।

रामविलास शर्मा चेकोस्लोवाकिया गए। रूस जाने का निमंत्रण भी मिला। तब उनके दिल में विचार आया कि अपना देश बहुत बड़ा है। उसका भ्रमण किया जाए। उन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारी तक और महाराष्ट्र से बंगाल तक यात्राएं कीं। देश में उन्हें इतना जानने को मिला जिसके लिए एक ज़िंदगी काफी नहीं है।

1953 के बाद लेखन के लिए समय मिलने लगा। प्रेमचंद पर काम शुरू किया। *प्रेमचंद और उनका युग* पुस्तक लिखी। जो लोग उन पर हल्ला बोल रहे थे उनको जवाब दिया। *प्रगतिशील*

साहित्य की समस्याएं पुस्तक लिखी। कुछ पुराने लेखक जिन पर मार्क्सवादियों ने कम लिखा जैसे वृंदावनलाल वर्मा, जयशंकर प्रसाद आदि, उन पर लेख लिखे। 1857 पर एक किताब लिखी। यह किताब 31 दिसंबर 1957 को प्रकाशित हुई। उनके एक दोस्त कहते थे कि यह पुस्तक 1957 में प्रकाशित नहीं हो सकती। वह 31 दिसंबर 1957 रात को अपने दोस्त को यह पुस्तक देकर आए। उस समय उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था।

उन्होंने भाषा विज्ञान पर भी काम किया। उनकी पुस्तक *भाषा और समाज* 1961 में प्रकाशित हुई। उसी वर्ष निराला का देहांत हो गया। 1962 से उनकी जीवनी लिखने के लिए सामग्री इकट्ठी करनी शुरू कर दी। *निराला की साहित्य साधना* 1969 में प्रकाशित हुई। इसी पुस्तक पर 1972 में उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। यह भी रोचक है कि रामविलास जो साहित्य अकादमी बिल्डिंग कभी नहीं गए थे, केवल पुरस्कार लेने एक बार गए। पुरस्कार मिलने पर लोगों को परेशानी हुई। लोगों ने उनसे तरह-तरह के सवाल किए तो उन्होंने कहा—“ज्यादा जानकारी के लिए साहित्य अकादमी के कर्मचारियों से पूछना चाहिए।”

अधिकांश प्रगतिशील लेखक उनके मित्र नहीं थे क्योंकि प्रगतिवाद शुद्ध मध्यवर्ग से बाहर नहीं निकला। उनके अनुसार प्रेमचंद, निराला, वृंदावनलाल वर्मा जैसे लेखकों का बड़प्पन इस बात में था कि वे किसानों के जीवन को पहचानते थे।

रामविलास जी ने अंग्रेजी में भी पुस्तकें लिखीं—*नाइनटीथ सेंचुरी इंग्लिश पोएट्स* तथा *ऐसेज़ आन शेक्सपियर*। उनके पास लोग किताबें भेजते और उस पर सामग्री चाहते। बहुत से लोग तो हस्तलेख लेकर आ जाते ताकि उस पर कुछ लिख दें। उन्होंने यह सिद्धांत बनाया हुआ था कि न भूमिका लिखूंगा न किसी किताब की सामग्री। साहित्य अकादमी के पुरस्कार के बाद लोग उनकी भूमिका की आवश्यकता को अधिक महसूस करने लगे थे। रामविलास शर्मा के जीवन की रोचक घटना घटी थी जब उन्होंने निराला और पंत को एक साथ देखा। उनके मन में विचार आया कि हिंदी के कवि बड़े

उच्छृंखल होते हैं। उस समय वह बी.ए. के पहले साल में पढ़ते थे। निराला के लंबे बाल, कुरता और टोपी उच्छृंखल इसलिए समझा कि साथ जा रही लड़की बड़ी बेशरम लग रही थी। साड़ी की जगह पतलून-कोट पहने थी। उन्होंने अपने दोस्तों से कहा—“लखनऊ शहर में यह क्या बदतमीजी है।” दोस्तों ने उन्हें बताया—“तुम क्या समझोगे देहाती आदमी हो। ये दोनों कवि हैं इसलिए बाल बढ़ाए हैं। छोटे कढ़ वाली लड़की नहीं हैं, कवि सुमित्रानंदन

पंत हैं।” यह बात उन्होंने अपने तक ही सीमित रखी। पंत जी को नहीं बताई। परिवार में पत्नी से उन्हें बहुत सहयोग मिला। उन्होंने घर का पूरा उत्तरदायित्व संभाला हुआ था जिसकी वजह से रामविलास जी लेखन में लगे रहे। घरदारी की कोई चिंता उन्हें नहीं थी। तीन बेटे और तीन बेटियों के पिता थे।

1973 में जब मेरी उनसे बातचीत हुई तो वह इकसठवें वर्ष में चल रहे थे। देखने में हट्टे-कट्टे स्वस्थ थे। मैंने कहा, “आप इतने

बड़े नहीं लगते क्या यह लखनऊ की मलाई का असर है?” उन्होंने हंस्टे हुए कहा—“लखनऊ में मैं अखाड़े में भी लड़ता था। आगरा आने के बाद अखाड़ा छूट गया 1962 की दुर्घटना में कंधे की हड्डी टूट गई थी। उसके बाद व्यायाम में भी दिक्कत होती थी। मैं लड़कपन में हाकी खेलता था और राजपूत कालेज में क्रिकेट।” अपने जन्मस्थान के बारे में उन्होंने बताया कि हिंदी के आधे लेखक अवध के हैं। स्नेही, भगवतीचरण वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, शिवमंगल सिंह ‘सुमन’, निराला, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि। निराला अपने गांव से द्विवेदी जी के गांव पैदल आया करते थे। यहां के लोग बहुत बहादुर होते हैं। ग़दर में आधे सिपाही बैसवाड़ा के थे। उनके दादा-परदादा सब फौज में थे। उसका असर शर्मा जी में आया। वह बहुत अनुशासनप्रिय रहे।

उन्हें एक विशिष्ट प्रकार के शिष्य की सख्त ज़रूरत थी ऐसे शागिर्द की जो उनके कातिब (लिखने वाले) का काम करे और साथ मालिश भी करे। बदले में वह उसे अपनी बायोग्राफी (जीवनी) लिखवा देते। मेरे कोई सवाल किए बग़ैर ही मेरी तरफ़ देखते हुए वह बोले—“जो मेरा इंटरव्यू ले रही हैं उनसे मेरी सार्वजनिक रूप से प्रार्थना है कि वे हिंदी-उर्दू साहित्य का मिला-जुला इतिहास लिखें, क्योंकि हिंदी-उर्दू लिखने वाले, बोलने वालों की कौम एक है और उस कौम के साहित्य का इतिहास जिसमें उर्दू-हिंदी दोनों शामिल हैं, अभी किसी ने नहीं लिखा है।” रामविलास जी को लाइब्रेरी जाना था। मैंने उनसे विदा ली। रामविलास शर्मा का चेहरा आज भी मेरी आंखों के सामने है। उनकी आंखों की चमक, चौड़ा माथा, चेहरे पर तेज और प्रतिभा की दमक को क्या भुलाया जा सकता है? हिंदी साहित्य ही क्या भारतीय साहित्य भी उन्हें कभी भुला न सकेगा। ऐसे लोग सदियों में पैदा होते हैं जिनके बारे में कहा गया है—

हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनुरी पे रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

संपर्क : सी-105, ईस्ट एंड अपार्टमेंट, दिल्ली-110096

वह निराला के योग्य सहचर हैं

निराला के सच्चे उत्तराधिकारी शताधिक ग्रंथों के रचयिता महान आलोचक रामविलास शर्मा किस तरह अपने समकालीन आलोचकों से पृथक दिखाई देते हैं और रामविलास होने का क्या अर्थ हो सकता है? हिंदी साहित्य के कोश में रामविलास जी के व्यक्तित्व को लेकर अकादमियों में जो कुछ बातचीत होती रही है उस विषय पर केंद्रित विश्वनाथ त्रिपाठी से भारतेन्दु मिश्र की बातचीत :

प्रश्न : महान आलोचक और विचारक रामविलास शर्मा को आप किस रूप में याद करते हैं?

उत्तर : उनके व्यक्तित्व के कई आयाम हैं। जीवन के अंतिम दौर में रामविलास शर्मा हिंदी के मिथक-पुरुष बन गए थे। हिंदी भाषा और साहित्य के सजग प्रहरी तो थे ही, वह द्विवेदी जी की उस चिंतक परंपरा में थे जो हिंदी को निरंतर ज्ञान और समृद्धि से अलंकृत करते रहे। रामविलास जी अंग्रेजी के अध्यापक थे, लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के वह पहले पीएच.डी. थे—लेकिन उन्होंने हिंदी की भरपूर सेवा की। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में वह उतरे महाकवि निराला की कविताओं की व्याख्या के लिए और लगभग चालीस वर्षों तक उन्होंने निराला की कविताओं पर काम किया। निराला की साहित्य साधना तीन खंडों में प्रकाशित हुई। प्रथम खंड जीवनी पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। आज हिंदी आलोचना में जो मार्क्सवाद का वर्चस्व है उसका सर्वाधिक श्रेय आपको जाता है, कह सकते हैं कि प्रगतिशील चिंतन और भाषा को हिंदी की जातीय परंपरा में उन्होंने ही समाविष्ट किया। रामविलास जी का सबसे आकर्षक गुण यह है कि आज के दौर में भी पाठकों को उनका लेखन प्रभावित करता है। उनका लेखन ही नहीं बल्कि उनका जीवन आचरण संभवतः उनके लेखन से भी अधिक प्रभावशाली है। इस रूप में देखें तो वह भारत की निर्लोभी संत परंपरा के लेखक हैं। निराला ने अपने बारे में लिखा था—और भी फलित होगी यह छवि। निराला की यह उक्ति रामविलास जी के लिए भी संदर्भवान है।



स्वतंत्रता आंदोलन के समय में अंग्रेजी साहित्य में पीएच.डी करने तथा बाद में जीवन भर अंग्रेजी के प्राध्यापक बने रहने के बावजूद रामविलास जी हिंदी सेवा के प्रति समर्पित रहे, वह चाहते तो आगरा कालेज के अलावा और भी उच्च पदों पर जा सकते थे—परंतु उन्होंने इसके बारे में कभी सोचा नहीं, इसका क्या कारण है?

ये जो हमारा स्वाधीनता आंदोलन था उसके कुछ आदर्श थे। रामविलास

जी यद्यपि मार्क्सवादी थे लेकिन वह स्वाधीनता आंदोलन के साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं। यह स्मरण करने की चीज है कि वह निराला के योग्य सहचर हैं—यह समझिए कि वह दूसरे निराला हैं। जो सच्चा देशप्रेमी होता है वह देश के जन, प्रकृति, भाषा, संस्कृति सबसे प्रेम करता है। प्रेम दो भावों में व्यक्त होता है—वीरता और करुणा। वीरता में प्रिय की रक्षा और करुणा में प्रिय से आत्मीयता का भाव जागृत होता है। रामविलास जी जब देश से प्रेम करते हैं तो देश की भाषा से भी प्रेम करते हैं। वह अंग्रेजी के विद्वान थे—धुरंधर विद्वान थे—भारोपीय भाषा के लासानी विद्वान थे लेकिन प्रेम वह अपने देश की भाषा हिंदी और अपनी मां—बोली अवधी से करते थे। यही कारण था

कि रोटी उन्होंने अंग्रेजी से कमाई और सेवा हिंदी की की। दूसरे रामविलास जी जनवादी प्रगतिशील चिंतक थे तो जनता को जाग्रत करने की भाषा को ही अपनाया। पार्टी के लोगों से उनका मतभेद था। वह कहते थे—लेनिन को समझो, रूस में क्रांति अंग्रेजी से नहीं हुई।...तो अनेक कारण थे उनके हिंदी में काम करने के पीछे।

रामविलास जी की आलोचना से हिंदी आलोचना कितनी समृद्ध हुई?

अभी हमने देखा कि हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना का वर्चस्व रामविलास शर्मा के कारण है। उन्होंने ऐतिहासिक और युगांतकारी योगदान किया। आज हिंदी पाठकों में निराला का जो समादर है उसमें रामविलास जी का सर्वाधिक योगदान है। उन्होंने निराला की जीवनी लिखी और उनकी कविताओं की विशद व्याख्या की। नहीं कह सकता कि यदि रामविलास जी ने निराला पर ये ग्रंथ

न लिखे होते तो निराला को समझने में कितने दशक और लगते। उन्होंने प्रेमचंद पर सबसे पहले काम किया फिर आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर काम किया। परंपरा का पुनर्मूल्यांकन किया। हिंदी में सौंदर्यबोध के क्षेत्र में काम करने की दिशा में पहल की। इस विषय में उनकी पुस्तक *आस्था और सौंदर्य* बहुत महत्वपूर्ण है। आप हिंदी आलोचना में पॉलिमिक्स के लासानी आचार्य हैं। पॉलिमिक्स के विषय में रामविलास जी

को कबीर का उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। उनकी पुस्तकों में *भारतेन्दु युग ऐतिहासिक महत्व* की पुस्तक है। तुलसीदास पर लिखी उनकी एक पुस्तक उनके मरणोपरांत साहित्य अकादमी से प्रकाशित हुई। उन्होंने संस्कृत कवियों—कालिदास और भवभूति पर भी महत्वपूर्ण काम किया और हिंदी पाठकों के लिए इन कवियों का आस्वाद सुलभ बनाया। इसी प्रकार रामविलास ने शेक्सपीयर पर भी हिंदी में बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने हिंदी आलोचना को ऐसी भाषा प्रदान की है कि वह सचमुच हिंदी की आलोचना कहला सके। हिंदी के अधिकांश आलोचक जिनमें से अधिकांश प्रसिद्ध आलोचक हैं—अंग्रेजी से प्रभावित हिंदी लिखते हैं जबकि रामविलास जी अंग्रेजी के विद्वान होते हुए भी हिंदी में सहज सारगर्भित आलोचना लिखते हैं।

आप तो प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष मंडल में हैं और वर्षों से संघ से जुड़े हुए हैं, तो बताएं कि रामविलास जी की प्रलेस में क्या भूमिका रही ?

यह बहुत अहम प्रश्न है। रामविलास जी अपेक्षाकृत अल्पवय में ही प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव बन गए थे। बहुत निष्ठा के साथ उन्होंने कुछ वर्षों तक यह पद निभाया। उनके समय में ब्रिटिश सरकार कम्युनिस्ट पार्टी को सबसे खतरनाक मंच मानती थी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन महासचिव बी.टी.रणदेवे रामविलास जी को बहुत मानते थे और रामविलास जी पार्टी की योजनाओं को अनुशासनपूर्वक प्रगतिशील लेखक संघ में कार्यान्वित करते थे। उदाहरणार्थ—रामविलास जी मुत्कराज आनंद से कहते थे—“आप पंजाबी हैं और प्रगतिशील हैं तो आपको अंग्रेजी में नहीं पंजाबी में लिखना चाहिए।” इसी प्रकार हंसराज रहबर से भी वह यही बात कहते थे। रामविलास जी ने आलोचना में ऐसी विध्वंसक शैली का आविष्कार किया जिससे उन्हें कुछ लोग फौजदार आलोचक कहने लगे। जैसाकि होना था—बी. टी.आर. के हटते ही आप का प्रलेस में घोर विरोध हुआ और वह महासचिव पद से हट गए। इसके बाद संगठन का काम छोड़कर रामविलास जी साहित्य कार्य में जुट गए और सभ्यता समीक्षा विशेषतः भाषा और जातीयता की समस्या पर उन्होंने ऐतिहासिक कार्य किया। यह कार्य ऐतिहासिक ही नहीं बल्कि मौलिक भी हैं। उन्होंने पहली बार हिंदी की जातीयता की संकल्पना को प्रतिष्ठित किया तथा भाषा और समाज का मार्क्ससीय एवं वैज्ञानिक संबंध स्थापित किया। अनेक विदेशी और भारतीय भाषाओं के ज्ञाता और वैज्ञानिक बोध से लैस रामविलास जी ने मौलिक और अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया। नामवर सिंह का कहना है—‘रामविलास जी के चिंतन में 1857 के गुदर की केंद्रीय भूमिका है।’ अनेक विद्वान रामविलास जी को परंपरावादी मानने लगे हैं। उनका तर्क है कि रामविलास जी समकालीन समस्याओं पर विश्लेषण न करके प्रायः प्राचीनता की ओर मुड़ गए और ऋग्वेद पर काम करने लग गए। यह तर्क अतीव भ्रामक है। रामविलास जी परंपरावादी नहीं हैं बल्कि परंपरा का मूल्यांकन करने वाले हैं। अंग्रेजी में शेक्सपीयर और चासर पर काम करना आधुनिक बोध का विरोधी नहीं माना जाता। भौतिक वैज्ञानिक 2012 में ब्रह्मांड के सृजन-क्षण में GOD PARTICLE की खोज में लगे हैं और हिंदी के ज्ञानलवदुर्विदग्ध जन प्राचीन विषयों पर काम करने का मतलब परंपरावादी होना समझते हैं। प्रसन्नता की बात है कि हिंदी आलोचना की नई पीढ़ी रामविलास जी के महत्व को स्वीकार करके आगे बढ़ रही है।

कुछ पत्रकारों, लेखकों ने उन्हें मार्क्सवादी ऋषि विशेषण दिया था। आप इस विशेषण से कहां तक सहमत हैं?

जहां तक मुझे याद आता है उन्हें इस विशेषण से प्रभाष जोशी जी ने विभूषित किया था। रामविलास शर्मा को मार्क्सवादी कहा जाता था, मार्क्सवादी

दो कविताएं : रामविलास शर्मा

पथहारा

वह खोल जलद के रजत पाल
तिरती अगाध नभ नील सिंधु
बांकी एकाकी चंद्रवाल।

बहती अबाध सुख से मंथर
वह मंदिर समीर तरंगों पर
जाने किस आशा से निर्भय
दी महाशून्य में तरी डाल।

जग का मारा यदि पथहारा
होता मैं ही उसका प्यारा
सीमा पर तो खोलता व्यथित
स्वागत को निज बाहें विशाल।

(1935)

सुखदुख

पीड़ा को उसकी प्रकृति भूल
दुख को भी सुख-सा मधुर मान
मैं हृदय लगाता बार-बार
तेरा कोई उपहार जान।

(1936)

रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि (वाणी प्रकाशन) से साभार)

ऋषि कहने का विशेष प्रयोजन है। अनेक लोग मार्क्सवाद को भारतीय न मानकर उसकी भ्रामक आलोचना करते हैं। विज्ञान और वैज्ञानिक समीकरण सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। बिजली, अणु ऊर्जा, रेलगाड़ी, टेलीफोन—ये सब क्या भारतीय खोज की देन हैं? लेकिन क्या ये सब भारतीय नहीं हैं? क्या इनका उपयोग भारत में नहीं होना चाहिए? हां, इनका उपयोग स्थानीय स्थितियों के संदर्भ में ही होने से वांछित फल प्राप्त होता है। मार्क्सवाद के साथ भी यही होना चाहिए।

रामविलास शर्मा ने भारतीय चिंतन परंपरा का अवगाहन किया है। उसकी महत्ता और उपयोगिता को मार्क्सवादी व्याख्या के लिए अनिवार्य और उपयोगी माना है। इसके साथ एक बात और अंग्रेजी में कहें—LAST BUT NOT THE LEAST रामविलास शर्मा का जीवन आचरण जैसाकि पहले भी कह चुका हूँ—संतों जैसा है। ऋषिदृष्टा होता है हमारे यहां दर्शन का संबंध केवल बोध से नहीं बल्कि जीवनानुभव से होता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यदि रामविलास जी को ऋषि कहते हैं तो उचित ही है। □

संपर्क : एल-187/सी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095

एक आलोचक-एक भाषा विज्ञानी : रामविलास शर्मा

रमा

हिंदी आलोचना के प्रमुख स्तंभ रामविलास शर्मा ने अंग्रेजी साहित्य से शिक्षा लेने के बाद भी हिंदी साहित्य में योगदान दिया। आचार्य शुक्ल और द्विवेदी जी के बाद हिंदी आलोचना की एक नई परंपरा का आरंभ रामविलास जी के द्वारा हुआ है। शर्मा जी ने अपनी आलोचना से जहां हिंदी साहित्य के कुछ अनसुलझे सवालों को सुलझाने का प्रयास किया वहीं कुछ नए प्रश्नों को खड़ा भी किया, जो विद्वतजनों के बीच आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। यह विवाद संभवतः बना रहेगा क्योंकि वर्तमान समय में जिस तरह की सटीक आलोचना की जा रही है वह रामविलास शर्मा की चिंतन प्रक्रिया के आस-पास भी नहीं पहुंच सकती। रामविलास जी ने हिंदी आलोचना में जिन स्थापनाओं को जन्म दिया वे सभी मील का पत्थर साबित हुईं। रामविलास जी ने जो काम किया उसका विस्तृत फलक है फिर भी देखा जाए तो उनकी आलोचना का प्रस्थान प्रेमचंद के कथा साहित्य से ही आरंभ होता है। प्रेमचंद रामविलास शर्मा की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक है, जो 1939-40 में लिखी गई। दूसरी पुस्तक प्रेमचंद और उनका युग 1952 में प्रकाशित हुई। इन दोनों पुस्तकों में रामविलास शर्मा ने जिस व्यापक दृष्टि से प्रेमचंद के साहित्य और उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है उनसे पहले किसी ने भी इतना गंभीर कार्य नहीं किया आज भी नहीं हुआ। रामविलास जी ने पहली बार प्रेमचंद को हिंदी कथा साहित्य के नायक के रूप में प्रस्तुत किया। जिस प्रगतिशील संघ के स्थापना अध्यक्ष प्रेमचंद हुए उनकी विचारधारा से रामविलास जी भी आजीवन प्रभावित रहे और उसी विचारधारा से रामविलास जी ने प्रेमचंद के साहित्य की छानबीन भी की। जाहिर है प्रगतिशील विचारधारा पर मार्क्स का बहुत प्रभाव था जो रामविलास जी के आलोचना की आधार बनी संभवतः इसीलिए वह प्रेमचंद के साहित्य में महाजनी सभ्यता की तलाश करते हैं, उन्हें किसानों की जीवनगाथा लिखने वाले के रूप में देखते हैं वहीं दूसरी ओर वह मानते हैं कि 'प्रेमचंद यदि मजदूरों के संपर्क में होते तो विश्व के बड़े-बड़े उपन्यासकारों के बराबर होते।' रामविलास जी प्रेमचंद को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का कथाकार मानते हैं। प्रेमचंद और उनका युग, के प्रथम संस्करण की भूमिका में वे लिखते हैं—'प्रेमचंद का साहित्य अपने जमाने के हिंदुस्तान और उसके स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिबिंब है।' (प्रेमचंद और उनका युग, पृष्ठ 12) इसलिए स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में रामविलास शर्मा प्रेमचंद की कृतियों का अवलोकन करते हैं।

रामविलास जी को प्रेमचंद का संपादक, विचारक और आलोचक रूप अधिक लुभाता है। इसलिए प्रेमचंद और उनका युग में वे कहते हैं कि प्रेमचंद ने हर प्रकार से जनता की सेवा की है। भारत के ग्रामीण समाज के लिए, विकास के लिए वे निरंतर प्रयत्नशील रहे। उन्होंने धर्म, जाति, भाषा के आदि के नाम से हो रहे शोषण का विरोध किया।

रामविलास जी प्रेमचंद के अलावा तुलसीदास और निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व के विस्तृत फलक पर बातचीत करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का अवलोकन रामविलास जी भक्ति काव्य व भक्ति आंदोलन विषयक चर्चा में करते हैं। मसलन भक्तिकाव्य के उत्पन्न होने एवं विकसित होने के दौरान आने वाले परिवर्तनों के बीच तुलसी-साहित्य का ध्यान एवं स्वरूप क्या रहा?

भक्ति की दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं विकास में तुलसी कहाँ ठहरते हैं? इसका भी वर्णन रामविलास शर्मा ने किया। तुलसी की शक्ति एवं सीमाओं का मुक्त विवेचन आपकी तुलसी विषयक दृष्टि की महत्वपूर्ण बानगी है।

सबसे पहले तुलसी के दर्शन एवं भक्ति के स्वरूप पर अपना विचार व्यक्त करते हुए रामविलास जी परंपरा का मूल्यांकन में कहते हैं—“तुलसीदास के दार्शनिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं है, वह लोकोन्मुख है, वह जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए है।” (परंपरा का मूल्यांकन-तुलसी की भक्ति, पृ. 59)

तुलसी की विषयवस्तु संसार की बात करते हुए रामविलास जी जिस एक बात पर सर्वाधिक जोर देते हैं, कि—“दरिद्रता पर जितना अकेले तुलसीदास ने लिखा है उतना हिंदी के समस्त नए-पुराने कवियों ने मिलकर नहीं लिखा।” (तुलसी की भक्ति, पृ. 59) इसका कारण बताते हुए रामविलास जी मानते हैं कि, जो इस जगत को सत्य मानेगा, उसे दुख होगा ही। जिससे विकार होंगे, उन्हीं पर काबू पाना होगा। समाज में संबंधों-मर्यादाओं को केंद्र में रखकर ही रामचरितमानस को रामविलास जी 'कृपक चेतना' से परिपूर्ण मानते हैं। यहीं वह सूर को 'चारवाहा संस्कृति' का बताते हुए सभ्यतागत स्तरीकरण में तुलसीदास को सूर से एक कदम आगे बताते हैं। रामविलास जी की एक और मान्यता है कि 'तुलसी की रचनाओं में जगह-जगह चुनौती का स्वर सुनाई देता है। उनके व्यक्तित्व में निडरता है।’

अंततः संपूर्ण भक्ति आंदोलन एवं साहित्यिक काव्यशास्त्र के बीच समान रूप से तुलसी के महत्त्व को रेखांकित करते हुए रामविलास जी ने उसके ठोस आधार एवं स्वरूप भी प्रस्तुत किए। तुलसी के महत्त्व को बताते हुए वह कहते हैं—“भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय आंदोलन था। इस आंदोलन की श्रेष्ठ देन थे—तुलसीदास। उन्होंने निगुणों एवं सगुणों को एक किया, वैष्णवों एवं शाक्तों को मिलाया। उन्होंने भक्ति के आधार पर जनसाधारण के लिए धर्म को सरल और सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़ें हिला दी। तुलसीदास मानवीय करुणा के अन्यतम कवि हैं।”

जिस प्रकार आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में तुलसी को प्रतिष्ठापित किया उसी प्रकार निराला को प्रतिष्ठापित करने का श्रेय रामविलास जी को जाता है। अपनी किताब निराला की साहित्य साधना को आपने तीन खंडों में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। अपने एक लेख 'निराला एक अपराजेय व्यक्तित्व' में उन्होंने कहीं भी निराला के साहित्य की चर्चा नहीं की है बल्कि उनके व्यक्तित्व पर लगे आक्षेपों को दूर किया है। निराला के व्यक्तित्व में उनकी सीमाएं देखने वाले आलोचकों को प्रत्युत्तर देता है यह लेख। रामविलास जी ने निराला के विद्रोही व निर्भय व्यक्तित्व के पीछे की भावना को समझा है। एक सामान्य से परिवार में जन्मे निराला ने बहुत अधिक विद्यालयी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी फिर भी लेखन के बज पर ही उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन बिताया था। उनके अनुसार विरोधी माने जाने वाले निराला तथाकथित सम्मानित व शक्ति संपन्न लोगों के सामने उग्र थे। शर्मा जी इस संबंध में लिखते हैं—“बड़े आदमियों के बीच ही उनके बड़प्पन का भाव जाग्रत होता था। दारागंज की तंग गली के सामने कोठी को देखकर ही उन्हें महिषासुर

के राजप्रसादों की याद आती है। लखनऊ में हीवेट रोड के फुटपाथ पर बैठी हुई भिखारिन को देखकर उनके बड़प्पन के भाव उस 'देवी' में समाहित हो गए थे। कुल्ली के गांव में अछूत बालकों को दूर से ही दोनों में फूल रखकर जाते देख उनकी आंखें छलछला आई थीं। लखनऊ में पंडाल के बाहर नंगे पांव, भूखे पेट एक दक्षिण भारतीय युवक में उन्होंने भारत की आत्मा के दर्शन किए थे।" इस प्रकार उन्होंने निराला के अपराजेय व्यक्तित्व को नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। रामविलास जी के बाद कई आलोचकों ने उन पर आलोचनात्मक पुस्तकें लिखीं लेकिन कोई भी आलोचनात्मक कृति उनकी आलोचना को प्रतिस्थापित नहीं कर सकी।

कुछ साहित्यकारों को स्थापित करने के अतिरिक्त रामविलास जी ने कुछ अनसुलझे विवादों पर भी अपनी बेबाक आलोचना से उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया है। हिंदी नवजागरण पर जितना स्पष्ट काम रामविलास जी का है उतना किसी अन्य का नहीं है। रामविलास जी नवजागरण का आरंभ 1857 के गदर को मानते हैं। असल में यह सन् 57 का गदर रामविलास जी के विचारालम्बक संघर्ष का केंद्र बिंदु है और उनके संपूर्ण चिंतन, सृजन और कर्म का दिशा निर्देशक है। इसी बात को मानते हुए नामवर जी *आलोचना* के रामविलास शर्मा अंक में लिखते हैं कि- 'सन् सत्तावन जैसे उनके समस्त चिंतन की धुरी है और उनके वैचारिक संघर्ष का बीजभाव भी।' इसलिए रामविलास जी की हर कृति में सन् 57 का जिक्र अवश्य मिलेगा। जैसे 'अठारह सौ सत्तावन की राज्यक्रांति' तथा दो खंडों में साढ़े ग्यारह सौ पृष्ठों में लिखा गया विशाल ग्रंथ *भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद*। रामविलास जी ने 1857 की क्रांति को नवजागरण की पहली मंजिल मानते हुए इसे समझाने के लिए कुछ विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। पहला यह कि यह संग्राम देश की एकता को ध्यान में रखकर चलाया गया था। इस राष्ट्रीय एकता का उद्देश्य भारतीय सेनाओं के नेताओं द्वारा तैयार किया गया था न कि सामंतों द्वारा। दूसरी विशेषता यह है कि राज्यसत्ता की मूल समस्या सामंतों के हित में नहीं बल्कि जनता के हित में की गई थी। यह विशेषता पूंजीवादी लोकतंत्र से अगली और उच्चतर मंजिल की ओर संकेत देती है। साथ ही यह अपने मूल रूप में सामंतवाद विरोधी भी थी।

रामविलास जी ने सन् 57 के संग्राम को प्रथम स्वाधीनता आंदोलन संग्राम के साथ-साथ इसे हमारा जातीय संग्राम भी कहा है। उनके अनुसार गदर के दौरान सिपाहियों और नागरिकों ने अनेक इतिहास प्रकाशित किए। भुखमरी, भारतीय व्यापार और उद्योग धंधों के विनाश, मुनाफ़ाखोरी के तरह-तरह के हथकंडे प्रस्तुत किए गए थे।

नवजागरण की द्वितीय मंजिल की शुरुआत रामविलास जी भारतेंदु से मानते हैं। भारतेंदु के परवर्ती लेखकों जिनमें प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, काशीनाथ खत्री, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि लेखकों की कृतियों में गदर के प्रभाव के साथ तत्कालीन टैक्स, महामारी, धन का विदेशों में प्रवाह के विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही थी तथा साथ-ही-साथ स्वदेशी और मातृभाषा के प्रयोग के लिए आग्रह भी दिखाई दे रहा था। यही कारण है कि हिंदी में नवजागरण भारतेंदु के माध्यम से अवतरित हुआ। रामविलास जी ने अपनी कृतियों *भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा*, *भारतेंदु हरिश्चंद*, *भारतेंदु और हिंदी नवजागरण की समस्याएं* में अपनी नवजागरण संबंधी अवधारणा को पुष्ट किया।

इस प्रकार रामविलास शर्मा नवजागरण का विश्लेषण करते हुए छायावाद तक पहुंचकर ठहर जाते हैं। हिंदी नवजागरण के प्रगतिवादी आंदोलन

तथा उसके बारे में वह कुछ नहीं कहते हैं। उनकी राय है कि हिंदी नवजागरण पूरी तरह क्रांतिकारी था।

रामविलास जी का आलोचना क्षेत्र बहुआयामी और विस्तृत है सभी पर दृष्टि डालना संभव नहीं है। उन्होंने एक ओर जहां कुछ साहित्यकारों के जीवन और कुछ साहित्यिक समस्याओं के पर प्रकाश डाला वहीं भाषा के बारे में भी अपनी चिंतनशीलता को भी प्रकट किया। भाषा के संबंध में रामविलास जी के विचार विस्तृत और विचारशील हैं। उन्होंने भाषा को केंद्र में रखकर *भाषा और समाज* (1961), *राष्ट्रभाषा की समस्या* (1965), *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी* (तीन खंड-1979-81)। ये सभी सीधे भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा से जुड़े हुए ग्रंथ हैं। इतने पर भी भाषा-वैज्ञानिक उन्हें इस श्रेणी में स्थान नहीं देते, रामविलास जी इस बात पर बार-बार जोर देते रहे कि समाज से स्वतंत्र और पृथक भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे अर्थ-निरपेक्ष शब्द निरर्थक ध्वनि मात्र है। इसलिए भाषा के विकास को सामाजिक विकास के साथ-साथ देखना चाहिए। वस्तुतः वे यह मानते थे कि जिसे हम भाषा कहते हैं वह स्वयं सामाजिक विकास की एक निश्चित मंजिल है।

रामविलास जी का हिंदी से विशेष लगाव रहा। उन्होंने हिंदी को हमारी जातीय अस्मिता को बचाए रखने का सबसे मज़बूत शस्त्र माना है। मैथिली भाषा पर अनेक बार सवाल उठे कि वह स्वतंत्र भाषा है या हिंदी की बोली? इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने अगला अध्याय जोड़ा है- 'मैथिली और हिंदी'। उन्होंने मैथिली को हिंदी की ही एक बोली स्वीकारते हुए यहां अनेक तर्क दिए हैं। उनके अनुसार यद्यपि मैथिली का व्याकरण हिंदी व्याकरण से भिन्न है किंतु, मैथिली और हिंदी की क्रियाएं अधिकतर समान हैं। मैथिली ने हिंदी के अनेक शब्दों को अपनाया है।

रामविलास जी हिंदी-उर्दू के विकास में ब्रजभाषा की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने सवाल उठाया है कि दिल्ली जो भिन्न जनपदीय परिवेशों से घिरा हुआ था (राजस्थानी, पंजाबी और बांगरू) वहां आधुनिक हिंदी-उर्दू का विकास कैसे हुआ? इसके जवाब में वे लिखते हैं कि हिंदी-उर्दू के इस रूप का विकास आगरे में हुआ था जो ब्रज प्रदेश के अंतर्गत आता है। यहां से ब्रज प्रभावित खड़ी बोली दिल्ली पहुंची। आगरे में खड़ी बोली आई उत्तर पश्चिम के व्यापारियों के साथ। रामविलास जी हिंदी-उर्दू के विकास में ब्रज भाषा के योगदान के प्रति विशेष आग्रह दिखाते हैं जिसमें अन्य जनपदीय भाषाओं के योगदान की अनदेखी होती है।

समग्रतः रामविलास जी का आलोचना पटल बहुत विभागों में बंटा हुआ है। आजीवन मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रामविलास शर्मा ने अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य को धनवान किया। आलोचना की एक नई धारा आरंभ की जिसकी आवश्यकता हिंदी को बहुत शिद्दत से थी। रामविलास जी का हिंदी में प्रवेश उस समय हुआ जब भारतीय जनमानस कई तरह के परिवर्तनों के लिए तैयार था। रामविलास जी ने गोस्वामी तुलसीदास, प्रेमचंद, निराला के व्यक्तित्व व कृतित्व पर व्यापक प्रकाश डालते हुए न केवल उनके साहित्यिक महत्त्व को बताया बल्कि उनके जीवन संघर्ष को भी चिन्हित किया। हिंदी नवजागरण, हिंदी भाषा, नई कविता आदि विषयों पर रामविलास जी ने गंभीर साधना की और हिंदी को विश्वपटल पर स्थापित भी किया। □

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर, हंसराज कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

साहित्येतिहास पर सामाजिक पृष्ठभूमि में विचार करें

हिंदी साहित्य के प्रगतिशील चिंतक और आलोचक डा. रामविलास शर्मा के पचहतरवीं वर्षगांठ पर वर्ष 1987 में आजकल के अक्टूबर और दिसंबर अंक में प्रकाशित रामविलास जी से नीरव अडालजा द्वारा लिया गया साक्षात्कार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।



प्रश्न : हिंदी साहित्य का काल-विभाजन उनका सीमांकन एवं नामकरण आप किस प्रकार करेंगे और उसका क्या आधार है?

उत्तर : किसी भी साहित्य में काल-विभाजन, सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर करना चाहिए। वह सामाजिक पृष्ठभूमि कब और कैसे बदलती है, इसके बारे में बहुत-सी समस्याएं हैं। उदाहरण के तौर पर सामंतकाल को लें जो कि बहुत लंबा चलता है। सामंतकाल के अंदर ही व्यापारिक पूंजीवाद का प्रसार होता है। सामंतकाल से व्यापारिक पूंजीवाद को अलग करना ज़रूरी होता है लेकिन वह पूरी तरह स्वयं अलग नहीं होता। सामाजिक आधार में ही अलग नहीं होता तो आप साहित्य के इतिहास में कैसे उसे पूरी तरह अलग कर सकते हैं। प्रायः ऐसा होता है कि व्यापारिक पूंजीवाद का हास होता है और सामंती शक्तियां उभरती हैं। ऐसा नहीं है कि एक बार व्यापारिक पूंजीवाद आ गया तो अब अडिग बना हुआ है और बराबर विकसित होता जाएगा। सामाजिक विकास-क्रम में प्रायः ऐसा होता है कि नए ढंग के सामाजिक संबंध बने, कुछ दिन दृढ़ हुए और उसके बाद कमज़ोर हो गए और जो पुरानी व्यवस्था थी वह हावी हो गई। इन उतार-चढ़ावों को ध्यान में रखते हुए नामकरण करना चाहिए। नाम कुछ भी रखें, इससे कुछ नहीं होता।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने जो प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान-नाम रखे हैं; उत्थान भी रख सकते हैं और उत्थान के साथ पतन भी रख सकते हैं-प्रथम पतन, द्वितीय पतन, तृतीय पतन। किंतु 'एलिजाबेथन-एज' और 'विक्टोरियन-एज' इस प्रकार के नाम आपको कुछ नहीं बताते। राजा-रानियों के नाम से इतिहास का काल-विभाजन हमारे यहां कम-से-कम प्रचलित नहीं हैं जो कि अंग्रेजों के यहां प्रचलित हैं। किंतु हमारे साहित्य में मध्यकाल और आधुनिक काल जैसे नाम भी किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं रखे गए हैं। यह बताना चाहिए कि आधुनिक काल में समाज-व्यवस्था में आप कौन-सा परिवर्तन देखते हैं और वह परिवर्तन कब से शुरू होता है? मुझ जैसे लेखक यह भी नहीं मानते हैं कि अंग्रेजी राज कायम होने से भारत ने प्रगति की, भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। मैं अंग्रेजी राज से आधुनिक काल की शुरुआत मान ही नहीं सकता बल्कि यह कहना चाहिए कि भारत एक हद तक पीछे ठेल दिया गया। अतः इसे हम प्रथम पतन काल कह सकते हैं, इसे उत्थान काल कैसे कहें। इसलिए आप नामकरण की समस्या छोड़ दें। मोटे तौर से भारत का साहित्य सामंती व्यवस्था की देन है। इस सामंती व्यवस्था में व्यापारिक पूंजीवाद का भी प्रसार हुआ। व्यापारिक पूंजीवाद का प्रसार कब-कब हुआ-चंद्रगुप्त मौर्य के ज़माने में, समुद्रगुप्त के ज़माने में अथवा अकबर के ज़माने में और अंग्रेजी राज कायम होने के समय उनकी क्या स्थिति थी, यह सब बहुत पेचीदा सवाल है। इनका सीधा जवाब नहीं दिया जा सकता किंतु मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि व्यापारिक पूंजीवाद को ध्यान में रखते हुए सामंती व्यवस्था के अंदर जो परिवर्तन हुए, उनको आधार बनाकर तालमेल करना चाहिए तथा उनका नामकरण करना चाहिए।

हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों को आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल आदि नाम दिए गए हैं। क्या आप इन्हें तर्कसंगत मानते हैं?

आदिकाल नाम रखने पर शायद आदमी यह सोचता है कि यह पहला काल है जब हिंदी साहित्य रचा गया। यह विवाद का विषय बना हुआ है कि अपभ्रंश का जो साहित्य है वह हिंदी का साहित्य है अथवा नहीं। क्या हम उसे पुरानी हिंदी कह सकते हैं? क्या डिंगल में जो साहित्य रचा गया है वह भाषा वास्तव में बोली जाती थी या नहीं बोली जाती थी अथवा वह चारणों की गद्दी हुई भाषा है? ये बहुत सारी समस्याएं हैं। आदिकाल नाम दे देने से समस्या सुलझती नहीं, जब तक उसकी विस्तार से व्याख्या न की जाए। इसी प्रकार वीरगाथा काल में 'वीर' शब्द कहने से ऐसा मालूम होता है कि उसमें वीरता के अतिरिक्त कुछ नहीं, किंतु वहां शृंगार भी अधिक है और इसी युग में वीर गाथाओं के अतिरिक्त और प्रकार का साहित्य भी लिखा गया है। अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि उस समय वीरगाथाएं लिखने की प्रवृत्ति अधिक थी। इस प्रकार के नाम दिए जा सकते हैं किंतु प्रत्येक नाम की व्याख्या करना ज़रूरी है। क्यों इसकी व्याख्या करना बहुत ज़रूरी है? उदाहरण के लिए तुलसीदास के समकालीन केशवदास हैं तथा भक्तिकाल की

प्रवृत्तियाँ अलग हैं और रीतिकाल की अलग। ये काल भी एक के बाद दूसरा आता है किंतु भक्तिकालीन प्रतिनिधि कवि तुलसीदास के समय में रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ लिए हुए केशवदास कैसे? हमें इसकी व्याख्या करनी चाहिए कि भक्ति की जब कविता लिखी जा रही हो तो उसी के समानांतर रीतिवाद के एक आचार्य किस प्रकार कविता लिख रहे थे। साहित्य का मामला बड़ा पेचीदा है जहाँ अनेक धाराएँ टकराती हैं और उनमें कोई एक धारा ऊपर आ जाती है जिससे हम उसका नामकरण करते हैं। अतः नामकरण करते समय उस काल को समग्रतः देखना चाहिए।

हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के विशेषकर आदिकाल के सीमांकन के विषय में विद्वानों में मतभेद है। हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के सीमांकन के विषय में तर्कसंगत आधार क्या होना चाहिए?

जिस प्रकार देश की सीमाएँ निर्धारित करना कठिन कार्य है उसी प्रकार समय की सीमाएँ निर्धारित करना भी कठिन होता है। उदाहरण के लिए आप से पूछा जाए कि भारत में सामंती व्यवस्था कब समाप्त हुई? हम सामंती व्यवस्था को आधार मानकर चलते हैं। आपके लिए यह बता पाना कठिन हो जाएगा कि किस समय शुरू हुई और किस समय समाप्त हुई। अतः हम मोटे तौर से साफ कहते हुए कि 1200 ई. अथवा 1300 ई. अथवा (जो भी सन् आप निश्चित करें) हो सकता है। मोटे तौर से हम हिंदी में विद्यापति और खुसरो के समय को हिंदी का प्रारंभिक काल कह सकते हैं। वहाँ से हमारा लोक जागरण शुरू होता है।

साहित्य के इतिहास लेखन और इतिहास लेखन में भी क्या काल विभाजन इसी प्रकार से करना पड़ता है? साहित्य के इतिहास लेखन और इतिहास लेखन के क्या अलग आधार हो सकते हैं?

आप जितना भी अपनी भाषा से निकलकर साहित्य का इतिहास चिंतन एवं साहित्य का इतिहास लेखन करेंगे उतना ही आपको यह विदित होगा कि सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर काल-विभाजन करने से कितने लाभ हैं। मान लीजिए आपने व्यापारिक पूंजीवाद का सूत्र पकड़ा तो हम कहेंगे कि पेरिक्लीज का एथेन्स व्यापारिक पूंजीवाद का गढ़ था, व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था, जिसने बहुत सारे उपनिवेश बनाए। यूनानी भाषा सारे भूमध्य सागर में फैल गई। एथेन्स समृद्धि के चरम शिखर पर था। इसी प्रकार हमारे यहाँ चंद्रगुप्त मौर्य का युग था। चंद्रगुप्त मौर्य के युग में पाटलिपुत्र बहुत बड़ा केंद्र था। इस समय अनेक नगर थे। जिसमें आपस में संपर्क बना हुआ था—उज्जयिनी, सुदूर उत्तर में तक्षशिला, दक्षिण में मदुरई बड़ा केंद्र था। काशी एवं मथुरा आदि—यह सब व्यापार की मंडिया थीं, इनमें आपस में संबंध कायम था। सोलहवीं सदी में लंदन व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था और चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में पेरिक्लीज का एथेन्स व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र रहा। लगभग उसी समय यहाँ पर चंद्रगुप्त मौर्य का शासनकाल था। ये सब बिल्कुल अलग-अलग हैं लेकिन आप इनके दर्शनशास्त्र को पढ़ेंगे तो बड़ी समानता दिखाई देगी, लोगों की सांस्कृतिक दृष्टि को देखें तो बड़ी समानता दिखाई देगी। किंतु यह समानता क्यों दिखाई देती है? मोटे तौर पर प्रश्न करें कि शेक्सपियर के ज़माने में लोग यूनान की संस्कृति से इतने प्रभावित क्यों थे? मध्यकाल जर्मनी की संस्कृति से क्यों नहीं प्रभावित थे? जबकि वह तो बाद की थी, उसे अधिक प्रगतिशील होना चाहिए था और तो और शैली जैसे कवि और मार्क्स जैसे विचारक यूनान संस्कृति से क्यों इतने प्रभावित हुए? जर्मनी के दर्शन से क्यों नहीं? तो यहाँ पर सामाजिक आधार पर हम उत्तर देते हैं कि यूनान का दर्शन इसलिए प्रभावित कर रहा था कि यूनान में प्राचीनकाल में व्यापारिक पूंजीवाद का सर्वाधिक विकास हुआ, इस आधार पर वहाँ की

संस्कृति विकसित हुई और इंग्लैंड में इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। अठारहवीं शताब्दी में व्यापारिक पूंजीवाद के बाद ये पीछे ठेले जाते हैं फिर इनके यहाँ गृहयुद्ध होता है। गृहयुद्ध के बाद जो ज़मींदार वर्ग है, वह अपनी शक्ति को मजबूत करता है। इसी आधार पर पोप आदि का नियो-क्लासिकल युग और रीतिवाद का उत्थान हुआ। फिर जो रोमांटिक्स हैं वे विद्रोह करते हैं, औद्योगिक क्रांति आती है किंतु व्यापारिक पूंजीवाद से यूनान में जो संस्कृति निर्मित हो चुकी वह इतनी भव्य है तथा आगे के लिए मार्गदर्शन है कि औद्योगिक क्रांति होने के बाद भी अंग्रेज़ उसी संस्कृति की तरफ़ जाता है, अन्यत्र उसे कहीं पर अपने लिए आदर्श नहीं मिलता जिनका वह अनुकरण करे। इस प्रकार सामाजिक आधार को लेकर आप चलें तो भारत की अनेक भाषाओं के साहित्य में जो समानता अथवा विषमता है भारत, ईरान-चीन, भारत और ग्रीस, ग्रीस और इंग्लैंड इनके साहित्य के युगों में अलग-अलग जो समानताएँ दिखाई देती हैं, अलग-अलग जो भिन्नताएँ दिखाई देती हैं उनकी आप बड़े मजे से व्याख्या कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल, मध्यकाल कहने से कोई सूत्र आपके हाथ में नहीं आता। मध्यकाल नाम तो और उपहास्यास्पद इसलिए है कि जो लोग यह मानते थे कि यूनान की संस्कृति हमारी प्राचीन संस्कृति है और अब हम आधुनिक साहित्य का निर्माण कर रहे हैं वे मध्यकाल की बात करते हैं। जैसे मान लीजिए इटली का लेखक है, इटली में उसके लिए रोमन सभ्यता प्राचीन सभ्यता है। उसके बाद दसवीं-ग्यारहवीं सदी का मध्यकाल पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में। फिर उनके कवि चित्रकार आए, नवजागरण हुआ तो उन्होंने कहा कि यह हमारा आधुनिक काल है। उनके लिए तो मध्यकाल ठीक है किंतु इंग्लैंड के पास कौन-सी ग्रीस जैसी संस्कृति थी? इनके यहाँ तो सब कबीलाई जीवन व्यतीत कर रहे थे। रोमन्स ने इनके यहाँ सबसे पहले आकर सड़कें बनवाई और इनको विनिमय आदि के तरीके सिखाए। सभ्यता का प्रथम प्रकाश रोमनों की कृपा से इनके यहाँ फैला। सामंतवाद का विकास इनके यहाँ बहुत बाद में लगभग दसवीं-ग्यारहवीं सदी में हुआ। इसके बाद नवजागरण आया। यह नवजागरण सामंतवाद के बाद आया। अतः इनके पास प्राचीनता के नाम पर ऐसा कुछ नहीं है जैसे कि इटली के पास है या ग्रीस के पास। 'मध्यकाल' शब्द इटली और ग्रीस के लिए तो सही है किंतु ब्रिटेन और जर्मनी के लिए सही नहीं। भारत में संस्कृति की जो निरंतरता है वह इंग्लैंड अथवा जर्मनी में नहीं। इसलिए हमारे यहाँ वैदिक काल से वैदिक काल के बाद 1000 वर्ष तक आपने अंधकार युग मान लिया। किंतु मौर्यकाल से अंग्रेज़ों के आने तक हमारे यहाँ संस्कृति की निरंतरता बनी हुई है। ऐसा नहीं है कि मथुरा, काशी, उज्जयिनी, मदुरई—ये जो प्रसिद्ध नगर हैं, इनके चिराग़ हमेशा के लिए गुल हो गए हों या ये देहलत बन गए हों। ऐसा कोई समय हमारे यहाँ नहीं है तो हम अपने यहाँ मध्यकाल की बात क्यों करें और मध्यकाल कहकर आप कौन-सी समाज व्यवस्था की तरफ़ संकेत करते हैं? क्योंकि लोगों ने समाज व्यवस्था को आधार बनाया ही नहीं और वे समझते हैं कि साहित्य समाज व्यवस्था से स्वतंत्र है। इसलिए उसका काल भी स्वतंत्र है और हम उसे चाहे आधुनिक कह दें, चाहे मध्य कह दें, चाहे प्राचीन कह दें सब चलेगा। इसीलिए आदिकाल भी गुलत है।

वीरगाथा काल में चारणों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के यशोगान, उनकी भोग विलासिता आदि को ही अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया, भक्तिकाल में भक्तों एवं संतों ने राज्याश्रम से परे लोकाश्रय में रहकर जनकाव्य की रचना कर भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान किया जिसे आपने लोक जागरण की संज्ञा दी है। किंतु क्या कारण है कि इस प्रकार की जनकाव्य धारा का आगे विकास न

होकर वह पुनः दरबारी साहित्य की ओर उन्मुख हुई अथवा रीतिकाल के उद्भव का क्या कारण है?

यहां पर आदिकाल से लेकर अर्थात् वैदिक काल से लेकर तुलसीदास के समय तक दो धाराएं आपस में बराबर टकराती हैं—एक धारा वह है जो दरबार से जुड़ी हुई थी, राजा से जुड़ी हुई थी एवं पुरोहित से जुड़ी हुई थी। हम ऋग्वेद के मंत्र उद्धृत करके यह प्रमाणित कर सकते हैं कि दरबारों से जुड़े हुए ये कवि हैं। राजा के बाद भूस्वामी जो राजा की तरह ही शक्तिशाली होते हैं और पुरोहित उनको प्रसन्न करता है और देवता से कहता है कि इनका ख्याल रखना। तुम्हारे लिए हम इतना सब दे रहे हैं, इन सब पर कृपा करना व कुछ हमको लौटा भी देना। यह वृत्ति वहां मौजूद है। तुलसीदास की प्रसिद्ध उक्ति है—*दादुर धुनि चाहें ओर सुहाई पढ़ाई वेदजनु बटु समुदाई*। ऋग्वेद के सूक्त में उल्लेख है कि श्राद्ध करके पंडित लोग खूब खा-पीकर मंत्रोच्चारण करते हुए चले जा रहे हैं। कवि के अनुसार इनकी वाणी ऐसी लग रही है जैसे झील के किनारे चांदनी रात में बैठे हुए मंड़क टर्-टर् कर रहे हैं। उसी ऋग्वेद में पुरोहितवाद का विरोध होगा, यह आदमी के लिए कल्पना से परे है। पुरोहितों की प्रशंसा भी है तो पुरोहितवाद का विरोध भी। यह टक्कर बराबर होती चली आई है और एक हद तक अब भी हमारे समाज में है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामंतकाल जो संस्कार बनाता है, वे इतने दीर्घजीवी होते हैं कि पूरी तरह से उनका मूलोच्छेद शायद समाजवादी व्यवस्था में भी नहीं है। अगर यह बात हम याद रखें तो फिर इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि जिस युग में तुलसीदास हुए उस युग में केशवदास भी हैं, लेकिन उसको हम भक्तिकाल इसलिए कहते हैं कि तुलसीदास के आगे लोग केशवदास को भूल गए। तुलसीदास, सूरदास के बाद जो रीतिवाद आया, उसे पढ़ने पर आप पाएंगे कि रीतिवादी भक्त होने का भी दावा करते हैं। हम उनको भक्त के रूप में गंभीरता से नहीं लेते किंतु यह हम नहीं कह सकते कि उस समय भक्ति की कविता नहीं लिखी गई। भक्ति की कविता लिखी गई किंतु वह उभरकर आगे नहीं आई। उनमें कोई ऐसा बड़ा भक्त नहीं हुआ जिसको हम कहते कि वह प्रतिनिधि भक्तकवि है। उस समय ऐसी कविताएं लिखी गईं जो न तो भक्ति की कविता थी न दरबारी। सभी धाराएं समानांतर चलती रहीं।

रीतिवादी उत्थान का एक कारण यह है कि सत्रहवीं सदी में औरंगजेब के समय और उसके बाद यहां पर व्यापारिक पूंजीवाद के विकास में थोड़ा-सा धक्का लगा। औरंगजेब ने जो धर्मांधता की नीति चलाई उससे पुरोहितवाद मजबूत हुआ। यह मुसलमानों में मजबूत हुआ और एक हद तक हिंदुओं में भी मजबूत हुआ। अलंकरण की प्रकृति सामंतवाद की विशेषता है जो कि वस्तु का सार तत्व ग्रहण नहीं करती, स्थापत्य का सौंदर्य नहीं देखती। मकान कैसा बना है, उसके अवयवों की संगति कैसी है उसमें अन्विष्टि कैसी है, इस पर वे ध्यान नहीं देते। किंतु उसमें पच्चीकारी कैसी है, महाराबों कितनी खूबसूरत बनी हैं, इन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। जैसे स्त्रियां गहने पहनती हैं, चाहे शरीर अच्छा हो या न हो, स्वस्थ हों चाहे न हों। सत्रहवीं सदी के अंत में और अठारहवीं सदी के आरंभ में ये प्रवृत्तियां आईं। अठारहवीं सदी में एक तरह से रीतिवाद का पुनरुत्थान हुआ जिसका बहुत बड़ा कारण है—औरंगजेबी केंद्रीय शासन तंत्र का विघटन। केंद्रीय शासन का तंत्र जब विघटित होगा सड़कों की रक्षा कौन करेगा, व्यापार का माल यहां से वहां जाता है, वह सब कैसे जाएगा? तब छोटे-छोटे जमींदार और जागीरदार अपने पांव खोलने लगे और अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। पहले बादशाह को माल पहुंचा देते थे। अब कहते हैं कि यह रियायत हमारी है और हम ही उसके मालिक हैं। यह सारा परिवर्तन अठारहवीं सदी में हुआ। यह रीतिवाद के पुनरुत्थान

का सामाजिक आधार है किंतु यह रीतिवादी वीरगाथा काल रीतिवाद से भिन्न है और भिन्नता का कारण यह है कि बीच में भक्तिकाल आ गया। भिन्नता इस प्रकार है कि किसी चारण कवि की भाषा बिहारी तथा मतिराम की भाषा को मिलाकर देखें तो रीतिवादियों का भाषा के परिष्कार पर बड़ा जोर है कि भाषा सीखी कहां से? किंतु सूरदास अथवा भक्तिकाल में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। सूरदास की ब्रजभाषा के बिना बिहारी, मतिराम आदि अपनी ब्रजभाषा लिख ही नहीं सकते। पुराने रीतिवाद और नए रीतिवाद में अंतर यह है कि बीच में नवजागरण का युग, लोक जागरण का युग आया। उसने बोलचाल की ब्रजभाषा के आधार पर साहित्यिक ब्रजभाषा का निर्माण किया। उसको आधार बनाकर नया रीतिवाद चलाया—यह दोनों में अंतर है।

वीरगाथाकालीन दरबारी साहित्य में और रीतिकालीन दरबारी साहित्य में क्या अंतर है? क्या इनकी कोई प्रगतिशील भूमिका भी है?

उनकी प्रगतिशील भूमिका निरपेक्ष रूप में तो नहीं है किंतु सापेक्ष रूप में है। सापेक्ष रूप में पहले तो सही है कि जो पहला अर्थात् डिंगल भाषा प्रधान रीतिवाद है वह विशेष रूप से भाषा की दृष्टि से बहुत ऊबड़-खाबड़ है और उसमें यथार्थवादी तत्व बहुत कम हैं, अतिशयोक्तिपूर्ण बहुत अधिक। अतिशयोक्ति यहां भी है किंतु संयत है। रीतिकालीन दरबारी साहित्य की भाषा इनसे अधिक साफ-सुथरी है। दूसरी बात यह है कि भारत का और विशेषतः हिंदी का जो रीतिवादी साहित्य है, वह कहीं-न-कहीं देहात से जुड़ा हुआ है। उर्दू का गज़ल साहित्य नगरों की देन है और नगर आज की तरह के औद्योगिक केंद्र नहीं हैं, बहुत बड़ी व्यापारिक मंडियां नहीं हैं। नवाबी संस्कृति वहां भी हावी है जैसे हैदराबाद या रामपुर या भोपाल या इंदौर या एक हद तक दिल्ली। यह एक सीमित दायरे की संस्कृति है, जो देहात से कटी हुई है। यदि आपसे कहा जाए कि गज़ल में लोक संस्कृति वाला तत्व ढूँढ़िए, तो जायसी में आपको यह मिल जाएगा। उसका कारण यह है कि हिंदी का रीतिवादी साहित्य उर्दू के रीतिवादी साहित्य की तुलना में देहात से जुड़ा है। इसलिए शुक्ल जी ने लिखा है कि पद्माकर बड़े अच्छे कवि थे, अगर वे दरबार में न जाते तो उनकी कविता और अधिक निखरती। उनके अंदर एक कवि की भावना थी। आजीविका के लिए और उस समय के परिवेश के कारण उन्हें दरबार की शरण लेनी पड़ी। यह उनकी सीमित प्रगतिशील भूमिका है कि एक सीमा तक लोक संस्कृति से जुड़े हुए हैं। तो इसका तात्पर्य यह नहीं है वे राजा के ऐसे चाटुकार हैं कि उन्हें देहात दिखाई ही नहीं देता, लोक संस्कृति दिखाई ही नहीं देती। एक सीमा तक सामंजस्य बनाए हुए हैं। केशवदास और पद्माकर की तुलना करें अथवा केशवदास और मतिराम की तुलना करें तो हम पाएंगे कि केशवदास में रीतिवाद काफ़ी भौंडे रूप में आता है। भाषा की दुरुहता उसमें है। पद्माकर का काव्य साफ-सुथरा रूप है और कहीं-कहीं बहुत अच्छी ठोस कविता उनके काव्य में देखने को मिलती है। पंतजी ने रीतिवादी कवियों को खूब पढ़ा है। उनके पल्लव में जो पद लालित्य है, वह रीतिवादी कविता की देन है—*धूम धुआरे काजल करे, हम भी विकारों बादल*—ऐसी हिंदी पहले किसी ने नहीं लिखी और यह हिंदी की रीतिवादी ब्रजभाषा की कविता से मिलती-जुलती है। इससे पता चलता है कि कहां हम सोच रहे हैं और क्या हम लिख रहे हैं। यह उसकी प्रगतिशील भूमिका है।

रीतिकाल में जो उर्दू कविता लिखी गई और उस समय जो हिंदी साहित्य लिखा गया उनमें आप किसे अधिक प्रगतिशील मानते हैं? हिंदी के रीतिबद्ध काव्य के समानांतर उर्दू का जो साहित्य चल रहा था—उनमें आप क्या समानता या अंतर पाते हैं? किसे आप लोकसंस्कृति के अधिक निकट पाते हैं?

उर्दू कविता में जितना हम उसके प्राचीन रूप की ओर जाएंगे, उतना ही उसमें फ़ारसी-अरबीपन कम मिलेगा। यहां तक कि शाह आलम आदि दिल्ली के रहने वाले कवियों की कविताओं में ब्रजभाषा की शब्दावली का प्रयोग किया गया है क्योंकि उस समय ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक था और अरबी-फ़ारसी का कम। यह पुरानी उर्दू कविता की विशेषता है। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में उर्दू का जो गद्य लिखा गया था उसमें भी उर्दू के लेखक ब्रजभाषा के दोहे व सवैये उद्धृत किया करते थे। हम कल्पना नहीं कर सकते कि आज उर्दू का कोई गद्य लेखक अपने गद्य में ब्रजभाषा के दोहों का उपयोग करे, किंतु यह चलन उन्नीसवीं सदी के आरंभ में बना हुआ है। ग़ालिब के समय से काव्य की भाषा गद्दी जाने लगी जैसे 'आख' शब्द है तो 'आख' नहीं 'चश्म' बोलना चाहिए। इसी प्रकार 'आंखू' शब्द कविता के लिए उपयुक्त नहीं है, 'अश्क' उसके लिए इस्तेमाल होना चाहिए। इस प्रकार एक प्रकार की कृत्रिम भाषा का निर्माण होने लगा। लोग समझने लगे कि यह गंगा-जमुनी संस्कृति है जो हिंदू-मुसलमानों के मेल से बनी है। वास्तव में यह दरबार की देन है और दरबारी आदमी ऐसी भाषा बोलना चाहता है जो बड़ी शिष्ट हो और आम आदमी की भाषा से अलग हो। विशेष रूप से देहाती जनता से अपने-आपको अलग रखने की यह दरबारी प्रवृत्ति उर्दू में ज्यादा दिखाई देती है—हिंदी में कम। हम रीतिकालीन हिंदी कविता को उर्दू की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील मानेंगे।

भक्ति आंदोलन के उद्भव अथवा प्रारंभ के क्या कारण हैं?

इसके लिए यदि दक्षिण भारत को देखें तो इन सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा। भक्ति तो द्रविड़ों की देन है। द्रविड़ प्रदेश में मुसलमानों का राज नहीं था। तो सवाल उठता है कि तमिल भाषा में भक्ति साहित्य क्यों रचा गया, तमिलनाडु में आगरा और दिल्ली से पहले व्यापारिक मंडियों का विकास हुआ। मदुरई इनका बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र था। इसका परिणाम यह है कि आज बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में सबसे पुराना साहित्य तमिल का है। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की तमिल भाषा और आज की तमिल भाषा में बहुत फर्क नहीं है। अर्थात् प्रत्येक आदमी जो आज की तमिल भाषा को जानता है वह उस समय की तमिल को पढ़कर समझ लेगा, इतनी निरंतरता है इस भाषा में। तो तमिलनाडु की विशेष परिस्थितियां व्यापारिक पूंजीवाद वाली परिस्थितियां हैं। उनको ध्यान में रखना चाहिए। सामंती खोल में व्यापारिक पूंजीवाद का विकास हुआ। पहले सिर्फ ज़मींदार और किसान थे। अब कारीगर भी हैं और व्यापारी भी। कारीगर के बिना व्यापारी माल खरीदेगा कहाँ से एवं बेचेगा कहाँ? व्यापारी और कारीगर इन दोनों का उद्भव लगभग एक साथ हुआ। व्यापारिक पूंजीवाद में जिस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न हुईं, उनसे वित्त का चलन हुआ, उससे किसानों को थोड़ा करवट लेने का मौका मिला। अभी तक ज़मींदार पूरी तरह से उस पर हावी थे किंतु अब ज़मींदार का एक प्रतिद्वंद्वी आ गया। वह उसकी जागीर का हक मांगने को तैयार था। यदि जागीर के हक मांगे तो उसका व्यापार सीमित हो जाएगा। जब तक आप खाने-खर्चने के लिए थोड़ा-सा बनियों वाला सौदा इधर-उधर करते हैं तब तक तो वह चलता है किंतु जहां पर आपने बाज़ार को फैलाना शुरू किया वहीं पर यह सामंती विघटन इसके आड़े आता है। सामंतेवाद से व्यापारिक पूंजीवाद की टक्कर होती है। वह कभी उग्र संघर्ष का रूप लेती है तो कभी सांस्कृतिक संघर्ष के रूप में सामने आती है किंतु यह टक्कर होती अवश्य है। इस टक्कर से दो वर्ग लाभ उठाते हैं—एक कारीगरों का वर्ग, दूसरा किसानों का। यह भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि है। यह कार्य सबसे

पहले दक्षिण तमिलनाडु में हुआ। इसलिए भक्ति आंदोलन वहां पर पहले शुरू हुआ। शूद्र सबसे निम्न व दलित हैं, भक्ति आंदोलन का सूत्रपात सबसे आगे बढ़कर वही करते हैं। उत्तर भारत में ही नहीं दक्षिण भारत में भी भक्ति आंदोलन का सूत्रपात शूद्रों ने ही किया। कबीर से पहले रामानंद ने बहुत बड़ी क्रांति की—इस बात को नहीं भूलना चाहिए। रामानंद ब्राह्मण थे और उन्होंने इस बात का प्रण किया कि खान-पान में यह जो भेद है कि शूद्र का खाना नहीं खाएंगे—यह बात खत्म होनी चाहिए तथा शूद्र को ब्राह्मण भिक्षा नहीं देगा, यह बात भी ग़लत है। इसके बाद कबीर आए। इस वर्ण-भेद पर आधारित समाज में, वर्ण का आधार है—जन्म और वर्ग का आधार है—कर्म। यदि आप कारीगर हैं तो कारीगर कोई वर्ण नहीं—यह आपका पेशा है। आप किसान हैं तो किसान जन्म से कोई जाति नहीं, किसानों एक पेशा है और किसान एक वर्ग है। तुलसीदास कहते हैं—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली

बनिक को बनिय न, चाकर को चाकरी

इनमें दो पर ध्यान दीजिए 'बनिक को' और 'किसान को'। वर्ण व्यवस्था टूटती है और वर्ग व्यवस्था बनती है। वर्ण व्यवस्था की विशेषता यह है कि वह जन्म पर आधारित है। आप क्षत्रिय हैं और ज़मींदार हैं तो आपका बेटा ज़मींदार होगा। यदि बेटा ज़मींदार नहीं रह गया तो वर्ण व्यवस्था टूटी कि नहीं? इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था टूटनी शुरू होती है। भारतीय साहित्य में सबसे मज़ेदार है—कलियुग। कलियुग का रोना लोग क्यों रोते हैं? क्योंकि वर्ण व्यवस्था टूट रही है। वर्ण व्यवस्था का टूटना तो वे देख रहे हैं किंतु क्यों टूट गई यह उनकी समझ में नहीं आ रहा। टूट इसलिए गई कि वित्त का चलन प्रारंभ हो गया। जन्म से जो अभिजात्य है, उसकी जगह दूसरा आदमी आ गया वित्त के कारण जो उससे श्रेष्ठ है। वित्त जन्म के ऊपर अथवा अभिजात्य के ऊपर हावी हो गया। वित्त ने बड़ी क्रांतिकारी भूमिका अदा की है। वह इन पुराने संबंधों को तोड़ रहा है। वर्ण-व्यवस्था टूट रही है और उसकी जगह वर्ग-व्यवस्था कायम हो रही है। इस परिस्थिति में व्यापारी वर्ग, किसान एवं कारीगर साहित्य की बागडोर एवं प्रशासन संभालने लगे। जैसाकि बहुत कुछ इंग्लैंड का साहित्य लेकर देखने पर ज्ञात होगा कि उसमें किसान और कारीगर एक फ़ीसदी भी नहीं हैं। बड़ी मुश्किल से मिलेंगे और प्रसिद्ध नाम नहीं होंगे। क्रॉवेल के समय बहुत लोगों ने कविताएं लिखीं। वे सब कारीगर एवं किसानों के वर्ग से हैं किंतु उनके नाम इतिहास की पुस्तकों में हम पढ़ लेते हैं। वे कोई प्रसिद्ध कवि मिल्टन अथवा शेक्सपीयर के स्तर के नहीं किंतु उनका सीधा संबंध किसानों एवं कारीगरों से है। यह सामाजिक उथल-पुथल व्यापारिक पूंजीवाद के विकास की वजह से होती है। जागीरदारों-ज़मींदारों की शक्ति में जो थोड़ा-सा धक्का लगता है उससे किसान वर्ग लाभ उठाता है और यह बीच की परिस्थितियों पर निर्भर है, सांस्कृतिक विरासत पर निर्भर है तथा आर्थिक विकास के ऊपर निर्भर है कि किसान और कारीगर कितनी शक्ति से साहित्य में आए। मेरा दावा यह है कि 16वीं सदी में जितनी शक्ति से भारत के किसान और कारीगर कश्मीर से लेकर तमिल तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक साहित्य में आए हैं, उतनी शक्ति से दुनिया की किसी भाषा में नहीं, किसी दूसरे देश में नहीं। इसका बहुत बड़ा कारण एक तो हमारी सांस्कृतिक परंपरा है। महाभारत और रामायण की परंपरा है जो आदमी से कहती है—लड़, झुककर बर्दाश्त न कर और दूसरी ओर हमारा व्यापारिक पूंजीवाद है, हमारा आर्थिक विकास जिसकी वजह से इंग्लैंड का आदमी यहां का माल खरीदने के लिए आता है, अपना माल यहां बेचने के लिए नहीं आता। ये दो तथ्य हैं जो इस बात को निर्धारित करते हैं कि हमारे यहां किसान

और कारीगर अधिक शक्ति के साथ हमारे साहित्य में प्रवेश करते हैं। यह ऐसा लोकजागरण काल है। कहां पर प्रचलित लोकोक्तियां समाप्त होती हैं तथा कहां पर तुलसीदास की लोकोक्तियां उनका स्थान ले लेती हैं, कोई इसकी सीमा निर्धारित नहीं कर सकता। लखनऊ में हमारे घर के पीछे एक मुसलमान परिवार रहता था। वहां सास और उसकी बहू में रोज झगड़ा होता था और वह तुलसीदास के दोहे सुनाया करती थी। तुलसीदास घर-घर में व्याप्त हैं। यहां तक कि मुसलमानों के घर में भी भी व्याप्त थे। लोकोक्तियों के रूप में लोग उनकी चौपाइयों का, दोहों का प्रयोग करते हैं—यह हमारे यहां की विशेषता है।

भक्ति का आधार वे किसान और कारीगर हैं जो अपने जीवन की परिस्थितियों से असंतुष्ट हैं, जो पुराने सामंती बंधनों से असंतुष्ट हैं, इनको तोड़ना चाहते हैं लेकिन चूँकि वर्ग संगठित नहीं है, वर्ग पूरी तरह निर्मित नहीं है, इसलिए इनका साहित्यिक सौंदर्य सांस्कृतिक रूप में भारतवर्ष में भक्ति का रूप लेता है और मनुष्य मात्र की समानता की घोषणा करता है। मनुष्य मात्र की समानता की घोषणा—यह भक्ति आंदोलन का मूल सूत्र है। तुम भले कुल में पैदा हुए इसलिए राम के भक्त अधिक हो गए—भक्ति आंदोलन यह मानने के लिए तैयार नहीं। अभिजात्य का निश निषेध—यह भक्ति आंदोलन की विशेषता है। अतः दक्षिण भारत, विशेषतः तमिलनाडु से इसकी शुरुआत होती है। तमिलनाडु से इसकी शुरुआत क्यों होती है? इसका कारण है व्यापारिक पूंजीवाद का विकास सर्वाधिक वहां हुआ था। मात्र मदुरई को केंद्र बनाकर इसका इतिहास पढ़ें तो सारे भारत का इतिहास नए ढंग से दिखाई देगा। लोग भारत के इतिहास को भी खंडशः पढ़ते हैं। एशिया और यूरोप के साथ मिलाकर तो पढ़ते ही नहीं किंतु तमिलनाडु के इतिहास को जानना आवश्यक है। उत्तर भारत में कहां हमने क्या पाया और कहां क्या नहीं पाया यह समझने के लिए तमिलनाडु का इतिहास जानना जरूरी है। लोग समझते हैं कि अपभ्रंश से हिंदी पैदा हुई। तमिल इतनी जल्दी पैदा हुई, मलयालम क्यों इतने विलंब से पैदा हुई। मलयालम में 14वीं सदी में साहित्य रचा गया।

भक्ति आंदोलन को शुक्ल जी हताश मनोवृत्ति का परिणाम मानते हैं। क्या यह सही है?

शुक्ल जी ने स्वयं इसका खंडन किया है। शुक्ल जी ने अकबर के समय के लिए कहा है कि वह स्वर्णयुग था। अकबर की कुछ भी इच्छा रही हो, परंतु उसके ज़माने में सत्साहित्य रचा गया। शुक्ल जी में बहुत अंतर्विरोध है। उसमें एक अंतर्विरोध यह भी है। यहां पर हताश मनोवृत्ति वाली बात को पकड़ लिया गया। अकबर के काल को प्रशंसात्मक ढंग से उन्होंने लिया। कहीं यह नहीं लिखा गया कि अकबर दमन कर रहा था और उसके विरोध में तुलसीदास खड़े हुए। मलिक मोहम्मद जायसी और तुलसीदास की व्याख्या में मुसलमानों द्वारा फैलाई गई हताशा है कहां? इतिहास लिखते समय सामाजिक कारण देना चाहिए, इतना शुक्लजी मानते हैं तथा सामाजिक कारण ढूंढते भी हैं, शुक्ल जी की महत्ता इस बात में नहीं है कि वह सामाजिक कारण ढूंढ लाए हैं जो वास्तव में ग़लत है। उनकी महत्ता इस बात में है कि जब वे जायसी एवम् तुलसीदास का विवेचन करते हैं तब सामाजिक अंतर्विरोध उनको दिखाई देते हैं।

अधिकांश भक्तिकालीन कवि किसी-न-किसी संप्रदाय में दीक्षित होने के बावजूद संप्रदाय की कट्टरता और सीमाओं से ऊपर उठकर लोकसामान्य की भावभूमि पर पहुंचे। इसके लिए कौन-सी परिस्थितियां एवं कारण उत्तरदायी थे?

इसके लिए परिस्थितियां यह थी कि जो उद्योग-व्यापार था वह

भारतीयों के हाथ में था और वहां पर विभिन्न संप्रदायों और मतों के लोग मिलकर काम न करें तो काम न चले। दो बड़े धंधे थे—खेती का धंधा और कपड़ा बनाने का धंधा, माल बेचने का धंधा (किसान और कारीगर)। व्यापार और कृषि दोनों में विभिन्न संप्रदायों का मिलकर काम करना आवश्यक था। यह भौतिक आधार था जो संप्रदाय की कट्टरता, सीमा को तोड़ता है। पूजा-उपासना में किसी देवता को आपको लेना ही पड़ता है किंतु आप अक्सर यह देखेंगे और इसे विद्यापति ने भी लिखा है कि शिवजी विष्णु का रूप धारण करते हैं। तुलसीदास ने भी लिखा है कि शिवदोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहुं नहीं भावा। आपको तमिलनाडु में ऐसे अनेक मंदिर मिलेंगे जहां विष्णु और शिव की प्रतिमा एक साथ एक ही मंदिर के अंदर है। जैसे ही व्यापार की प्रगति होगी और लोग मिलकर काम करना शुरू करेंगे, उतनी ही सांप्रदायिक कट्टरता टूटेगी और लोग उस कट्टरता के विरुद्ध विद्रोह करेंगे। उनके देवी-देवता एक-दूसरे के नज़दीक आएंगे। बंगला में और सिंधी में ऐसे काव्य लिखे गए हैं कि उसमें मुसलमानों के पीर और लीला और हिंदुओं के देवी-देवता हैं। दोनों मिलकर एक ही साथ काव्य में आए हैं। तो वहां सांप्रदायिक कट्टरता नहीं है, इसका कारण ये परिस्थितियां हैं।

मध्ययुगीन धर्मसाधना का क्या स्वरूप था?

यदि हम मध्ययुग मानते हों, तो वह लोकजागरण का युग था। उसमें धर्म की साधना का मूल स्वरूप यह है कि सारे देवी-देवता मनुष्य के भीतर हैं। महाभारत का सूत्र है कि 'धर्मस्य तत्त्वनिहित गुहायां...' धर्म का तत्व तो गुफा के अंदर खोया हुआ है और किसने उसे देखा है? मूल बात तो यह है कि मनुष्य से बढ़कर कोई नहीं। तो सब मनुष्य समान हैं। सभी देवी-देवता मनुष्य के भीतर हैं—धर्म साधना का मूल स्वरूप यह है। उसमें आप हठयोग करते हैं, प्राणायाम करते हैं, राम नाम जपते हैं अथवा चुपचाप पड़े रहते हैं। इससे कुछ आता जाता नहीं। धर्म साधना की जो औपचारिकताएं हैं, उसका निषेध भक्ति आंदोलन की मूल बात है। जहां औपचारिक धर्म-साधना का निषेध नहीं है, वह सत्साहित्य नहीं है तथा वहां पर भक्ति नहीं है। भक्ति का मतलब ही यह है कि वह आपको धर्म की औपचारिकता से मुक्त करे।

तुलसीदास यह मानकर चलते हैं कि सगुण अगुण में कोई भेद नहीं है। ब्रह्म न सगुण है, न अगुण है। ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों का योग है। यह बात कबीर भी मानते थे और तुलसी भी मानते थे। कबीर जो गीत गाते थे, उसमें अपने साहब को याद करते थे, उसकी कहानी नहीं कहते, किंतु तुलसीदास अथवा सगुण भक्त अपने साहब को याद करते थे तथा उसकी कहानी भी कहते थे किंतु मूलतः दोनों वेदांती हैं और दोनों न तो सगुणवादी हैं, न निर्गुणवादी। दरअसल कबीर को ज्ञानमार्गी कहना ग़लत है। वस्तुतः निर्गुण, सगुण, ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी आदि भेद करना ग़लत है। वह भक्त कैसा जो प्रेममार्गी न हो—

का भाषा का संस्कृति, प्रेम चाहिए सांच

काम जो आवे कामरी का लें करें कमांच।।

संस्कृत के काव्यशास्त्र और धर्मशास्त्र की रूढ़ियों को तुलसीदास तथा अन्य संत कवियों ने तोड़ा। उन्हें कहा कि भाषा में हम कविता करेंगे।

कबीर भी यही कहते हैं कि भाषा बहता नीर है। धर्मशास्त्र को हटाकर प्रेम की प्रतिष्ठा करना, औपचारिक धर्म को हटाकर ईश्वर के प्रति प्रेम, मानव मात्र के प्रति प्रेम करना—यह भक्ति है। जायसी और कबीर प्रेममार्गी हैं और तुलसीदास भक्त हैं। इसलिए हमने सगुण-निर्गुण में विभाजित किया। प्रेममार्गी और अप्रेममार्गी में विभाजित किया। सब ज्ञानी हैं इसलिए कि वे शास्त्रज्ञान को नहीं मानते। ये आत्मज्ञान को मानते हैं। ये सब प्रेममार्गी हैं इसलिए

औपचारिकता के ऊपर ये सब प्रेम की प्रतिष्ठा करते हैं और ये सब सगुण मार्गी हैं। इसलिए, इनके मुंह से शब्द ही न निकले। ये किसी की बंदगी करते हैं। भक्ति का मतलब है कि कोई और है जिसके सामने आप सिर झुकाते हैं और यदि दूसरा कोई नहीं है तो सिर झुका किसके आगे? अतः पूर्ण अद्वैत नहीं, द्वैताद्वैत समझो। जितने भक्त हैं वे सब द्वैताद्वैतवादी हैं—अद्वैत में द्वैत। भक्त और भगवान दोनों एक हैं—कहियत भिन्न-न-भिन्न-एक-दूसरे से अलग हैं और एक-दूसरे में मिले हुए हैं। यही इनकी सामान्य विशेषता है। प्रेम के बाहर कोई कवि नहीं है। यह बात जानने की है। यही साधना का स्वरूप है।

भक्तिकाल में जितने संप्रदाय थे, उसके प्रमुख भक्त कवि जैसे कबीर, तुलसी आदि ने तो उसकी कट्टरता का अतिक्रमण किया किंतु जिन्होंने संप्रदाय बनाए उन्होंने अपने धर्म का इतना संस्थानीकरण क्यों कर दिया?

सारी दुनिया में यही होता आ रहा है। ईसामसीह ने कहा कि—‘सभी को क्षमा कर दो’। जितने ईसाई हैं उन्होंने कितना बड़ा साम्राज्य विस्तार किया। धर्म का दुरुपयोग करना पुराने आचार्यों की शिक्षा का अपने लिए इस्तेमाल करना—यह हमेशा निहित स्वार्थों का काम रहा है यदि आपके देश में दूसरों के श्रम बल को हड़पने वाले मौजूद हैं, पूंजीवादी मुनाफ़ाखोर हैं तो धर्म को व्यापार के रूप में क्या नहीं लेंगे? तो धर्म को बेचने वाले लोग उस समय भी थे आज भी हैं। कबीर-तुलसी आदि भक्त कवियों का लोकाधर्म मनुष्य के प्रेम पर जोर देता है। कोटि-कोटि जन्मों के बंधन जिससे बेचारे जीव मुक्ति न पाने के कारण तड़प रहे थे, कि कब मुक्त हों, इन्होंने कहा कि राम सुमिरन करो तो सब भव-बंधन कट जाएंगे। एक झटके से उन्होंने सारे भव-बंधन काट दिए जिन्हें विभिन्न दर्शन नहीं काट पाए। भक्तों के प्रेम की इतनी प्रगतिशील भूमिका है। मनुष्य में उन्होंने एक विश्वास जगा दिया कि प्रेम करो—तुम्हारे सारे बंधन कट जाएंगे।

जितने आचार्य थे (वल्लभाचार्य आदि), ये सब मनुष्य मात्र को एक जगह पर लाने वाले थे। आगे चलकर जो संप्रदाय के रूप में इकट्ठे होने लगे—विट्ठलदास द्वारा अलग, मथुरा के चौबे लोग अलग, तिरुपति अलग—तो यह खाने-पीने का धंधा हो गया। धर्म का संस्थायीकरण हो गया। धर्म एक धन कमाने का साधन हो गया। फिर संप्रदाय महत्त्वपूर्ण हो गया और मनुष्य का प्रेम—ये सब गौण बातें हो गईं।

परंतु इन सब आचार्यों को अलग-अलग मत चलाने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

इसलिए कि ये चीजें हमारे यहां शास्त्रीय आधार पर पहले से चली आ रही हैं। इन्होंने जो काम किया वह यह कि शास्त्रीय आधार पर जो चीजें अलग-अलग पड़ी थीं, उन्हें वेदों के आधार पर एक किया। वल्लभाचार्य के कृष्ण रामानंद के राम से मूलतः भिन्न नहीं हैं। ये सब लोग रूप-सौंदर्य के उपासक थे। सूरदास के कृष्ण रूप पर दीवाने हैं—कोटि मनोज लजावनहारे। तुलसीदास के राम भी बड़े सुंदर हैं। यह खूबसूरती की बीमारी इन लोगों को कैसे हुई? सब खूबसूरत के पीछे क्यों दौड़े? इसलिए कि सब लोकपरक कवि थे। कृष्ण बहुत पहले से चले आ रहे हैं। महाभारत और भागवत के कृष्ण पीछे छूट गए। सूरदास ने कृष्ण को नए रूप में लिया। तुलसीदास ने राम के रूप-सौंदर्य पर इतना लिखा कि वाल्मीकि के राम पीछे छूट गए। वह प्रतीक मात्र हैं, वह उसको नया रूप दे रहे हैं, तो जहां इस तरह का अलगाव दिखाई देता है, वहां देखना चाहिए कि वह सतह वाला अलगाव है अथवा गहराई वाला।

इस प्रकार इन आचार्यों का मूल उद्देश्य मनुष्य मात्र को जोड़ना था।

औपचारिक धर्म की जगह प्रेम की प्रतिष्ठा करना था। जहां उन्होंने देखा कि कृष्ण को भज रहे हैं तो उन्होंने कहा कि कृष्ण बड़े भारी प्रेमी थे। राम को भज रहे हैं तो कहा कि राम से बढ़कर प्रेमी जीव कोई नहीं। यही नहीं उन्होंने शिव को भी यही रूप दिया। कर्नाटक में शिव-भक्ति का बहुत योगदान है। जो शैव भक्त हैं, उनकी भक्ति का आधार भी यही प्रेम है। शैव भक्तों में शूद्र भी होते थे, ब्राह्मण भी। कोई भी प्रतीक हो—यही कारण है कि सूफी के यहां राम न होने पर भी वह भी उतना ही बड़ा भक्त है, जितना कि रामभक्त। प्रतीक अलग-अलग हैं। इस बात को हम इस प्रकार भी देख सकते हैं कि भारत में अलग-अलग भाषाएं क्यों बोली जाती हैं। आदि जन्मी तो संस्कृत ही है। यदि संस्कृत से बंगला पैदा हुई है और मराठी पैदा हुई है तो दो भाषाएं क्यों—एक ही भाषा होनी चाहिए। जैसे यहां पर सांस्कृतिक विविधता है वैसे ही धर्माचरण में भी विविधता है। धर्माचरण की विविधता में जो कट्टरता थी, उसे भक्तों ने आकर कम किया। उस कट्टरता को लोग भूल गए। यह कट्टरता उतनी नहीं थी, जितनी यूरोप के ईसाइयों में थी। प्रोटेस्टेण्ट रोमन कैथलिक का पुतला जलाते हैं तथा रोमन कैथलिक प्रोटेस्टेण्ट का। हमारे यहां कट्टरता तो थी किंतु कम थी। इस कट्टरता को भक्तों ने कम किया। उन्होंने संप्रदाय गढ़े नहीं, संप्रदाय पहले से ही चले आ रहे थे। उसको उन्होंने नया रूप दिया। बाद में इन्हीं के अनुयायियों ने इनकी कट्टरता को बनाए रखा, जैसे रीतिवादी का पुनरुत्थान हुआ। वल्लभाचार्य आदि ने सांप्रदायिक कट्टरता को तोड़ा। इसका एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि रामभक्त तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली की रचना की और सूरदास ने बड़े सूरसागर के आरंभ में राम कथा का वर्णन किया है।

क्या हम यह कह सकते हैं कि शंकर अद्वैत की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इन आचार्यों का आविर्भाव हुआ?

नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। शंकराचार्य भी व्यावहारिक रूप में इस संसार को सत्य मानते थे। भारत में दार्शनिक रूप से पूरा भाववादी दर्शन शायद शून्यवादियों ने ही विकसित किया—योगाचारियों ने। शंकराचार्य भी यह मानते थे कि व्यावहारिक दृष्टि से संसार सत्य है। अन्यथा हम तुम बात कैसे कर रहे हैं? भेद व्यवहार और परमार्थ का है। पारमार्थिक दृष्टि से संसार असत्य है। व्यावहारिक दृष्टि से संसार सत्य है—यह शंकराचार्य भी मानते हैं—अर्थात् सापेक्ष रूप से संसार सत्य है। बहुत से भक्त भी इसको मानते थे। जब उनकी मुक्ति हो जाएगी तो संसार नहीं रहेगा—उसे हम शंकराचार्य की प्रतिक्रिया नहीं कहेंगे। शंकराचार्य से अलग हटकर इन्होंने संसार की यथार्थता पर अधिक जोर दिया है। यथार्थ का बोध, लोक का महत्त्व, यह संसार महत्त्वपूर्ण है, यह संसार ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति है—यह बात शंकराचार्य ने इस प्रकार कही। इस पर इन लोगों ने इस बात पर बल दिया कि यह संसार कितना सुंदर है, कमल कितना सुंदर है, मनुष्य कितना सुंदर है। पिता-पुत्र के संबंध कितने मधुर हैं। कृष्ण का शैशव कितना सुंदर है—यह सारा सौंदर्य संसार के अंदर है तो संसार मिथ्या कैसे हो सकता है? तो संसार के सौंदर्य पर ही बल है। यह शंकराचार्य में नहीं है। संतों, भक्तों ने व्यवहार और परमार्थ को मिला दिया। यह काम रामानंद ने किया, रामानुज ने नहीं किया। ये शंकराचार्य का पूर्ण निषेध नहीं है। शंकराचार्य ने परमार्थ में वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण तिरस्कार किया वह उस समय के लिए आगे बढ़ा हुआ था। तो ये शंकराचार्य से और आगे बढ़ रहे हैं। शंकराचार्य के द्वारा बनाई गई ज़मीन के आधार पर ही आगे बढ़ रहे हैं।

शंकराचार्य ने व्यावहारिक दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था का विरोध क्यों नहीं किया?

वे केरल के रहने वाले थे। वहां इतनी प्रगति नहीं थी। वहां आज भी कट्टरपन है। शंकराचार्य के साथ शास्त्रीयता बहुत थी और वे पंडितों को समझाने की कोशिश कर रहे थे। पंडितों के साथ शास्त्रार्थ करते थे, बौद्धों का उच्छेद कर रहे थे। बौद्धों का उच्छेद करने के लिए पंडितों को अपने साथ लिया। जो हमारे भक्त कवि थे उन्होंने पंडितों को ठेंगा दिखाया। इन्होंने कारीगरों, किसानों को अपने साथ लिया। इसलिए शंकराचार्य के जागरण को हम 'लोक जागरण' नहीं कहेंगे। भक्तों के जागरण को हम 'लोक जागरण' कहेंगे। इसलिए कि वह लोक से सीधे जुड़कर उन्हीं की भाषा में उनसे बात करते हैं।

क्या कारण है कि प्रयोगवादी और नई कविता आदि काव्य-धाराओं के कवियों ने अपने काव्य की प्रेरणा अपनी पूर्ववर्ती आधुनिक काव्यधाराओं से ग्रहण न करके रीतिकालीन कवियों से ग्रहण की?

इसका कारण यह है कि यदि अपने पूर्ववर्ती प्रगतिशील कवियों से प्रेरणा ग्रहण करें तो इनको भी प्रगति के रास्ते पर चलना पड़ेगा किंतु इनको प्रगति के रास्ते पर नहीं, पीछे चलना है। साहित्य को समाज-निरपेक्ष बनाना, सीमित दायरे में बंद करना—यह काम एक हद तक पुराने रीतिवादी कवि कर गए थे। इसलिए प्रयोगवादियों एवं नई कविता के कवियों के मॉडल रीतिकालीन रीतिवादी कवि हैं। ये उसी रास्ते पर चलना चाहते हैं हालांकि रीतिवादी कवि भी इनकी अपेक्षा लोक संस्कृति से अधिक जुड़े हुए हैं। उनकी कविता सामान्य लोगों की समझ में आ जाती थी किंतु ये जो कविता लिखते हैं उससे अधिक व्याख्या करनी पड़ती है। पुराने रीतिवाद और नए रीतिवाद में यह अंतर है।

रीतिकालीन कवियों के नायिका-भेद और शृंगारिक वर्णनों में तथा प्रयोगवादी अथवा नई कविता के कवियों के नायिका केंद्रित काव्य में क्या अंतर और समानता है?

समानता यह है कि सांचे बने हुए हैं जैसे एक नायिका है तो उसके दो प्रेमी होंगे अथवा तीन प्रेमी होंगे अथवा एक प्रेमी है तो उसकी एक प्रेमिका होगी अथवा तीन प्रेमिकाएं होंगी। यहां स्वकीया-परकीया वाला भेद बहुत जोरों पर है। परकीया प्रेम ही श्रेष्ठ है। स्वकीया प्रेम कोई मूल्य नहीं रखता, यह काव्य का विषय नहीं बनता। स्वकीया प्रेम के विषय में न तो नायिका भेद के वर्णनों में, न प्रयोगवादी अथवा नई कविता में उल्लेख मिलता है। दूसरी बात यह है कि दोनों ही में नारी केवल नायिका के रूप में काव्य का विषय है। वह बहन, मां, दादी अथवा काम करने वाली कर्मठ स्त्री नहीं है। वह मूलतः भोग-विलास का आलंबन है। भोग-विलास के आलंबन के रूप में नारी को देखना—यह दृष्टि रीतिवादी कवियों की थी और प्रयोगवादी कवियों की है। तीसरी बात यह है कि चमत्कार और अतिरंजित एवं आलंकारिक वर्णनों पर वे भी अधिक बल देते हैं और ये भी अधिक देते हैं। उनके चमत्कार अब भी कुछ लोगों को पढ़ने में अच्छे लगते हैं किंतु इनके चमत्कार लोगों के मन में जुगुप्सा-भाव उत्पन्न करते हैं क्योंकि प्रयोगवादियों ने सार्व आदि की नकल करके घटिया उपमान रखे हैं। रीतिवादियों के उपमान कम-से-कम अलोकप्रिय हैं। पुराना रीतिवाद विदेशी संस्कृति (अमरीका के काव्य) से प्रभावित नहीं है। इनका काव्य अस्तित्ववाद से प्रभावित है। सिद्धांतहीनता, धुरीहीनता इनके काव्य की विशेषता है, ऐसा उन लोगों के साथ नहीं। सैद्धांतिक अराजकता यह हमारे प्रयोगवाद की विशेषता है। इनका कोई दार्शनिक आधार ही नहीं है। रीतिवादी काव्य राज्यश्रयी था और प्रयोगवादी काव्य बड़ी-बड़ी संस्थाओं, बड़े-बड़े सेठों के अधीन है। यदि बड़े-बड़े सेठों की पत्रिकाएं न हों तो इनकी कविताएं कहीं छपे नहीं।

हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग आप किसे मानते हैं और क्यों?

जिस युग में सबसे बड़ा कवि पैदा हो वही 'स्वर्णयुग' है। हमारे लिए तुलसीदास सबसे बड़े कवि हैं, जिस युग में वे पैदा हुए हैं, वहीं स्वर्णयुग है। निराला जी ने बड़ी शानदार कविता लिखी। निरालाजी जिस कवि को अपना गुरुवत मानते हैं और उन पर सबसे परिश्रम करके कविता लिखते हैं, उसको हम भी कहते हैं कि वे हिंदी के सबसे बड़े कवि थे। अन्य कुछ बातों में दूसरे कवि बड़े हो सकते हैं किंतु जहां तक लोक स्वीकृति का प्रश्न है, जनता ने किसको महाकवि के रूप में स्वीकार किया—वे तो तुलसीदास ही हैं। निराला उस तरह से नहीं पढ़े जाते और न पढ़े जाएंगे, जिस तरह से तुलसीदास। लोग कहते हैं कि *रामचरितमानस* तो धर्मग्रंथ है इसलिए अधिक पढ़ा जाता है किंतु धर्म के ऊपर तो तुलसीदास ने सारा साहित्य लिखा है लेकिन *गीतावली* क्यों नहीं पढ़ते अथवा *विनयपत्रिका* क्यों नहीं पढ़ते? इसलिए कि *रामचरितमानस* पढ़ने से जिस प्रकार के काव्य का आनंद उन्हें आता है, वैसा अन्य कृति को पढ़ने से नहीं। *रामचरितमानस* पढ़ते हुए लोग रोने लगते हैं। सुनने वाले गद्गद् हो जाते हैं। लोग रोने क्यों लगते हैं व गद्गद् क्यों हो जाते हैं। जब परशुराम और राम का संवाद होता है तथा रावण-अंगद संवाद होता है तो खूब हंसते हैं। वहां भक्ति का क्या काम? पुष्पवाटिका के प्रसंग को खूब रस लेकर सुनते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार के रस *रामचरितमानस* में हैं। उन्हें तुलसीदास ने कथा में बांधा है। कथा में काव्य का जो उत्कर्ष है, उसे जनता भले ही धर्म मानती है किंतु जब हम उसका विश्लेषण करते हैं, उसके भाव एक जैसे नहीं रहते। इसलिए जनता हंसती है, कभी गेती है, कभी जोश में उठकर खड़ी हो जाती है। ये जो विभिन्न भाव दर्शाए हैं, ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि तुलसीदास ने अपने काव्य में मनुष्य की विभिन्न भाव-दशाओं का चित्रण किया है। तो कथा का आनंद पढ़ने वालों व सुनने वालों को आता है। यह लोकस्वीकृति हिंदी के अन्य किसी कवि को नहीं मिली। इस मामले में तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे जिस युग में पैदा हुए वह युग स्वर्णयुग है।

जिस साहित्य से जनता जाग्रत हो, निर्धारण हेतु वह साहित्य मानदंड है। उच्चकोटि की होने पर भी कविता यदि कवि तक सीमित रहे अथवा चार आदमियों तक ही सीमित रहे—तो वह हमारी दृष्टि से महान नहीं है। हां, महत्ता वहां पैदा होती है जहां लोकहृदय और कविहृदय है, एक तारतम्य है। एक ही सूत्र से दोनों जुड़े हैं। अतः तुलसीदास की साहित्यिक संस्कृति और उस समय की लोक-संस्कृति ये एक-दूसरे के इतने नज़दीक हैं—जितना न उससे पहले कभी थे, न बाद में।

अब तक हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की आपकी दृष्टि में क्या उपलब्धि एवं सीमा रही है?

मैंने बहुत कम इतिहास पढ़ा है। एक शुक्लजी का पढ़ा है और दूसरा हजारी प्रसाद द्विवेदीजी का। द्विवेदीजी ने कोई नई मान्यता स्थापित नहीं की है, शुक्लजी की स्थापनाओं को ही दोहराया है। शुक्लजी की स्थापनाएं कुल मिलाकर सही हैं। जहां वे स्पष्ट नहीं कर पाए वे भी धारणाएं निहित हैं। उदाहरण के तौर पर उन्होंने फुटकल कवि लिए हैं। मेरी समझ में फुटकल कवि अलग नहीं आना चाहिए। भक्ति साहित्य और जिन्हें फुटकल कवि कहते हैं, दोनों को मिलाकर लोकजागरण का स्वरूप स्थिर होता है किंतु शुक्लजी ने रहीम के बारे में जो कुछ लिखा है, उसको ध्यान से पढ़ें। वे कहते हैं कि रहीम ने जो किया इस तुलसीदास के अतिरिक्त और किसने किया? वे रहीम को बराबर तुलसीदास से जोड़ रहे हैं किंतु चूंकि रहीम भक्त नहीं हैं, इसलिए रहीम को तुलसी से अलग मानते हैं। तो रहीम और तुलसी एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक युग के कवि हैं, दोनों लोकजागरण के कवि हैं। तुलसीदास की

सारी कविता भक्ति की कविता नहीं है, जैसे—आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की। यह विशुद्ध भक्तिकाव्य नहीं है। रहीम में यदि भक्ति नहीं है अथवा पूर्णतः भक्ति नहीं है, तो तुलसीदास की भी काफी कविता ऐसी हैं जो भक्ति से मुक्त है किंतु तुलसीदास पूर्णतः भक्त हैं—यह बात बिल्कुल सही है। एक लोकजागरण भक्ति के माध्यम से व्यक्त होता है और दूसरा भक्ति से अलग हटकर रीतिमुक्त ढंग से। लोकजागरण दरबार से अलग हटकर होता है, लोकसंस्कृति को आधार बनाकर होता है। तुलसीदास ने लोकसंस्कृति में भक्ति वाला तत्व पकड़ा। रहीम ने उसे छोड़ दिया। रहीम ने लोकसंस्कृति के धर्मनिरपेक्ष तत्वों को पकड़ा किंतु दोनों एक ही लोकजागरण के कवि हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शुक्लजी ने यह बात अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार की है। यह बात उनके साहित्य में बैठ गई कि रहीम और तुलसीदास में बहुत बड़ी समानता है। इससे जो निष्कर्ष निकालना चाहिए, वह हम नहीं निकालते।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान यह है कि शुक्लजी की बात जहां स्पष्ट थी, वह उन्होंने अस्पष्ट कर दी। शुक्लजी ने रीतिवाद का समर्थन नहीं किया। ये रीतिवाद का समर्थन करते हैं और थोड़ा-सा विरोध भी करते हैं। शुक्लजी ने अपभ्रंश के बारे में साफ लिखा है कि यह लोकभाषा नहीं है, किंतु ये लोकभाषा मानते हैं। मैं भी इसे लोकभाषा नहीं मानता।

शुक्लजी के इतिहास लेखन के बाद इतिहास लेखन परंपरा में मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। मौलिक परिवर्तन तभी हो सकता है जब आप सारे साहित्य के इतिहास को सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर नए सिरे से परखना शुरू करें। चाहे मार्क्सवाद के अनुसार समाज-व्यवस्था का विश्लेषण करें। वर्गों की पहचान आप पैदा करें तथा उसके आधार पर भारत के इतिहास को समझें। आप साहित्य के इतिहास को छोड़ दें। भारत का इतिहास जिन मार्क्सवादियों ने लिखा, किसी ने सही इतिहास नहीं लिखा। सब हिंदू-मुसलमान की इकाई मानकर चले। कोई भी इनमें हिंदी जाति, मराठी जाति, बंगला जाति—इनके निर्माण की समस्या को लेकर नहीं चलता। यदि अंग्रेजी राज्य कायम होने के पहले मराठी जाति नहीं थी, बंगाली जाति नहीं थी, तो बंगला भाषा कैसे बनी? बंगला भाषा किस समुदाय की भाषा है। उसका सामाजिक गठन क्या था? यह सवाल मार्क्सवादियों को करना चाहिए। इनके दिमाग में मार्क्स का एक सूत्र जमा हुआ है कि भारत ग्राम समाजों का देश है। अंग्रेजी राज से पहले यहां कोई प्रगति नहीं हुई। यदि कोई प्रगति नहीं हुई तो यहां स्वर्णयुग और कलियुग का प्रश्न ही नहीं उठता।

सही इतिहास लेखन के लिए खूब पढ़ना चाहिए। पहले भारत के सामाजिक इतिहास को समझना चाहिए। भारत के विभिन्न प्रदेशों के इतिहास को समझना चाहिए। प्रदेशों के आपसी संबंधों को समझना चाहिए।

क्या आप यह मानते हैं कि पूरे भारत के साहित्य में एक युग में एक ही प्रकार की समान प्रवृत्ति देखने को मिलती है?

अनेक समानताएं हैं और अनेक विषमताएं हैं। एक भारत ऐसा है जो सामंती ढांचे में नहीं आया—आदिवासियों का भारत, संथालों का भारत, गोंडा लोगों का भारत आदि। दक्षिण भारत में द्रविड़ प्रदेश में भी ऐसे इलाके हैं, जहां द्रविड़ भाषाएं बोली जाती हैं किंतु जो तमिलों, कन्नड़ों की अपेक्षा बहुत पिछड़ी हुई हैं, बिल्कुल आदिवासियों की भांति। यह आदिवासी भारत न जाने कब से चला आ रहा है, उसको हम लोग उपेक्षित कर देते हैं। दूसरा भारत आगे बढ़ी हुई जातियों का भारत है। उसमें भी सब जातियों का विकास एक-सा नहीं हुआ जैसे—कश्मीरी जाति। कश्मीरी जाति का उतना विकास नहीं

हुआ जितना बंगाली जाति का और तमिल जाति का हुआ। अतः जो जातीय विकास है, वह भी अलग-अलग स्तरों पर हुआ है। इसकी मोटी मिसाल है दक्षिण भारत में तमिल भाषा साहित्य का माध्यम दूसरी सदी ईसा पूर्व में बनती है और कन्नड़ साहित्य का माध्यम, नवीं शताब्दी ईसवी में अर्थात् ग्यारह सौ वर्षों के बाद बनती है और मलयालम चौदहवीं शती ई. में साहित्य का माध्यम बनती है। ऐसा क्यों होता है। इसलिए कि जातीय विकास की प्रक्रिया अलग है। इस जातीय विकास की प्रक्रिया के अंतर को समझना बहुत आवश्यक है। इन सब बातों पर ध्यान न देने के कारण जहां समानता ही नहीं है वहां समानता ढूँढ रहे हैं। भारतीय साहित्य में भारतीय एकता का बड़ा जोर है किंतु, एकता स्थापित करने के लिए हम सबको एक ही लाठी से हांक रहे हैं। इसलिए इस भेद को समझना बहुत आवश्यक है। कहां भेद है, कहां नहीं है, कहां विकास पहले हुआ, कहां विकास बाद में हुआ, कहां समानताएं हैं और कहां विषमताएं, कौन से आंदोलन अनेक प्रदेशों में फैले और क्यों? इस बात को जानना जरूरी है और विकास होने अथवा न होने के क्या सामाजिक कारण हैं—इनको समझना जरूरी है। भक्ति आंदोलन भी एक बहुत बड़ा सूत्र है। यह कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ है और गुजरात से लेकर बंगाल तक फैला हुआ है। भक्ति आंदोलन को ही आदमी सूत्र मानकर चले, तो भारतीय साहित्य की बहुत बड़ी सामान्य विशेषता को पकड़ सकता है। जो कार्य लोकजागरण में संस्कृत का साहित्य नहीं कर सका, वह कार्य अखिल भारतीय स्तर पर भक्ति साहित्य ने किया।

साहित्य के इतिहास-लेखन का आधार क्या होना चाहिए तथा इसका क्या स्वरूप होना चाहिए?

साहित्य के इतिहास लेखन का आधार समाज व्यवस्था का ज्ञान है। समाज व्यवस्था के ज्ञान के साथ उसकी साहित्यिक अभिरुचि भी होनी चाहिए। अधिकांशतः तुलसीदास को लोग पढ़ते हैं, उसमें सूत्र ढूँढते हैं—उन्होंने जाति-बिरादरी के बारे में क्या कहा? उनको इस प्रकार से बाधित कर दिया कि वे इन्हीं चीजों को ढूँढें। चरित्र निर्माण कैसा है, उसमें रस का विकास कैसे हुआ, उन्होंने यथार्थवाद का विकास कहां तक किया है—इन प्रश्नों की तरफ लोगों की दृष्टि नहीं गई। व्यक्ति की जब तक परिष्कृत रुचि नहीं होगी, तब तक वह साहित्य पढ़कर भी उसका मर्म नहीं समझेगा। जब मर्म नहीं समझेगा तो लिखेगा क्या? तो समाजशास्त्र की बहुत फूहड़ ढंग से इन्होंने दो-चार बातें इकट्ठी करके दी। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया, इन्होंने इसका समर्थन किया—उसके आगे वे कुछ नहीं कहते अर्थात् समग्रता नहीं है। साहित्य का प्रयोजन मनुष्य के संस्कार बनाना है। संस्कार बनाने में वह किस तरह की कारीगरी से काम लेता है, किस कला से काम लेता है, भाषा को कैसा रूप देता है—यह बात यदि आप नहीं समझेंगे तो आप साहित्य का इतिहास कैसे लिख सकते हैं। इसलिए साहित्य का इतिहास लिखने के लिए लोगों को भारतीय इतिहास का अध्ययन करना चाहिए; मार्क्सवाद का अध्ययन करना चाहिए, नए सिरे से बहुत-सी बातों के बारे में सोचना चाहिए, साहित्य पढ़ना चाहिए, देखना चाहिए कि साहित्य पढ़ने में उन्हें मज़ा आता है। यदि उन्हें आकर्षित करता है तो अवश्य उसका इतिहास लिख सकते हैं। आगे-पीछे यह काम अवश्य होगा किंतु अभी तो सुदूर-भविष्य की चीज़ जान पड़ती है।

क्या इसके लिए भाषा-विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है?

बिल्कुल आवश्यक है; इसलिए कि समाज की बहुत-सी ऐसी बातें जो इतिहास से मालूम नहीं होतीं, भाषाओं के इतिहास से ही मालूम होती हैं। भाषाओं के रूप में मनुष्य अपनी रचनात्मक क्षमता का जैसा परिचय देता है, वैसा परिचय और किसी तरह से नहीं देता। मनुष्य का अचेतन कैसे काम

करता है-यह भाषा से ही पता चलता है। भारत में विभिन्न परिवारों की भाषाएं बोली जाती हैं। कहीं इन्होंने सभा नहीं की कि आप अपनी भाषा का व्याकरण ऐसे लिखें, उनके अनुसार वाक्य-रचना करें। किन शब्दों को लेंगे व किनको छोड़ देंगे। सब कुछ अपने-आप होता जा रहा है, स्वतः पूर्ण रूप से होता जा रहा है। क्या महान भाषाएं इनकी हैं। क्या उनकी अभिव्यंजना क्षमता है। यह भारतीय चेतना कैसे-कैसे व्यंजित होती है। हमेशा सचेत रूप में नहीं व्यंजित होती। जनता की अवचेतना भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति होता है। क्या द्रविड़ भाषाएं, क्या कोल भाषाएं और क्या नाग भाषाएं-किसी भी परिवार की भाषा लें, सभी का सिन्टैक्स एक जैसा है। ये सब कर्ता से शुरू होती है और क्रिया में समाप्त होती यूरोप की भाषाओं में यह बात नहीं है। जर्मन और अंग्रेजी तक का सिन्टैक्स एक ढंग का नहीं है, जो कि एक परिवार की भाषाएं हैं। यूरोप में भाषाओं का आदान-प्रदान इतना ज्यादा हुआ हो कि उनकी वाक्य-रचना एक-सी हो गई हो-यह वहां नहीं अपितु हमारे यहां हुआ है। अतः हमारे यहां राष्ट्रीयता का विकास हुआ और यूरोप में राष्ट्रीयता का विकास नहीं हुआ-यह बात भाषा-विज्ञान के बिना आप कैसे पकड़ सकते हैं।

दर्शन का अध्ययन बहुत जरूरी है इसलिए कि भारत में दर्शनशास्त्र में जितनी स्वच्छंदता और यथार्थवाद की जैसी मजबूत प्रतिष्ठा है, वैसी यूरोप

में नहीं। लोग समझते हैं कि यूरोप में धर्म का बड़ा बोलबाला है। धार्मिक कट्टरता जितनी यूरोप में रही उतनी हमारे यहां नहीं रही। अंग्रेजी राज में और उसके बाद क्या हुआ-उसको आप छोड़ दीजिए अठरह सौ के पहले की हम बात कहेंगे जब सुकरात को जहर दे दिया गया था। सुकरात से लेकर गैलिलियो तक इनके यहां स्वाधीन चिंतन के लिए कितने ही लोगों को परेशान किया गया और उनकी जान तक ले ली गई। हमारे यहां यह चीज नहीं है। इसलिए आप शंकराचार्य को मानें चाहे न मानें-यहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। यहां पर नास्तिक भी अपनी बात कह सकता है और आस्तिक भी अपनी बात कह सकता है। इस दर्शन को छोड़कर आप साहित्य का अध्ययन कैसे कर सकते हैं। फिर साहित्य में जो यथार्थवाद है वह कहीं-न-कहीं हमारे सब बड़े कवियों को प्रभावित करता है। यह बात हम यूरोप के साहित्य के लिए नहीं कह सकते। यूरोप के समाज का अध्ययन एवं भारतीय इतिहास का अध्ययन, यूरोप के दर्शन का अध्ययन और भारतीय दर्शन का अध्ययन और यूरोप के साहित्य तथा भाषाओं का अध्ययन और भारत के साहित्य तथा भाषाओं का अध्ययन-ये सारे काम करो, तब भारत का नया चित्र दिखाई देगा।

महान भारतीय आलोचक-विचारक

पृष्ठ 30 से आगे

उनके और केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों का संग्रह है, जो भारतीय साहित्य में ही नहीं संभवतः विश्व के पत्र-साहित्य में भी अकेला है। रामविलास जी का पत्र-साहित्य अलग से अध्ययन का विषय है। 'तीन महारथियों के पत्र' (1997) कवियों के पत्र (2000) और अमृतलाल नागर के पत्र 'यत्र पुष्पं तथास्तु' हैं। *समालोचक* पत्रिका के वे संपादक थे, जिनके 24 अंक चार खंडों में (2002) प्रकाशित हो चुके हैं। वे केवल साहित्य और संस्कृति के आलोचक नहीं हैं। *गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएं* (2000) उनकी प्रमुख पुस्तक है। भारतीय साहित्य, भारतीय भाषा, भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास से जुड़े अनेक प्रश्नों पर उन्होंने जो विचार किए हैं, वे आज हमारे लिए कहीं अधिक उपयोगी हैं।

रामविलास शर्मा का अर्थशास्त्रीय लेखन और चिंतन है, जिस पर कम ध्यान दिया जाता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर उन्होंने विस्तारपूर्वक विचार किया है। वे अपने समय और समाज के विविध प्रश्नों से टकराते रहे। उनका समय और समाज हमारा समय और समाज है। सभी दलों पर उनके विचार प्रकाशित हैं-*साक्षात्कार : डा. रामविलास शर्मा से बातचीत* (1986), *मेरे साक्षात्कार* (1994) और *आज के सवाल और मार्क्सवाद* (2001) तीन खंडों में प्रकाशित उनकी आत्मकथा *अपनी धरती अपने लोग* (1996) उनके जीवन और विचार को समझने के लिए जरूरी है। सोवियत संघ के विघटन के बाद जब अनेक मार्क्सवादी पथच्युत हो गए, उन्होंने हमें बार-बार सचेत किया, यह बताया कि पूंजी के अभूतपूर्व केंद्रीकरण के प्रतीक विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष हैं। *भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद* (1992) का सातवां अध्याय 'पूर्वी यूरोप तथा सोवियत संघ में समाजवाद का विघटन और

तीसरी दुनिया' उन्होंने सोवियत संघ के विघटन के तुरंत बाद 1991 में लिखा। जब अधिकांश मार्क्सवादी निराश हो रहे थे, उन्होंने *आज की दुनिया और लेनिन* (1992) में साम्राज्यवाद का विवेचन करने वाले लेनिन के 1908 से 1916 तक के तेरह लेख संकलित किए और एक भूमिका लिखी। यह पुस्तक भी 1991 में तैयार हो गई थी। उन्होंने यह लिखा कि लेनिन के इन लेखों से "जनता के साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को संगठित करने में सहायता मिलेगी।" डा. शर्मा के सामने 1991 की 'नई आर्थिक नीति' थी। लगभग एक ही समय भारत और सोवियत संघ संकटग्रस्त क्यों हुआ? क्या यह मात्र संयोग था?"

औद्योगिक, महाजनी, इजारेदार और बहुराष्ट्रीय पूंजी के वे विरुद्ध थे। हेराफेरी वाली और अनुत्पादक पूंजी की उन्होंने सदैव आलोचना की। उनका अर्थशास्त्रीय चिंतन एकेंद्रिक नहीं है। उनकी इतिहास-दृष्टि मार्क्सवादी है पर मार्क्स के सभी विचारों से वे सहमत नहीं हैं। विदेशी पूंजी को वे 'खतरे की घंटी' कहते हैं। साफ शब्दों में उन्होंने यह कहा कि भूमंडलीकरण का वास्तविक अर्थ विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के जरिए भारत को पुनः गुलाम बनाना है। पूंजी के निर्यात के साथ संस्कृति के निर्यात पर उन्होंने ध्यान दिलाया। इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया के जरिए भारत में फैलाए जाने वाले ढेर सारे कचरे की बात कही और उदारीकरण की नीति को देश के भीतर होने वाले बम विस्फोटों से जोड़कर देखा। उनकी चिंताएं किसी भी कवि-लेखक, आलोचक-विचारक-चिंतक और राजनेता की चिंताओं से बड़ी थीं। ये देश और समाज से जुड़ी चिंताएं हैं। वे हमारे लिए सबसे अधिक जरूरी हैं। उनकी जन्मशती तमाम प्रश्नों से मुठभेड़ करने का अवसर है। □

संपर्क : 204, रामेश्वरम कॉम्प्लेक्स, साउथ ऑफिस पाड़ा, औरंगा, रांची-834002 (झारखंड)

ऊर्जस्वी रचनाकार

रमाकांत श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद की तहसील पुरवा के एक गांव ऊंचगांव सानी में 1912 में जन्मे सुविख्यात मनीषी, विद्वान साहित्यकार, मार्क्सवादी विचारक एवं चिंतक तथा साहित्य एवं साहित्येतर विषयों में मौलिक अवधारणाओं एवं निष्कर्षों के प्रस्थापक रामविलास शर्मा ने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी उर्वरा लेखनी से समृद्ध किया था। उनका अध्ययन-अनुशीलन सुविस्तृत और विशद था। साहित्य के अलावा इतिहास, अर्थशास्त्र, पुरातत्व, नृविज्ञान, भाषा विज्ञान आदि विषयों पर भी उनका दखल था। रामविलास जी ने यह सिद्ध कर दिया था कि रचनाकार को समझने के लिए समीक्षक की साधना से भी परिचित होना पड़ता है। इस संदर्भ में उनकी समीक्षा-कृति *निराला की साहित्य साधना* विचारणीय है।

रामविलास शर्मा की विद्वता, मनीषा, सृजनशीलता पर विचार करने की दृष्टि से उनके जन्म के क्षेत्र की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी ध्यान केंद्रित करना होगा। उनका जन्म ग्राम मध्य उत्तर प्रदेश के उस क्षेत्र के अंतर्गत है, जो बैसवारा के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र प्रारंभ से कलम और कृपाण का धनी रहा है। यहां के राना बेनी माधव और राव रामबख्श ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में बड़-चढ़कर भाग लिया था। इन दोनों रणबांकुरों ने बैसवारा की इंच-इंच धरती पर अंग्रेज़ सेनापति और उसकी विशाल सेना से टक्कर ली थी। बैसवारी लोकगीतों में इन दोनों शूरवीरों का उल्लेख हुआ है।

रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व, कृतित्व और मनोरचना पर बैसवारे के इतिहास, साहित्येतिहास और उसकी संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा था। बैसवारा राणा और राजा उपाधिधारी तालुकेदारों द्वारा शासित था। वहां के निवासी उनकी प्रजा थे। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में सामंती मनोवृत्ति का बोलबाला हुआ करता है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आम आदमी पारस्परिक सद्भाव एवं संवेदना से युक्त जीवन जीने लगता है। यही थी सामाजिक परिस्थितियां जिन्होंने रामविलास शर्मा की मनोभूमि में संस्कारों का बीजारोपण किया था वस्तुतः मार्क्सवाद की ओर उनका झुकाव इन्हीं गृहीत संस्कारों से सम्प्रेषित हुआ था। दीनों, दलितों और दमिती के प्रति सहानुभूति और संवेदना के वशीभूत होकर रामविलास मार्क्सवाद से जुड़े थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा *अपनी धरती : अपने लोग* में इस तथ्य को स्वीकार भी किया है। जब मानव कल्याण के हितार्थ किसी विचारधारा को किसी व्यवस्था से संयुक्त किया जाता है, तो उस व्यवस्था के विघटन के बावजूद वह विचारधारा तिलांजलि योग्य नहीं हो जाया करती है। सोवियत रूस के खंडित होने के बाद भी मार्क्सवाद के प्रति रामविलास शर्मा की आस्था ज्यों-की-त्यों बनी रही। परंतु वह हिंसात्मक दमन, तानाशाही, लौहआवरण और जनोद्गार को दबाने के विरोधी थे।

रामविलास शर्मा की रचनात्मक कालावधि में ऐसे भी लोग सृजनरत रहे हैं, जो मार्क्सवाद पसंद नहीं करते थे। विचारों का टकराव होता है। विचार व्यक्ति के संस्कारों से जन्मते हैं। सबके संस्कार अलग-अलग होते हैं, क्योंकि सभी एक जैसी परिस्थितियों एवं परिवेशों में न जन्म लेते हैं, न पालित-पोषित होते हैं। परंतु यदि कोई पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो जाए और त्रुटियों या कमियों की

खोज में लगकर किसी की महत्ता को घटाने में लग जाए तो वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त माना जाएगा। इसी पूर्वाग्रह के कारण रामविलास शर्मा पर एक मार्क्सवादी मिशनरी का आक्षेप लगाया जाता है। उनके विषय में कहा जाता है कि वह मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्टालिन के विचारों को आप्त वचन मानते रहे हैं। संभवतः इसी आक्षेप की पृष्ठभूमि में डा. रामविलास शर्मा का सतत लेखन है जो *मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य* एवं *'मार्क्स' मार्क्स, ट्राट्स्की और एशियाई समाज* जैसे ग्रंथों के रूप में सामने आया।

रामविलास शर्मा ने साहित्य ही नहीं, समीक्षा ही नहीं, इतिहास का भी गहराई से अध्ययन किया था। उन्होंने अपने अध्ययन से प्रसूत निष्कर्षों, अवधारणाओं और चिंतन धाराओं को लिपिबद्ध कर हिंदी के वाङ्मय में असाधारण अभिवृद्धि की। इतिहास और समकालीन परिदृश्य शृंखला की चार पुस्तकों में से *पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद* भी हैं। इसे कालजयी लोकप्रियता मिली है, क्योंकि इसमें इतिहास बोध की प्रस्तुति नितांत मौलिक है, गवेषणापूर्ण है, इसी कारण ज्ञानवर्द्धक भी है।

उद्भट गद्य लेखक के साथ ही रामविलास शर्मा कवि भी थे। उद्धृत है उनकी 'परिणति' शीर्षक कविता—

दुख की प्रत्येक अनुभूति में

बोध करता हूं कहीं आत्मा है

मूल से सिहरती प्रगाढ़ अनुभूति में।

आत्मा की ज्योति में, शून्य है न जाने कहां छिपा हुआ

गहन से गहनतर

दुख की सतत अनुभूति में

बोध करता हूं एक महत्तर आत्मा है

निविड़ता शून्य की विकास पाती उसी भांति

सक्रिय अनंत जलराशि से

करते दिन गहनतम इसी अनुभूति में

महत्तम आत्मा की ज्योति यह

विकसित पाएगी चिर परिणति महाशून्य में।

मार्क्सवादी रचनाकर्मी रामविलास शर्मा की उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों का आस्वाद प्रगतिवादी कविता के आस्वाद से बिल्कुल भिन्न है। वस्तुतः यह कविता उनके सुविस्तृत अध्ययन से उद्भूत अनुचिंतन का काव्यांकन है। अंग्रेज़ी के प्राध्यापक होते हुए भी रामविलास शर्मा ने अपने चिंतन, रूपांकन के माध्यम के रूप में हिंदी को अपनाया, उसका वरण किया। उनकी बहुमुखी प्रतिभा सर्जना अनेकानेक विधाओं में अभिव्यक्त हुई है। इससे हिंदी भाषा और साहित्य को पूर्णत्व उपलब्ध हो सका।

उनका अनुभव, अभुचिंतन और अनुमंथन अनवरत 2000 तक क्रियमाण रहा। इसी वर्ष वह यशःकाय हुए। उनके भीतर जो सूर्य था, जो ऊष्मा थी, उससे हिंदी-संसार आज भी प्रकाशित है। ऊर्जा स्वतः है। उनके विचार प्रवाह का वेग तीव्र से तीव्रतर होता गया। कभी भी मंद नहीं पड़ा। □

संपर्क : एल 6/96, सेक्टर-एल, अलीगंज, लखनऊ-226024

जातीयता और साम्राज्यवाद विरोध की निशानदेही करने वाले आलोचक

अवधेश

रामविलास शर्मा का हिंदी आलोचना में आगमन अपने प्रिय कवि निराला की रचनाओं की व्याख्या करने और उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में समझाने के क्रम में हुआ। यहां से शुरू करके उन्होंने अपनी सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना के द्वारा हिंदी साहित्य की पूरी परंपरा का मूल्यांकन किया और परंपरा के प्रगतिशील तत्वों की शिनाख्त की। उन्होंने हिंदी साहित्य के अलावा भाषा विज्ञान, इतिहास, दर्शनशास्त्र व संस्कृति के प्रश्नों पर विस्तार से लिखा। उनकी बहुत-सी स्थापनाओं पर विवाद भी खड़े हुए। लेकिन आज भी हिंदी आलोचना उन स्थापनाओं को नजरअंदाज नहीं कर सकती। उनसे सहमति या असहमति को न तो उनकी पूजा के रूप में देखा जाना चाहिए और न ही उनकी निंदा के रूप में। मार्क्सवादी आलोचना को बाद-विवाद के माध्यम से विकसित करने में उनका बड़ा योगदान है।

रामविलास शर्मा के पहले हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में हिंदी भाषा और जातीयता की पहचान मिलती है। लेकिन भाषा और साहित्य में जातीयता को एक अवधारणा के रूप में स्थापित करने का श्रेय रामविलास जी को ही जाता है।

रामविलास शर्मा ने हिंदी जाति की अवधारणा प्रस्तुत की। जातीय एकता की जरूरत पर बल देता हुआ पहला लेख एक बंगाली विद्वान श्यामाचरण गांगुली का 1911 के *मॉडर्न रिव्यू* में 'बंग-भंग' के प्रश्न पर प्रकाशित हुआ। रामविलास शर्मा के पहले हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में हिंदी भाषा और जातीयता की पहचान मिलती है। लेकिन भाषा और साहित्य में जातीयता को एक अवधारणा के रूप में स्थापित करने का श्रेय रामविलास जी को ही जाता है। उन्होंने अपनी कई पुस्तकों में हिंदी जाति और जातीय भाषा के रूप में हिंदी के गठन, निर्माण और विस्तार के बारे में विचार किया। जाति क्या है? राष्ट्र से इसकी क्या भिन्नता है? किन परिस्थितियों में यह निर्मित होती है? उसके मूल तत्व क्या हैं आदि ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनका विवेचन किए बिना जाति के निर्माण की प्रक्रिया को नहीं समझा जा सकता।

रामविलास शर्मा 'जाति' को राष्ट्र से भिन्न मानते हैं और इसके लिए 'नेशन' शब्द का प्रयोग अधिक उचित समझते हैं। उन्होंने लिखा कि- 'मार्क्सवादी साहित्य में नेशन शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसके लिए हिंदी-बंगला के परिचित पुराने शब्द 'जाति' का प्रयोग करना अधिक उचित है। राष्ट्र शब्द से भूमि का भी बोध होता है, जबकि नेशन शब्द से केवल किसी भूमिखंड के निवासियों का बोध होता है। दोनों शब्दों-जाति और राष्ट्र को-अलग रखने से हम उस उलझन से बच सकते हैं जो नेशन शब्द के व्यवहार से उत्पन्न

होती है।' रामविलास जी जाति के बारे में स्टालिन की अवधारणा से सहमत हैं लेकिन जातियों के गठन की परिस्थितियों के बारे में उनसे भिन्न विचार रखते हैं। सामान्य आवास भूमि, सामान्य संस्कृति, सामान्य भाषा और सामान्य ऐतिहासिक परंपरा के साथ जातियों के बारे में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जातियां पूंजीवादी विकास की देन हैं। यानी पूंजीवाद के पहले के समाजों

में जातियों की कल्पना नहीं की जा सकती। स्टालिन लिखते हैं कि- 'सामंतवाद के पतन और पूंजीवाद के अभ्युदय-काल में जातियों का गठन होता है।' लेकिन रामविलास जी की मान्यता है कि जातियों का विकास पूंजीवाद के साथ ही नहीं होता बल्कि सामंती काल में भी जातियों का गठन होता है। 'भाषा और समाज' में उन्होंने प्रश्न उठाया कि 'सामंती युग में जाति (नेशनलिटी) का गठन होता है या नहीं और होता है तो उसका आधार क्या है? पूंजीवाद के अभ्युदय काल में नए सिरे से जातियों का गठन होता

है। इस गठन का आधार नए पूंजीवादी बाजार का निर्माण माना जाता है। किन्तु इस पूंजीवादी विकास से पहले, और पुराने कबीलों के विघटन के बाद 'बीव' की मंजिल में सामाजिक गठन का कोई जातीय रूप होता है या नहीं?' समाजशास्त्र के इस जटिल प्रश्न के बारे में रामविलास जी इस बात की ओर संकेत करते हैं कि स्टालिन ने भी लघुजातियों (नेशनलिटी) और महाजातियों (नेशन) में अंतर किया है और लघुजातियों की भाषा से महाजातियों की भाषा के विकास की बात कही है। वे जातियों के निर्माण में बाजारों की भूमिका को भी बहुत सीमित महत्व देते हैं और लेनिन के हवाले से बताते हैं कि सत्रहवीं सदी के आरंभ में रूसी सौदागरों ने स्थानीय रूसी बाजारों को मिलाकर एक विशाल अखिल-रूसी बाजार कायम किया और इससे रूसी जाति का निर्माण हुआ।

रामविलास जी सामंती युग में जातियों के निर्माण के बारे में अपनी मान्यता के पक्ष में एंगेल्स की पुस्तक *परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति* को उद्धृत करते हैं और यह स्थापित करते हैं कि एंगेल्स भी सामंती युग में लघु जातियों का उद्भव और अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

रामविलास जी ने भारत के संदर्भ में यह स्थापित किया कि हिंदी जाति के निर्माण में मुगल काल की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने सामाजिक विकास की मार्क्सवादी अवधारणा, कि उत्पादन की शक्तियों में होने वाले परिवर्तन अनिवार्यतः उत्पादन संबंधों में परिवर्तन करते हैं और समाज नए चरण में

प्रवेश करता है, में संशोधन करते हुए कहा कि उत्पादन के अलावा सामाजिक व्यवस्था का नियमन करने वाला तत्व है-वितरण। वितरण-व्यवस्था उत्पादन-पद्धति को प्रभावित करती है। वे लिखते हैं कि-‘जिस बाजार के आधार पर जाति का निर्माण सम्भव होता है, वह बाजार सौदागरी पूंजी द्वारा पहले कायम होता है, उसमें वस्तुओं की बढ़ती हुई खपत को पूरा करने के लिए उत्पादन की पद्धति में तब्दीली बाद को होती है। इसलिए हर देश के आर्थिक इतिहास में हम देखते हैं कि सौदागरी पूंजी का अभ्युदय पहले होता है और पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति का बाद में। इस सौदागरी पूंजी का अभ्युदय किसी भी उत्पादन-पद्धति में हो सकता है।’ पूंजीवाद के अभ्युदय के पहले सौदागरी पूंजी उस बाजार को निर्मित करती है जिसकी मांग को पुरानी उत्पादन-पद्धति से नहीं पूरा नहीं किया जा सकता और जातियों का निर्माण इसी सौदागरी पूंजी के दौर में होता है। मैनेजर पाण्डेय ने रामविलास जी की इस अवधारणा को प्रश्नांकित करते हुए स्थापित किया कि समाज के विकास की मुख्य प्रचालक शक्ति उत्पादन-पद्धति ही है और वितरण तो उसका सिर्फ एक कारक है। वीरभारत तलवार ने रामविलास शर्मा की सौदागरी पूंजी के बारे में धारणाओं की कमजोरियों को लक्षित करते हुए लिखा कि-‘सच बात तो यह है कि व्यापारिक पूंजी के विकास का पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली से कोई विशेष संबंध तो दूर रहा, उत्पादन की प्रणाली मात्र से भी कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता। बिकाऊ माल का उत्पादन किस प्रणाली से हुआ है, इससे व्यापारिक पूंजी का कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता है। उसका संबंध तो उत्पादन हो जाने के बाद अस्तित्व में आए माल से होता है। इसीलिए यह जरा भी जरूरी नहीं है कि अगर व्यापारिक पूंजी का विकास हो रहा है तो उसके फलस्वरूप उत्पादन की प्रणाली में भी कोई विकास हो रहा हो। व्यापारिक पूंजी सिर्फ बने हुए माल को खरीदने बेचने का काम करती है, उसकी सारी गतिशीलता इन्हीं के बीच होती है। इसीलिए कभी-कभी उत्पादन प्रणाली तो बहुत ही पिछड़ी हुई बनी रहती है, उसमें कुछ भी फर्क नहीं आता, लेकिन व्यापार का विकास होता रहता है। इस सिलसिले में मार्क्स ने लिखा कि व्यापारी पूंजी का विकास उत्पादन के विकास की मात्रा के ठीक उल्टे क्रम में भी होता है।’

रामविलास शर्मा जातियों के गठन के प्रश्न को जिस हद तक पीछे ले जाते हैं उससे इतना तो निश्चित रूप से पता चलता है कि उनकी पूरी जद्दोजहद का मकसद प्राक्-औपनिवेशिक भारत के बारे में यूरोपीय अवधारणा का खंडन करना है। वे एक देश के औपनिवेशिक अनुभवों के बाद सकारात्मक या नकारात्मक कोई भी श्रेय औपनिवेशिक शासकों को नहीं देना चाहते। ध्यान रहे कि इस सिलसिले में वे भारत के बारे में लिखे गए मार्क्स के लेखों से भी अपनी असहमति प्रकट करते हैं।

रामविलास जी मार्क्स की भारत संबंधी टिप्पणियों में अंग्रेजी राज की भर्त्सना और भारतीय प्रतिरोध के प्रति उनकी सहानुभूति से अपनी सहमति व्यक्त करते हैं लेकिन उपनिवेशवाद की किसी प्रगतिशील भूमिका मानने को वे तैयार न थे। इसी के जवाब में उनका बहुत सारा लेखन है, जो यह सिद्ध करने की कोशिश में लिखा गया है कि अंग्रेजों के आधिपत्य में आए बगैर भी भारत आधुनिक राष्ट्र बन सकता था। मार्क्स ने *न्यूयार्क ट्रिब्यून* में भारत संबंधी 33 टिप्पणीनुमा लेख प्रकाशित कराए। जब मार्क्स भारत के बारे में यह लेख लिख रहे थे उस समय पूरब के बारे में पश्चिमी ज्ञान अत्यंत सीमित था। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत को परिवर्तनहीन, गति और स्वायत्त ग्राम व्यवस्था आदि मानने की मार्क्स की अवधारणा ठीक नहीं थी। मार्क्स

ने 22 जुलाई 1853 की टिप्पणी में लिखा-‘अंग्रेज पूंजीपति जो भी करने को बाध्य हो, वह न तो आम जनता की सामाजिक स्थितियों में कोई भौतिक सुधार लाएगा और न ही उन्हें मुक्त करेगा। भारतीय लोग ब्रिटिश बर्जुआ के द्वारा उनके समाज में बिखरे गए नए बीजों के फल नहीं प्राप्त कर सकेंगे, जब तक कि खुद ब्रिटेन में नए शासक वर्गों को औद्योगिक सर्वहारा पदच्युत करके उनकी जगह न ले लें। या जब तक कि हिंदू स्वयं इतने मजबूत नहीं हो जाते कि वे ब्रिटिश जुए को पूरी तरह उतार फेंकें।’ रामविलास शर्मा अंग्रेजी राज द्वारा बिखरे गए ‘नए बीजों’ की भी चर्चा नहीं करते।

ठीक-ठीक यही वह आधारभूमि है जहां खड़े होकर रामविलास शर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य को उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रीय जागरण के साहित्य के रूप में पढ़े जाने की हिमायत करते हैं। मानववाद, वैज्ञानिकता, प्रगति और विकास, इहलौकिकता, स्वतंत्रता, आर्थिक-सामाजिक बराबरी आदि तमाम मूल्यों को वे पश्चिम का अवदान नहीं, बल्कि सार्वभौम मूल्य मानते हैं। आज़ादी के बाद के अपने आलोचनात्मक लेखन में उन्होंने ‘साम्राज्यवाद-विरोध’ और ‘सामंतवाद-विरोध’ को साहित्यिक मूल्यांकन का निकष बनाया। भारत में औपनिवेशिक पूंजीवाद ने सामंतवाद के साथ समझौता किया और वह बाकायदा ग्रामीण भारत में साम्राज्यवादी शोषण का प्रमुख स्तंभ बना रहा। आज़ाद भारत में भी देशी शासकों ने मजबूत सामंती अवशेषों के हित में ही काम किया। अतः ‘साम्राज्यवाद’ और ‘सामंतवाद’ दोनों भारतीय परिस्थितियों में अन्योन्याश्रित हैं और दोनों का एक साथ विरोध सच्ची राष्ट्रीय चेतना के लिए जरूरी है। यहां उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवाद नवजागरण के मुहारे में अभिव्यक्त होता है।

प्रश्न है कि क्या ‘सामंतवाद विरोध’ और ‘साम्राज्यवाद विरोध’ के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है? ये मानक आवश्यक तो हैं पर पर्याप्त नहीं हैं। दूसरे रामविलास जी इन्हीं आधारों पर कुछ साहित्यकारों का अतिमूल्यांकन करते हैं तो कुछ रचनाकारों को खारिज भी करते हैं। भारतेंदु का ‘साम्राज्यवाद-विरोध’ और आचार्य शुक्ल का ‘सामंतवाद-विरोध’ लगातार सवालियों के दायरे में रहा है। वहीं अपने प्रतिमानों की अपर्याप्तता के कारण उन्होंने मुक्तिबोध का उचित मूल्यांकन नहीं किया। उन्होंने आचार्य शुक्ल के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखी अपनी पुस्तक ‘आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना’ की भूमिका में लिखा कि-‘हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को। उन्होंने वाह्य जगत और मानव-जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य-सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।’ रामविलास जी शुक्ल जी को सुसंगत भौतिकवादी तो नहीं लेकिन काफी हद तक भौतिकवादी मानते हैं और स्थापित करते हैं कि शुक्ल जी ने ‘रस-सिद्धांत’ की लौकिक व्याख्या करके आनंद को काव्य का लक्ष्य मानने वाली सामंती विचारधारा को ध्वस्त कर दिया और शृंगार की जगह वाल्मीकि और भवभूति की परंपरा में करुणा को मूलभाव माना। करुणा से प्रेरित अन्याय का प्रतिरोध करने वाले नायक उनके आदर्श थे। शुक्ल जी के द्वारा तुलसीदास का किया गया मूल्यांकन सबसे ज्यादा बहस के केंद्र में रहा है। रामविलास जी न सिर्फ इस मूल्यांकन को जायज ठहराते हैं बल्कि

कबीर को भक्तिकाल का केंद्रीय कवि मानते हुए किए गए अध्ययनों को खारिज करते हुए वे लिखते हैं कि- 'कबीर पर सारी पुस्तकें एक तरफ और शुक्ल जी के ये तीन वाक्य एक तरफ'।

रामविलास जी के उपनिवेशवाद-विरोधी रुख के आधार पर कहा जाता है कि जिस तरह से अफ्रीकी लेखकों ने यह मानने से इंकार कर दिया कि उपनिवेशवाद के जुए के तले जुतने से पहले उनका कोई इतिहास नहीं था और इस तरह उन्होंने मार्क्सवाद की इस स्थापना पर भी सवाल खड़ा किया कि 'अब तक का इतिहास या एंगेल्स के शब्दों में 'लिखित इतिहास' मान लें तो भी) वर्ग संघर्ष का इतिहास है', उसी तरह रामविलास शर्मा ने भी उपनिवेशों के संदर्भ में मार्क्सवादी व्याख्याओं की अपर्याप्ता की ओर संकेत किया। लेकिन शोषण का शिकार रहे शूद्रों और स्त्रियों के बारे में तुलसीदास की धारणा को जायज ठहराने वाले शुक्ल जी को सामंतवाद-विरोधी सिद्ध करना और उस दौर में नीचे से उभरते हुए तबकों की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भक्तिकाल, के सर्वाधिक मुखर कवि कबीर को खारिज करने वाली दृष्टि का समर्थन करना रामविलास जी को कहां खड़ा करता है? तुलसी के मूल्यांकन में असुविधाजनक बातों को प्रक्षिप्त मान लेना, उन्हें कम महत्वपूर्ण मानना या पुग की सीमा मान लेना यह दिखाता है कि अवधारणाएं और निष्कर्ष पहले से तैयार थे, जिनकी पुष्टि के लिए उदाहरण जुटा लिए गए हैं। मौजूदा समय में जब दलित साहित्य अपनी परंपरा की खोज और पुनर्मूल्यांकन कर रहा है तो यह अकारण नहीं कि वह भक्तिकाल का केंद्रीय कवि कबीर को पाता है और आचार्य शुक्ल द्वारा कबीर के मूल्यांकन को खारिज करता है। शुक्ल जी के लेखन में साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना तो दिखाई पड़ती है लेकिन यह कतई आवश्यक नहीं कि उन्हें सामंतवाद-विरोधी भी माना जाए। आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलोचना में निस्संदेह बुद्धिवाद, यथार्थवाद आदि की स्थापना की लेकिन सामंतवाद-विरोध की बात तो उन्हीं के शब्दों में कहें तो 'दूर की कौड़ी' लाकर ही स्थापित की जा सकती है।

रामविलास जी सामंतवाद का संबंध कुल-जमा भूमि-संबंधों के सिलसिले में ही देखते हैं। अब संकट यह है कि इन भूमि संबंधों के चलते जो सामाजिक संबंध बनते हैं, एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं और लगातार परिवर्तित होते रहते हैं उनके बारे में विवेचन करना वे जरूरी नहीं समझते। वह रामचंद्र

शुक्ल द्वारा चंद्रशेखर आजाद को दी गई सलाह को उद्धृत करते हैं- 'अंग्रेजों ने अपनी नीति से महाजन जमींदार पैदा किए हैं। इन्हें छोड़िए। औसत जमींदार टैक्स आदि देने के बाद किसान की ही तरह हो जाता है। अपने संगठन में उन्हें भी लीजिए। किसानों के साथ वे भी विद्रोह करने के लिए तैयार बैठे हैं। बहुत जुल्म हुआ। अब केवल शक्ति का मार्ग रह गया है।' इस आधार पर शुक्ल जी को गांधीवाद से अलग कर लेना तो एक हद तक ठीक है लेकिन इस आधार पर उन्हें सामंतवाद-विरोधी सिद्ध करना उचित नहीं क्योंकि आर्थिक हालत के अलावा जाति व्यवस्था के चलते जो सामाजिक विभाजन था क्या 'टैक्स आदि देने के बाद औसत जमींदार' उससे ऊपर उठ जाता था?

रामविलास जी के विपुल साहित्य का मूल्यांकन किसी एक लेख या कुछ लेखों में संभव नहीं है। आज की राजनीतिक परिस्थिति में मार्क्सवाद और उपनिवेशों के अनुभवों के बीच का पुल खोजने की उनकी कोशिश, सर्वहारा की तानाशाही की जगह सर्वहारा के लोकतंत्र की वकालत आदि प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठते हैं। उम्मीद है शताब्दी वर्ष में रामविलास जी को ध्वस्त करने या उन्हें महान बताने की कोशिशों से आगे कुछ वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन भी सामने आएंगे।

संदर्भ

1. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 14
2. जे. वी. स्टालिन, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 2, राहुगा प्रकाशन, मास्को, पृष्ठ 315
3. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 240
4. वही, पृष्ठ 260
5. बीरभारत तलवार, 'रामविलास शर्मा की विवेचन पद्धति और मार्क्सवाद-III', सामना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 92
6. Ahmad, Aijaz : 'Marx on India : A Clarification'. In Theory. OUP. Delhi. 1995 (1992). Ibid. pg. 236
7. रामविलास शर्मा, भूमिका, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 27, 8. वही, पृष्ठ 58, 9. वही, पृष्ठ 23

संपर्क : एफ. 340, लाडो सराय, नई दिल्ली-110030

पुस्तक समीक्षा

लेखकों और प्रकाशकों से अनुरोध है कि पुस्तक की समीक्षा हेतु पुस्तक की दो प्रतियां भिजवाने की कृपा करें। पुस्तक की दो प्रतियां समीक्षा के लिए आवश्यक हैं।

—संपादक

आगामी अंक

अक्टूबर 2012 अंक भारतीय सिनेमा के सौ वर्ष होने पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। 80 से अधिक पृष्ठों की इस प्रति का मूल्य 20 रुपये होगा। कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराएं।

संपर्क करें :

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207 / 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

रामविलास शर्मा की व्यापक दृष्टि

प्रांजल धर

डा. रामविलास शर्मा हिंदी के शीर्ष आलोचकों में शामिल हैं, जिन्होंने सिर्फ साहित्यिक आलोचना ही नहीं, मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संस्कृति और दर्शन पर भी अनोखा कार्य किया है। अंग्रेजी के अध्येता और शिक्षक होते हुए भी रामविलास शर्मा ने हिंदी भाषा और साहित्य के गौरव की रक्षा के लिए सतत संघर्ष किया। 'फिराक और हिंदी' शीर्षक की प्रसिद्ध लेखमाला उनके हिंदी-प्रेम की ही नहीं, व्यापक दृष्टिकोण की भी परिचायक है। वास्तव में आज जब रामविलास शर्मा (1912-2000) की जन्मशती मनाई जा रही है तब हिंदी के छात्रों, अध्यापकों और विश्वविद्यालयों का ही नहीं, बल्कि साहित्यिक-सांस्कृतिक संगठनों की भी यह जिम्मेदारी बनती है कि वह ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार-विमर्श करें जिन्हें रामविलास शर्मा ने उठाया था। वास्तव में रामविलास शर्मा की लगभग सौ कृतियों ने साहित्य, समाज और आलोचना पर जो प्रश्न उठाए हैं उनसे हमारा देश, पहले की अपेक्षा आज कहीं अधिक जुड़ा रहा है।

रामविलास शर्मा ने छायावादी काव्य उसमें भी मुख्य रूप से निराला के साहित्य की व्याख्या से अपना आलोचना-कर्म प्रारंभ किया। उनके आलोचना कर्म की महत्त्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध उपलब्धि भी निराला की साहित्य साधना (1969 ई.) के रूप में ही विद्यमान है। रामविलास शर्मा का चिंतन-क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है और वे बीसवीं शताब्दी के अंत के यूरोप और ऋग्वेद से लेकर वर्तमान भारत तक, हर विषय पर अपनी पैनी दृष्टि डालते हैं। वह हिंदी साहित्य को 'हिंदी जाति का साहित्य' कहते हैं लेकिन जाति की उनकी धारणा बहुत व्यापक है, सर्वसमावेशी है और निर्विवाद है।

रामविलास जी ने हिंदी जाति की जो संकल्पना प्रस्तुत की, वह सर्वथा नवीन है। उनके पहले 'हिंदी जाति' जैसे पदबंध का न तो प्रचलन था और न ही इस पर चर्चा की जाती थी। देखा जाए तो हिंदी तथा अन्य भाषाओं में 'जाति' शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से तीन अर्थों में किया जाता है। पहला अर्थ 'बिरादरी' यानी 'कास्ट' से संबंधित है। दूसरा अर्थ 'नस्ल' यानी 'रेस' से संबंधित है तथा तीसरा तात्पर्य 'कौम' अथवा 'नेशनलिटी' से है। मार्क्सवादी साहित्य में जिस संदर्भ में 'नेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है, रामविलास 'जाति' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में प्रयुक्त करते थे। वास्तव में

'भारत की भाषा समस्या' (1949) नामक लेख से लेकर भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (1999) नामक पुस्तक के दो खंडों तक उन्होंने जाति पर गहराई से विचार किया है।

रामविलास जी की किताबों के विपुल भंडार पर एक नज़र डालने से ही उनके काम की विविधता और विस्तार समझ में आ जाता है। एक तरफ उन्होंने प्रेमचंद और उनका युग, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की

रामविलास शर्मा की आस्था और आत्मविश्वास का उत्स उस परिवेश में है, जिसने उन्हें स्वाभिमान और खुददारी का पाठ पढ़ाया और सम्मानपूर्वक जीने की सीख दी। रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर 1912 को उन्नाव जिले के ऊंचगांव में हुआ था। अपनी आत्मकथा अपनी धरती अपने लोग की शुरुआत में वे अपने जन्म के बारे में लिखते हैं— 'पितृविसर्जनी अमावस्या संवत् 1969 रात का अंधेरा भाग रहा था, पितर विदा हो रहे थे। तब मैंने भारत की धरती का स्पर्श किया। स्थान—ऊंचगांव सानी, ज़िला—उन्नाव, प्रांत—संयुक्त प्रांत।' रामविलास शर्मा का जीवन एक आलोचक की निरंतर विकसित होती संघर्ष यात्रा का पर्याय है जिससे समस्त साहित्य-जगत प्रेरणा ले सकता है।

समस्याएं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण तथा निराला की साहित्य साधना जैसी साहित्यिक आलोचना की बड़ी किताबें लिखीं, तो दूसरी ओर उन्होंने हिंदी जगत को भाषा और समाज, राष्ट्रभाषा की समस्या, भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी तथा आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों का संबंध जैसी अनमोल पुस्तकें भी प्रदान की हैं, जिनसे भाषा-विज्ञान में चिंतन और अनुसंधान की अनेक नई दिशाएं खुली हैं। इन दिशाओं में आगे चलकर हिंदी ने अपने गौरव को पहचानने का प्रयास किया है।

रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचक होते हुए भी अपनी दृष्टि को मार्क्सवाद के परे ले जाते हैं और वे किसी जड़ मार्क्सवादी की तरह आलोचना-कर्म में प्रवृत्त नहीं होते। यहां पर उनकी गंभीर पुस्तक आस्था और सौंदर्य का नाम लिया जा सकता है। इस पुस्तक में शर्मा जी ने सौंदर्य को देखने,

जानने और समझने के नवीन और अधिकाधिक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान किए हैं। 'सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास' नामक निबंध में रामविलास जी ने सुंदरता की वस्तुवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रायः सौंदर्य को या तो व्यक्ति में देखा जाता रहा है या फिर उसे विषय में नियत किया जाता रहा है। लेकिन अपने दौर की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए उन्होंने सौंदर्य को इन दोनों के संघात के रूप में देखा। सौंदर्य के प्रति उनका यह नज़रिया बाद में साहित्य में अनेक रूपों में देखने-सुनने को मिलता रहा है।

रामविलास जी ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विरोध करने के स्थान पर उनके विचारों की पुष्टि करते हुए उनकी पुनर्व्याख्या की और साथ ही समयानुकूल विस्तार भी प्रदान किया। यह ठीक है कि हिंदी आलोचना के

इतिहास में अन्य शुक्लोत्तर आलोचकों की तरह रामविलास जी के भी प्रस्थान बिंदु आचार्य शुक्ल ही हैं लेकिन रामविलास जी अपने समकालीन आलोचकों से अनेक बातों में भिन्न हैं। वास्तव में छायावाद के समर्थक आलोचक शुक्ल जी का खंडन करते आ रहे थे। इसके अतिरिक्त प्रगतिशील आलोचक भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से यही कार्य कर रहे थे व शुक्ल जी को प्रतिक्रियावादी मानते थे। देखा जाए तो हिंदी आलोचना में आचार्य शुक्ल के प्रति ऐसी एकांगी दृष्टि रखना एक फैशन-सा बनता जा रहा था। ऐसे वातावरण में प्रचलित मत के विपरीत जाकर रामविलास जी ने घोषणा की, “हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का बही महत्त्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का है। उन्होंने (शुक्ल जी ने) आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने।”

चिंतन की सभी दिशाओं में वैचारिक पहलकदमी करती हुई उनकी किताबें अनेक हैं जो आलोचकीय कर्म के प्रति उनकी गहन कटिबद्धता को दर्शाती हैं। *प्रगति और परंपरा, परंपरा का मूल्यांकन, मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज, स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य तथा भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद* जैसी उनकी कृतियां विभिन्न ज्ञानानुशासनों में उनके सक्रिय हस्तक्षेप की परिचायक हैं। मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का बारीक अध्ययन करके उन्होंने इसे भारतीय इतिहास से संबद्ध किया। *भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद* नामक उनकी कृति इसका प्रमाण है, जो अपने इतिहास को समझने के लिए हमें एक उन्नत व स्वस्थ दृष्टि प्रदान करती है। रामविलास जी का मत था कि संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र को या उनकी समस्याओं को ‘रूढ़िवादियों’ के भरोसे छोड़ देना उचित नहीं है बल्कि मार्क्सवादी नज़रिए से उन पर विमर्श किया जाना आवश्यक है।

असल में, रामविलास जी के आलोचक-कर्म की पराकाष्ठा निराला साहित्य के मूल्यांकन में ही दिखाई पड़ी। दो खंडों में प्रकाशित *निराला की साहित्य साधना* के प्रथम खंड की भूमिका में रामविलास जी ने स्पष्ट किया है कि-“यह निराला का जीवन-चरित है।” पर, जीवन-चरित की उनकी सोच बहुत व्यापक है और उन्होंने इसके अंतर्गत निराला के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश के साथ-साथ उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी समाहित किया है। इतना ही नहीं, आलोचना की शब्दावली में कहें, तो इसमें कवि की सृजनात्मक कल्पना को, कवि की अनेक रचनाओं की रचना-प्रक्रिया को कवि-व्यक्तित्व की दृष्टि से समझा गया। हिंदी में साहित्यकारों के ‘व्यक्तित्व और कृतित्व’ संबंधी अध्ययनों की कमी नहीं रही है लेकिन ऐसा अध्ययन जिसमें व्यक्तित्व तथा कृतित्व दो अलग-अलग खांचाबद्ध चीजें न रहकर एक संयुक्त इकाई बन जाएं, रामविलास जी के इस ग्रंथ से पहले देखने में नहीं आया। यहां आकर व्यक्तित्व की समग्र कृतित्व के मूल्यांकन में तथा कृतित्व की समग्र व्यक्तित्व के विश्लेषण में सहायक होने लगती है और दोनों की एक तार्किक पारस्परिकता स्थापित होने लगती है।

रामविलास शर्मा की आस्था और आत्मविश्वास का उत्स उस परिवेश में है, जिसने उन्हें स्वाभिमान और खुददारी का पाठ पढ़ाया और सम्मानपूर्वक जीने की सीख दी। रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर 1912 को उन्नाव जिले के ऊंचगांव में हुआ था। अपनी आत्मकथा *अपनी धरती अपने लोग* की शुरुआत में वे अपने जन्म के बारे में लिखते हैं-“पितृविसर्जनी अमावस्या

संवत् 1969 रात का अंधेरा भाग रहा था, पितर विदा हो रहे थे। तब मैंने भारत की धरती का स्पर्श किया। स्थान-ऊंचगांव सानी, जिला-उन्नाव, प्रांत-संयुक्त प्रांत।” शिशुकाल की अनेक बातों को शर्मा जी ने अनेक अवसरों पर याद किया, जैसे-घर के बैठक और आले में रखी सेंदुर से पुती महावीर की मूर्ति या फिर ठंड से बचाने के लिए बाबा द्वारा बालक रामविलास के सिर पर सूती कनटोप का लगाना। बचपन में उनके व्यक्तित्व का निर्माण करने में बाबा के मुंह से सुनी हुई कहानियों और कविताओं का बड़ा हाथ है। इनमें ऊंट और सियार की कहानी और लोखरी (सियारिन) की कहानियां उन्हें बहुत पसंद थीं।

बचपन में रामविलास शर्मा को झांसी में सरस्वती पाठशाला में भर्ती कराया गया। बाद में सरस्वती पाठशाला के बंद होने पर वे मैकडनल हाईस्कूल में आ गए। झांसी में इंटरमीडिएट से आगे की पढ़ाई की सुविधा नहीं थी, इसलिए बी.ए. करने के लिए रामविलास जी लखनऊ आ गए तथा लखनऊ विश्वविद्यालय में बी.ए. में दाखिला ले लिया। रामविलास जी के पास इतने पैसे नहीं थे कि छात्रावास में रह सकें। बाद में इंटरमीडिएट में अच्छे अंकों के कारण उन्हें बीस रुपये महीने की स्कॉलरशिप मिलने लगी, जिससे आर्थिक तंगी की मुसीबतें कुछ सीमा तक हल हो गई। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है-

“जब मुझे स्कॉलरशिप की पहली रकम मिली, तो मैंने दूध में जलेबी डालकर खाई। इसके बाद मैंने गोर्की का उपन्यास *मां* खरीदा था। उपन्यास अंग्रेजी में था। यह उपन्यास मैंने हिरालाल कुम्हार के हाते में ही पढ़ा।” यहां रहते हुए रामविलास जी ने मजदूरों के जीवन को बहुत निकटता से देखा था।

अपने अध्यापकों में रामविलास जी ने दयामय मित्र का काफी जिक्र किया है, जो अंग्रेजी पढ़ाते थे और मानो हर समय कविता में ही डूबे रहते थे। दयामय मित्र बहुत स्वाभिमानी थे। रामविलास जी का कहना है कि-“उनका कमरा किताबों से भरा होता था, साहित्य को वे इतना सजीव कर देते थे कि थोड़ी देर के लिए हम यूनिवर्सिटी, अपनी कक्षा...सभी को भूल जाते थे।”

रामविलास शर्मा ने कुछ अनुवाद का काम भी किया क्योंकि अंग्रेजी और हिंदी, दोनों भाषाओं पर उनकी गहरी पकड़ थी। एक प्रकाशक चार आने या आठ आने पेज देकर स्वामी विवेकानंद के कुछ व्याख्याओं का अनुवाद कराना चाहता था। रामविलास जी ने विवेकानंद के तीन व्याख्याओं का अनुवाद किया जो *भक्ति और वेदांत* नाम से प्रकाशित हुए। इसी तरह उन्होंने स्वामी विवेकानंद की दो और पुस्तकों *कर्मयोग* और *राज्ययोग* का भी अनुवाद किया। निराला से रामविलास शर्मा की मुलाकात इसी अनुवाद कार्य के कारण हुई। निराला ने स्वामी विवेकानंद के अनुवाद देखकर पूछा था-“यह अनुवाद किसने किया है?” एक दिन जब रामविलास जी सरस्वती पुस्तक भंडार में निराला का कविता-संग्रह *परिमल* खरीद रहे थे, तभी निराला वहां आ गए। पुस्तक भंडार के मालिक ने रामविलास जी को निराला से मिलवाते हुए कहा कि यह अनुवाद इन्होंने (रामविलास शर्मा ने) ही किया है। इस पर निराला बेहद खुश हुए थे। तब से निराला के साथ रामविलास जी का एक अपनत्व वाला संबंध विकसित हुआ।

रामविलास शर्मा ने काफी कविताएं भी लिखी थीं जिनमें से कुछ *सुधा*, *माधुरी* और *सरस्वती* में प्रकाशित हुई थीं। निराला के यहां रहते हुए ही उनकी मित्रता केदारनाथ अग्रवाल और अमृतलाल नागर से हुई और उनके साथ

उनका पचास बरस से भी ज्यादा लंबा संबंध रहा। उस समय हिंदी पर तमाम तरह के प्रहार हो रहे थे। लोग कहते थे कि हिंदी राष्ट्रभाषा बनने योग्य नहीं है। इसी प्रसंग में बनारस में संपन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की चर्चा रोचक है। निराला इस साहित्यिक अधिवेशन के अध्यक्ष थे और इसी मंच से शर्मा जी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का इतना कड़ा जवाब दिया कि सभागार तालियों की गूंज से भर उठा। रामविलास जी के लिए यह सुखद आश्चर्य की बात थी क्योंकि किसी बड़े कार्यक्रम में लेख पढ़ने का उनका यह पहला मौका था। इसी कार्यक्रम में रामविलास जी ने पहली बार आचार्य शुक्ल के भी दर्शन किए थे। शुक्ल जी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे।

वक्त बीतने के साथ रामविलास शर्मा की लेखन-यात्रा में अनेक बदलाव आए। उन्हें लगने लगा कि सिर्फ इतिहास और राजनीति का ही अध्ययन पर्याप्त नहीं है, बल्कि संस्कृति और दर्शन का गहन अध्ययन भी जरूरी है। इस आक्षेप का प्रत्युत्तर देने के लिए कि मार्क्सवाद ने संस्कृति और दर्शन के प्रश्नों की उपेक्षा की है, रामविलास जी ने आगे बढ़कर यह चुनौती स्वीकार करते हुए स्वयं एक उदाहरण पेश करना बेहतर समझा और सचमुच यह इतना बड़ा काम था कि इसे रामविलास जी जैसा तीक्ष्ण मेधा संपन्न तथा कठोर श्रम करने वाला कोई अध्यवसायी ही संपन्न कर सकता था। इन विषयों का चुनाव ही यह साबित करने के लिए काफी है कि रामविलास जी सदैव दुर्जेय समझे जाने वाले किलों को विजित करने के लिए ही आगे बढ़े। जहां कोई रास्ता नजर नहीं आया, वहां भी उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा और मेधा से नई राह खोज ही ली। यह उनके विशद अध्ययन का ही परिणाम था कि उन्होंने निराला के कवि-व्यक्तित्व का अध्ययन करके पहली बार करुणा को निराला के मूल भाव के रूप में रेखांकित किया। इसी तरह उन्होंने करुणा मूल भाव के आधार पर निराला को ट्रेजेडी के महान लेखकों की पश्चिमी परंपरा से जोड़ा। यह ट्रैजिक तत्व वाल्मीकि, भवभूति और तुलसी की भारतीय कवि परंपरा में तथा दुनिया के सभी महान कवियों की कृतियों में मिलता है।

आलोचना में केवल मूल्यांकन ही नहीं, पुनर्मूल्यांकन भी शामिल होता है। इस लिहाज से देखें तो रामविलास जी ने निश्चय ही हिंदी-साहित्य के अनेक प्रमुख लेखकों का पुनर्मूल्यांकन किया। उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल और निराला जैसे चार महारथियों की पूर्ण समीक्षा लिखी। इसे हिंदी साहित्य का 'क्रमबद्ध और व्यवस्थित आलोचनात्मक इतिहास' कहा जा सकता है। रामविलास जी ऐसे आलोचक नहीं थे जो युवा रचनाकारों की औसत रचनाओं को भी, तात्कालिक लोकप्रियता अर्जित करने की दृष्टि से, अनावश्यक तूल दें।

अपने समय के साहित्यकारों में रामविलास जी ने सहृदयता के साथ जिन प्रिय लेखकों की गहन समीक्षा प्रस्तुत की उनमें वृंदावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं। यह रामविलास जी के व्यक्तित्व की सर्वसमावेशी प्रकृति ही थी कि नई प्रयोगशील कविता से प्रीति न होते हुए भी उन्होंने अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध के काव्य का भी गंभीर विश्लेषण किया है। आज भी यह विश्लेषण सारगर्भित और हृदयस्पर्शी लगता है।

सुमित्रानंदन पंत के प्रति उनके रुख में वक्त के साथ कुछ मृदुलता आई जो इस बात की परिचायक है कि रामविलास जी के व्यक्तित्व में एक सकारात्मक लचीलापन विद्यमान था। आज रामविलास जी के कुछ आग्रहों की बात की जाती है। मसलन; उन्होंने एक ओर निराला के गद्य और पद्य दोनों

की प्रगतिशीलता और बहुविध प्रयोगशीलता को कवि के काव्य में यथार्थवाद के विकास के साथ संबद्ध करके देखा; वहीं दूसरी ओर पंत की तुलना में गिरिजाकुमार माथुर की कविता में उन्हें 'प्रगतिशील कविता का नया कलात्मक विकास' साफ-साफ दिखाई देता है। जहां पर निराला के बाद वाले कवि, शर्मा जी की निगाह में, निराला से प्रभावित लगते हैं, वहीं पंत के बाद के कवि उनसे अलग कलात्मक विकास की नई दिशाएं खोजते हैं। वास्तव में ऐसे आग्रह रामविलास जी को अधिकचरे तरीके से पढ़ने से उपजते हैं और जब हम उनकी सारी कृतियों को समग्रता में देखकर अपनी राय निर्मित करने की कोशिश करते हैं तब ऐसे आग्रह कुहासे की तरह से छंट जाते हैं। तब यह आग्रह भी दूर हो जाता है कि रामविलास जी हिंदी में अपनी खास विवादित शैली में लिखी गई विध्वंसात्मक आलोचनाओं के लिए जाने जाते हैं।

इंग्लैंड में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में जब रामविलास शर्मा को सम्मानित किया गया, तब वे सम्मान ग्रहण करने वहां नहीं गए। इससे पहले भी उन्हें 'व्यास सम्मान' तथा हिंदी अकादमी के 'शलाका सम्मान' सहित कई बड़े पुरस्कार मिल चुके थे, लेकिन उन्होंने पुरस्कार की राशि स्वीकार नहीं की उसे साक्षरता के प्रसार के लिए खर्च करने के आग्रह के साथ विनम्रतापूर्वक वापस लौटा दिया था। वास्तव में रामविलास शर्मा का जीवन एक आलोचक की निरंतर विकसित होती संघर्ष यात्रा का पर्याय है जिससे समस्त साहित्य-जगत प्रेरणा ले सकता है। □

संपर्क : 2710, मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

कृपया ध्यान दें

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक से सीधे संपर्क करें।

पता :

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लॉक-4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207 / 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

नए साहित्यिक सिद्धांतों के संस्थापक

शुभा श्रीवास्तव

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में रामविलास शर्मा ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें हम एक व्यक्ति नहीं पूरी संस्था कह सकते हैं। रामविलास जी मार्क्सवादी आलोचक के रूप में जाने जाते रहे हैं, पर मेरा मानना है कि यह उनके व्यक्तित्व का एक अंश मात्र है। रामविलास शर्मा अनेक भाषाओं के जानकार आलोचक ही नहीं बल्कि कवि, संपादक, भाषा वैज्ञानिक, इतिहासकार (रूढ़ अर्थों में नहीं) और गद्य की अनेक विधाओं के स्थापक रचनाकार भी हैं। उनका यह परिचय सिर्फ साहित्य के संदर्भ में है। इससे इतर वह एक अच्छे अर्थशास्त्री, भारतीय संस्कृति के विचारक तथा सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों से भारत के भूत-वर्तमान-भविष्य के द्रष्टा भी हैं।

हिंदी के इस अनन्य सेवी का भौतिक संसार में पदार्पण दस अक्टूबर उन्नीस सौ बारह को हुआ। 1934 ई. से उनकी लेखनी पाठकों के समक्ष आनी शुरू हुई। तब से 30 मई 2000 अर्थात् मृत्युपर्यंत तक उन्होंने लगातार एक के बाद एक श्रेष्ठ व उत्कृष्ट लेखन किया। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि अंग्रेजी साहित्य से पी-एच.डी. करने वाले रामविलास जी की हिंदी भाषा, उसके साहित्य और श्रेष्ठ रचनाओं पर इतनी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि हो सकती है! किसी भी रचनाकार, उसके युग, भाषा और साहित्य, संस्कृति के ऊपर जब भी विचार किया जाएगा तो वह रास्ता रामविलास शर्मा से होकर ही नहीं जाएगा बल्कि वहां ठहरना भी पड़ेगा।

एक बार रामविलास शर्मा ने कहा था कि—‘मेरे प्रिय कवि (निराला) पर इतने प्रहार न होते तो मैं आलोचना के क्षेत्र में न आया होता। लगभग सौ आलोचनात्मक पुस्तक और लेख लिखने वाले रामविलास जी द्वारा रचित रचना-संसार को देखकर यह उक्ति उनकी उदारता का परिचायक मात्र कही जा सकती है। क्योंकि वह सिर्फ निराला पर हुए आक्षेपों से व्यथित न थे बल्कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद, प्रेमचंद, भारतेन्दु आदि पर लगे आरोपों से भी क्षुब्ध थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना की भूमिका में वह लिखते हैं—‘पिछले वर्षों में शुक्ल जी पर तरह-तरह के आक्षेप

किए गए थे। इनसे शुक्ल जी के बारे में ही नहीं साहित्य के सहज विकास के बारे में भी भ्रम फैलते थे। इन्हीं के निराकरण के लिए मैंने शुक्ल जी पर लेख लिखा था।’

रामविलास शर्मा रचनाकार और उसके दिए मूल्यों को पहचानने की

रामविलास शर्मा पहले आलोचक हैं जिन्होंने हिंदी की जातीयता पर विचार किया। उनसे पूर्व इस क्षेत्र में सन्नाटा पसरा हुआ था और आज भी लोग इसे नज़रंदाज़ करते हैं। किसी भी युग या रचनाकार की समीक्षा करते हुए वह यह अवश्य देखते थे कि वह हिंदी की जातीयता की कितनी रक्षा करता है और उसके विकास में कितना योगदान देता है। आपको आचार्य शुक्ल, प्रेमचंद, निराला, भारतेन्दु और द्विवेदी इसीलिए प्रिय थे। यह सभी रचनाकार हिंदी की जातीयता की निजी विशेषताओं को पहचानते ही नहीं थे अपितु आत्मसात भी करते थे। इन सभी ने हिंदी की जातीय संस्कृति को पहचानने और विकसित करने के लिए आगे के रचनाकारों का पथ प्रदर्शन किया है। रामविलास शर्मा को वह रचनाकार ज्यादा आकर्षित करते हैं जो रूढ़िवादी संस्कृति और सामंती प्रथा के विरोधी रहे हैं। चाहे वह शुक्ल हों, भारतेन्दु हों, प्रेमचंद हों या निराला। ये सभी रचनाकार युग निर्माता रहे हैं।

अद्भुत क्षमता रखते थे। उनका मानना था कि आचार्य शुक्ल का आलोचना के क्षेत्र में वही महत्त्व है, जो उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद और कविता के क्षेत्र में निराला का है। यह कहना असंगत न होगा कि ये तीनों रचनाकार अपने-अपने क्षेत्र में आज भी शीर्ष पर हैं। रामविलास जी ने शुक्ल जी के जनवादी रूप को प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। शुक्ल जी के आलोचना पक्ष को डा. शर्मा ने बिंदुवार अध्ययन में रेखांकित किया है। सूर, तुलसी, कबीर, जायसी के साथ ही गद्य के विकास में भारतेन्दु की भूमिका, आयावाद, इतिहास और जातीयता, निबंध, शैली और व्यक्तित्व तथा साहित्य और लोक जीवन संबंधित शुक्ल जी की अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए वह उनका महत्त्व प्रतिपादित करते हैं और बड़ी ही दृढ़ता से स्वीकार करते हैं कि—“हम चाहे जितना विकसित हो लें उनके (शुक्ल जी) वस्तुवादी दृष्टिकोण, द्वंद्वत्मक तर्क पद्धति, वाल्मिकी-भवभूति-तुलसीदास के मूल्यांकन और काव्य में कलात्मक सौंदर्य के महत्त्व के सिद्धांत को आत्मसात किए बिना आगे नहीं बढ़ सकते हैं।” (आचार्य शुक्ल और हिंदी आलोचना, पृ. सं. 23) आचार्य शुक्ल के

बाद रामविलास शर्मा ही एक ऐसे आलोचक हैं, जो रचनाकार की महत्ता, भाषा, साहित्य और समाज को एक साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं।

‘निराला’ तथा निराला की साहित्य साधना को पढ़ने के बाद यह अहसास होता है कि निराला की सामाजिक-राजनीतिक टिप्पणियों के आधार पर पहली बार निराला की राजनीतिक विचारधारा को सामने लाने का श्रेय रामविलास शर्मा को है। रामविलास जी ने निराला पुस्तक में उनकी दलित चेतना और सामान्य जन के लिए प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए निराला को जनता का पक्षधर कवि कहा है। रामविलास जी ने निराला के व्यक्तित्व

को उनके कृतित्व से जोड़कर देखने का साहसिक कार्य किया है। आलोचना के क्षेत्र में इस प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव रहता है। यह कहना असंगत न होगा। रामविलास जी का मानना है कि निराला की दुरुहता का कारण उनकी अध्ययनशीलता और काव्य साधना है। गीत के माधुर्य का कारण संगीत प्रेम, दार्शनिकता का कारण एकांतप्रियता और सहजता का कारण निराला के व्यक्तित्व की सादगी है। वस्तुतः निराला के व्यक्तित्व में विविधता और जटिलता है। इसी कारण उनकी रचनाओं में अंतर्विरोध है जिससे संगति ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। रामविलास शर्मा ने उस संगति की खोज की और निराला के जीवन को रचनाओं के आधार पर देखा। वे निराला को विश्वव्यापी भावों का अन्वेषी और विराट चित्रों का कवि कहते हैं।

निराला की साहित्य साधना जीवनी-लेखन के क्षेत्र में भिन्न अर्थों में प्रतिमान गढ़ती है। निराला की विचारधारा, भावबोध, कला, गद्य साहित्य और परंपरा पर गहन विवेचन करते हुए रामविलास जी ने उन्हें नव मानवतावाद का प्रतिष्ठापक कहा है। निराला के स्थापत्य और उनके नियामक तत्व (विवेक और स्वप्नदृष्टि) की विस्तृत समीक्षा कोई और समालोचक नहीं कर सका है। रामविलास जी ने निराला के गद्य, उनके छायावादी संस्कार और उनकी प्रगतिशीलता की सूक्ष्म विवेचना करके लोगों को निराला को पढ़ने के लिए विवश किया।

रामविलास शर्मा के आलोचना पक्ष का एक महत्वपूर्ण आयाम यह था कि वह रचनाकार को उसके युग से संबद्ध करके देखते थे। भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी का विश्लेषण करते हुए वह नवजागरण को भी स्पष्ट करते हैं। वह कहते हैं कि—“समाज जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में पहुँचता है, उस संक्रमण को नवजागरण की संज्ञा दी जा सकती है।” द्विवेदी जी के संदर्भ में वह हिंदी नवजागरण को स्पष्ट करते हैं और 1857 को पहला नवजागरण, भारतेन्दु, द्विवेदी व उनके युग को दूसरा, तीसरा नवजागरण मानते हैं। छायावाद युग (निराला विशेष) को वह हिंदी का चौथा नवजागरण कहते हैं।

रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग के साहित्य को हिंदीभाषी जनता का जातीय साहित्य मानते हैं। यह साहित्य हमारे जातीय नवजागरण का साहित्य है। वह भारतेन्दु व उनके प्रतिनिधि रचनाकारों की व्यंग्य, हास्य, सरस गद्य और लोक संस्कृति की विशेषता को उनकी जातीय विशेषता बताते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में पुरानी व्यवस्था व उससे जूझने की शक्ति तथा हिंदी को उसका अधिकार दिलाने की द्विवेदी जी की साहसिक यात्रा का चित्रण वह *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण* में करते हैं। वह कहते हैं कि द्विवेदी युग की भूमिका आधुनिक साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने वाले अग्रदल की भूमिका है।

प्रेमचंद और उनका युग में रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद की रचनाओं को तत्कालीन हिंदुस्तान और उसके स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिबिंब माना है। प्रेमचंद और उनके समय की परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए रामविलास जी उन्हें सच्चे अर्थों में युग निर्माता घोषित करते हैं—“प्रेमचंद की आवाज़ सुनकर हमें अपने देश और जनता पर गर्व होता है, उस जातीय संस्कृति पर गर्व होता है जिसे प्रेमचंद संवार रहे थे। प्रेमचंद की आवाज़ उस समय उठी थी जिस समय पहले महायुद्ध में मानवध्वंसी तोपों की गड़गड़ाहट हवा में गूँज रही थी। प्रेमचंद की आवाज़ भारत की अजेय जनता की आवाज़ है। इसलिए प्रेमचंद आज भी हमारे साथ हैं।” (*प्रेमचंद और उनका युग*, पृ. 158)

रामविलास शर्मा नए कवियों पर भी विचार करते हैं। *नई कविता के प्रतिमान और अस्तित्ववाद* में उनका बिंदुवार अध्ययन सराहनीय कार्य है। मुक्तिबोध के संदर्भ में वह कहते हैं कि उनके काव्य में लघु मानव (अस्तित्ववाद), महामानव (रहस्यवाद) का अंतर्विरोध रहा है इसलिए उनके भीतर आत्मसंघर्ष सदैव चलता रहा है। वस्तुतः मुक्तिबोध की कविता इसी आत्मसंघर्ष और अंतर्विरोध की कविता है। कहना न होगा कि रामविलास जी द्वारा रेखांकित यह पंक्ति मुक्तिबोध के समस्त रचना संसार को पाठकों के समक्ष खोल देती है और मुक्तिबोध की दुरुहता ख़त्म कर देती है। रामविलास जी शमशेर के काव्य में रीतिवादी रूमानी सौंदर्यबोध और मार्क्सवादी विवेक का द्वंद्व देखते हैं। नागार्जुन अपनी क्रांति भावना के कारण उनके प्रिय रहे हैं।

रामविलास शर्मा को वह रचनाकार ज्यादा आकर्षित करते हैं जो रूढ़िवादी संस्कृति और सामंती प्रथा के विरोधी रहे हैं। चाहे वह शुक्ल हों, भारतेन्दु हों, प्रेमचंद हों या निराला। वे सभी रचनाकार युग निर्माता रहे हैं और इन सभी ने हिंदी की जातीय संस्कृति की रक्षा की है। रामविलास जी जातीयता का प्रमुख चिन्ह भाषा को मानते हैं। *भाषा और समाज, भारत के प्राचीन भाषा परिवार, राष्ट्रभाषा की समस्याएं* आदि पुस्तकों में रामविलास जी ने भाषा पर गहनता से विचार किया है। भाषा के संदर्भ में आप ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की लीक पकड़कर कभी नहीं चले। हिंदी भाषा के विकास के संबंध में पाणिनीकालीन भाषा को आधार बनाकर (संस्कृत > पालि > प्राकृत > अपभ्रंश > हिंदी) विद्यालयी परिपाटी के हिंदी भाषा उद्भव के सूत्र के वह विरोधी रहे हैं। उनका मानना था कि साहित्य में प्राकृतों का व्यवहार संस्कृत के विरुद्ध लोक भाषाओं का विद्रोह है, यह मान्यता बचकानी है। बारहवीं सदी में आधुनिक जनपदीय भाषाओं का विकास हो चुका था। इस संदर्भ में वह ‘उक्ति व्यक्ति प्रकरण’ का साक्ष्य देते हैं। रामविलास शर्मा एक जननी भाषा की मान्यता को तोड़ते हुए भारतीय व्याकरण परंपरा की प्राचीन जनपदीय विविधता की दृष्टि को स्वीकार करके भाषा की उत्पत्ति को नए सिरे से व्याख्यायित करने की मांग करते हैं। आपका मानना है कि हम यदि प्राकृत, अपभ्रंश के जाल से निकलकर जनपदीय भाषाओं की वास्तविकता पहचानें तो आधुनिक भाषाओं के विकास का दूसरा ही मानचित्र हमारी आंखों के सामने होगा।

रामविलास शर्मा पहले आलोचक हैं जिन्होंने सामाजिक संदर्भ में भाषा के स्तर और भाषा विज्ञान पर विवेचन किया है। आपका मत है कि भाषा परिवार जड़ ईकाई नहीं है जो अलग से विकास करे। इसलिए वह भाषा परिवार के अध्ययन में उनके आपसी संबंध व संपर्क पर चर्चा करते हैं। रामविलास जी भाषा विज्ञान की कई बड़मूल धारणाओं का विरोध करते थे। जैसे वह कहते थे कि देववाणी (संस्कृति) नहीं मानव भाषा का विवेचन करना चाहिए। मानव भाषा का प्रारंभ ऋग्वेद से नहीं होता है तथा आधुनिक भाषाएं किसी भाषा के झंझ का परिणाम नहीं हैं वह विकास का परिणाम हैं।

भाषा विज्ञान के विवेचन में वह विकासोन्मुख दृष्टि को आवश्यक मानते थे। भाषा के संदर्भ में वह सामाजिक, व्याकरण तथा लोक व्यवहार का समन्वित रूप देखना चाहते थे। भाषा विज्ञान का विकास रामविलास जी विचारात्मक संघर्ष से करना चाहते थे।

रामविलास शर्मा पहले आलोचक हैं जिन्होंने हिंदी की जातीयता पर विचार किया। उनसे पूर्व इस क्षेत्र में सन्नाटा पसरा हुआ था और आज भी लोग इसे नज़रंदाज़ करते हैं। किसी भी युग या रचनाकार की समीक्षा करते

हुए वह यह अवश्य देखते थे कि वह हिंदी की जातीयता की कितनी रक्षा करता है और उसके विकास में कितना योगदान देता है। आपको आचार्य शुक्ल, प्रेमचंद, निराला, भारतेन्दु और द्विवेदी इसीलिए प्रिय थे। यह सभी रचनाकार हिंदी की जातीयता की निजी विशेषताओं को पहचानते ही नहीं थे अपितु आत्मसात भी करते थे। इन सभी ने हिंदी की जातीय संस्कृति को पहचानने और विकसित करने के लिए आगे के रचनाकारों का पथ प्रदर्शन किया है।

रामविलास शर्मा जाति का अर्थ 'नेशन' मानते हैं और हिंदी को हिंदी जाति का साहित्य कहते हैं। हिंदी भाषा की जातीयता पर विचार करते हुए वह हिंदी और उर्दू को समान मानते हैं—'हमारे हिंदी प्रदेश की अनेक समस्याएँ हैं। इनमें हिंदी-उर्दू की समस्या है। मेरा कहना यह है कि हिंदी क्रियाओं के बिना आप उर्दू का एक वाक्य नहीं बोल सकते हैं। मुझे दुनिया की कोई दो भाषाएँ बता दीजिए जिनके सारे क्रियापद सौ फीसदी एक हों। यह बुनियादी एकता है हिंदी-उर्दू की। हमारे बुद्धिजीवियों को समझना है कि उन्होंने जो साहित्य का ताजमहल बनाया है अगर वह नींव से बहुत दूर चला जाएगा तो वह ढह जाएगा।...वह एकता हमें साहित्य के अंदर लानी है।'

(अपनी धरती अपने लोग)

रामविलास शर्मा हिंदी की जातीय संस्कृति पर विचार करते हुए भारतीय संस्कृति और दर्शन तक दृष्टि डाल देते हैं। आपने भारतीय संस्कृति के उन सवालों को उठाया जिन्हें छूने का भी साहस लोग नहीं कर पाते हैं। उन्होंने अपने सांस्कृतिक चिंतन में ऋग्वैदिक संस्कृति की नई पुनर्व्याख्या की है। उन्होंने उपनिषद, महाभारत, गीता, कालिदास आदि के सांस्कृतिक पहलुओं को पाठकों के समक्ष उकेरा है। यही नहीं ऋग्वैदिक संस्कृति को कर्मकांड के घेरे से बाहर निकालकर विराट सांस्कृतिक पीठिका पर विराजमान किया। वह मानते हैं कि संसार का प्राचीनतम ग्रंथ हमारे देश का ऋग्वेद है। लोगों का मानना है कि आर्य बाहर से आए थे पर आप दृढ़ता से यह बात बताते हैं कि आर्य यहीं के मूल निवासी थे। वे अनेक प्रमाणों से यह साबित करते हैं कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता आर्य सभ्यता ही है और हमें यहीं से अपनी संस्कृति और उसके विकास को परखना चाहिए। आर्यों का संबंध हमारी भाषा का मूल है। इस क्षेत्र में अनुसंधान करके हम हिंदी भाषा ही नहीं भारत की विरासत, उसकी संस्कृति की नई पहचान स्थापित कर सकते हैं।

आलोचना रामविलास शर्मा के रचनाकर्म का महत्वपूर्ण पक्ष है पर इससे इतर वह एक कवि, अनुवादक, संपादक, आत्मकथाकार, जीवनी-लेखक भी हैं। आप अज्ञेय द्वारा संपादित *तार सप्तक* के कवियों में थे। इनके दो काव्य-संग्रह *रूप-तरंग* तथा *सदियों के सोए जाग उठे हैं*। आपकी कविताओं को हम प्रगतिशील कविता के अंतर्गत रख सकते हैं। उनका विषय सामान्य जन से लेकर प्रकृति तक विस्तार पाता है। काव्य में विचारधारा को महत्व देने वाले रामविलास जी का रुझान आम जनता के प्रति सदैव रहा है। जीवनी लेखन में *निराला की साहित्य साधना* रूढ़ अर्थों से भिन्न नवीन प्रतिमान गढ़ती है। रामविलास जी ने अपनी आत्मकथा *अपनी धरती अपने लोग* लिखी है। आत्मकथा में भी वह अपनी भाषा, साहित्य आदि पर चर्चा करते दिखते हैं जिससे यह पता चलता है कि इनकी जड़ें कितनी भीतर तक समाहित हैं। रामविलास जी ने पत्र साहित्य विधा को आलोचना के क्षेत्र में सहयोगी के रूप में सम्मिलित किया। *मित्र संवाद* में केदारनाथ अग्रवाल व आपके पत्र संग्रहित हैं तथा *निराला की साहित्य साधना* खंड तीन पूर्णतः पत्र संग्रह ही है।

रामविलास शर्मा ने मार्क्स के *कैपिटल* (खंड दो) का हिंदी में अनुवाद

किया है। रामविलास जी मार्क्स से प्रभावित आलोचक हैं। *मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, मार्क्स, तोस्की और एशियाई समाज, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद* आदि पुस्तकों में उनकी मार्क्स और उससे संबंधित अवधारणाएँ स्पष्ट होती हैं। यहां यह कहना आवश्यक है कि रामविलास जी रूढ़ अर्थों में मार्क्सवादी नहीं हैं। मार्क्स से उन्होंने उतना ही लिया है जितना उन्हें ग्रहण करने योग्य लगा है। अपने को उन्होंने सीमित परिधि में कभी नहीं रखा इसीलिए उनकी नज़र वेद से लेकर वर्तमान पूंजीवाद और इलेक्ट्रॉनिक जगत तक जाती है।

रामविलास शर्मा ऐसे आलोचकों में आते हैं जिन्होंने दूसरों के आक्षेपों का सिर्फ जवाब ही नहीं दिया बल्कि अपने विचारों पर भी निरंतर मंथन किया। कभी वह 'साहित्य और संस्कृति' पर विचार करते हैं तो कभी 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' पर पुनर्विचार। वह लोकजीवन, मार्क्स, परंपरा, युगबोध, बहुजातीय राष्ट्रीयता आदि से निरंतर साहित्य को जोड़ते हुए 'आस्था और सौंदर्य' के नए मूल्य देते रहे हैं। 'साहित्य के स्थायी मूल्य और मूल्यांकन' के महत्त्वपूर्ण बिंदु के द्वारा 'भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश', 'लोक जागरण और हिंदी साहित्य' की चर्चा-परिचर्चा में वह 'भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएं' से जूझते हैं। इन सभी पर वह तथ्य ही नहीं प्रस्तुत करते हैं बल्कि प्रश्नों के उत्तर भी ढूंढते हैं और ढूंढने के लिए प्रेरित भी करते हैं। *समालोचक* के संपादक पद पर रहते हुए रामविलास जी ने न केवल हिंदी को अपितु समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान और इतिहास अन्वेषण की अनेक पतों को उघाड़ा बल्कि उसके सौंदर्य को पाठकों के सम्मुख किया।

विविधता रामविलास जी की सर्वप्रमुख विशेषता है। *मानव सभ्यता का विकास, 1857 की राज्य क्रांति* (इतिहास, समाजशास्त्र पर), *पंचरत्न* (रेखाचित्र, डायरी, पत्र आदि), *घर की बात* (100 वर्ष का परिवार इतिहास), *इतिहास और समकालीन परिदृश्य, इतिहास दर्शन, हिंदी जाति का साहित्य, परंपरा का मूल्यांकन* आदि पुस्तकें रामविलास जी के वैविध्य की ही परिचायक हैं। हिंदी ही नहीं संपूर्ण विश्व में इतनी विविधता व वैचारिक दृढ़ता वाला व्यक्ति मिलना संभव नहीं है। इसीलिए हम उन्हें एक व्यक्ति नहीं पूरी संस्था कह सकते हैं।

रामविलास जी की दृष्टि में : आचार्य रामचंद्र शुक्ल

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के संदर्भ में जो कथन रामविलास शर्मा का था यही बात आचार्य रामचंद्र शुक्ल के संदर्भ में भी लागू होती है। *आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना* पुस्तक की भूमिका में वह लिखते हैं कि—'पिछले वर्षों में शुक्ल जी पर तरह-तरह के आक्षेप किए गए थे। इनसे शुक्ल जी के बारे में ही नहीं साहित्य के सहज विकास के बारे में भी भ्रम फैलते थे।' रामविलास जी ने शुक्ल जी को भवभूति का समानधर्मा कहते हुए उन पर लगे आरोपों को सिरे से खारिज ही नहीं किया बल्कि उन्हें आलोचना के शिखर पर भी आसीन किया जिसके वह हकदार थे।

रामविलास जी यह मानते हैं कि हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है, जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का है। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उस सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने किया। शुक्ल जी ने न तो भारत

के रूढ़िवाद को स्वीकार किया न पश्चिम के व्यक्तिवाद को। उन्होंने बाह्य जगत और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्यिक सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध करते हुए देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।

आचार्य शुक्ल ऐसे आलोचनाकार हैं, जो पूर्व और पश्चिम के भाववादी विचारकों को चुनौती देते हैं। रामविलास जी का मानना है कि शुक्ल जी ने शब्द तो पुराने लिए हैं लेकिन उनकी स्थापनाएं अपनी मौलिक हैं। लोक हृदय में लीन होने की कसौटी रखकर उन्होंने हर तरह की संकुचित व्यक्तिवादी और भाववादी धारणाओं से साहित्य को युक्त करके उसे सामाजिक जीवन का अंग बनाया है। आपका यह कहना उपयुक्त है कि शुक्ल जी ने भारतीय संस्कृति के जनवादी रूप को प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

अक्सर आलोचक शुक्ल जी पर ब्राह्मणवादी, एकांगी समाजशास्त्रीय होने का आरोप लगाते रहे हैं, पर आरोप लगाते समय वह यह भूल जाते हैं कि शुक्ल जी उसे ही स्वीकार करते हैं, जो साहित्य के हित में है। रामविलास जी शुक्ल जी का सही मूल्यांकन करते हैं और आलोचकों से कहते हैं कि—“हम चाहे जितना विकसित हो लें, उनके वस्तुवादी दृष्टिकोण, द्वंद्वात्मक तर्क पद्धति, वाल्मीकि-भवभूति-तुलसीदास के मूल्यांकन और काव्य में कलात्मक सौंदर्य के महत्त्व के सिद्धांत को आत्मसात किए बिना आगे नहीं बढ़ सकते हैं।”

हिंदी साहित्य के इतिहास, हिंदी की जातीयता पर, शुक्ल जी की स्थापनाओं पर रामविलास शर्मा गहनता से विचार करते हैं। शुक्ल जी के इतिहास वर्गीकरण तथा नामकरण को लेकर उन पर अनेक आक्षेप किए जाते रहे हैं। वस्तुतः शुक्ल जी का महत्त्व इतिहास के अध्ययन की एक व्यवस्थित पद्धति कायम करने में है न कि अनुसंधान में। उनका मुख्य ध्येय हिंदी साहित्य के इतिहास का ढांचा खड़ा करना था जिसको वह भूमिका में स्पष्ट करते हैं। वीरगाथा काल के ग्रंथों की प्रामाणिकता के आधार पर उन पर जो आरोप लगाए जाते रहे हैं इस संदर्भ में सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि भूमिका में स्वयं शुक्ल जी भी यह स्वीकार करते हैं कि आजकल जो *रासो* मिलते हैं वे संदिग्ध हैं। शुक्ल जी ने इतिहास-लेखन में दो चीजों को मिलाने की कोशिश की है—प्रथम कालक्रम और द्वितीय किसी साहित्यिक धारा की विशेषताएं। कुछ सीमाओं के बावजूद शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास का जो ढांचा खड़ा किया है वही आज तक चला आ रहा है। खुद शुक्ल जी की आलोचना करने वाले भी उन्हीं की दी हुई सुदृढ़ पद्धति का अनुसरण करते हैं। इस तथ्य को रामविलास सुदृढ़ तर्क के द्वारा स्पष्ट भी करते हैं।

हिंदी की जातीयता पर आलोचकों की दृष्टि कम ही गई है। रामविलास

शर्मा का मानना है कि हमारे साहित्य का जातीय रूप हिंदी भाषा है। इसमें खड़ी बोली हमारी जातीय भाषा बनी। बाकी बोलियां ही रह गईं। आचार्य शुक्ल पहले विद्वान हैं जिन्होंने हिंदी की अपनी प्रकृति को समझना सिखाया। वह आलोचना की इस परिपाटी का पुरजोर विरोध करते थे फ़लां लेखक उर्दू के अच्छे जानकार हैं या फ़लां लेखक की संस्कृत बहुत अच्छी है। वस्तुतः आलोचना के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति हिंदी की जातीयता को क्षति पहुंचाती थी। हिंदी भाषा ने अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी से कुछ शब्द ज़रूर लिए हैं पर जातीयता उसकी निजी है। यह कहना असंगत न होगा कि शुक्ल जी ने हिंदी की जातीय

संस्कृति की रक्षा का साहित्यिक कार्य प्रारंभ किया। रामविलास शर्मा शुक्ल जी की परंपरा का अनुसरण करने वाले आलोचक हैं। शुक्ल जी की भांति वह भी हिंदी और उर्दू को बुनियादी तौर पर एक ही भाषा मानते हैं और उनकी जातीयता एक ही निर्धारित करते हुए वह कहते हैं—“... हिंदी क्रियाओं के बिना आप उर्दू का एक वाक्य नहीं बोल सकते और उर्दू क्रियाओं के बिना आप हिंदी का एक वाक्य नहीं बोल सकते।...यह बुनियादी एकता है हिंदी-उर्दू की।”

(अपनी धरती अपने लोग)

शुक्ल जी का आलोचना क्षेत्र अत्यंत विस्तृत रहा है। उन्होंने हिंदी के श्रेष्ठ कवियों के लिए जो मानदंड निर्धारित किए हैं वह आज भी कायम हैं। रामविलास शर्मा भक्तिकालीन कवियों के संदर्भ में शुक्ल जी की मान्यताओं को सही परखते हैं। वस्तुतः यह सभी कहीं जातीय संस्कृति के निर्माता हैं। कबीर, सूर, जायसी और तुलसीदास

एक सांस्कृतिक आंदोलन के अंग रहे हैं। इन सभी में चिंतन और भावना का मूल तत्व प्रेम है। इसलिए शुक्ल जी ने इनमें जातीय संस्कृति के तत्व ढूंढते हुए जायसी को व्यापक मानवीयता का कवि और सूरदास को ब्रज संस्कृति का अवलंबन माना है। तुलसीदास के संदर्भ में वह संपूर्ण भावनात्मक सत्ता कवि का भाव क्षेत्र है, माना तो संत साहित्य को जनवादी आंदोलन कहा। इन्हीं कारणों से रामविलास जी शुक्ल जी में प्रगतिशीलता के तत्व देखते हैं।

रामविलास शर्मा शुक्ल जी की आलोचना पद्धति की एक विशेषता ‘तुलनात्मक अध्ययन’ को मानते हैं। इस पद्धति के कारण पाठक के समक्ष विवेच्य वस्तु का चित्र स्पष्ट उभर जाता है। सूर की लोकप्रियता की चर्चा करते हुए वह कहते हैं कि जायसी की तरह ‘अति स्थानीयता’ सूरदास में नहीं है। बिहारी और सूरदास दोनों श्रृंगारी कवि हैं पर इन कवियों का मूल अंतर दरबारी संस्कृति और जनसंस्कृति का है। वस्तुतः यह अंतर दो तरह के सामाजिक आधार का है।

रामविलास शर्मा शुक्ल जी की हर आलोचना को सूक्ष्मता से परखने वाले समालोचक रहे हैं। शुक्ल जी का हिंदी साहित्य को उत्कृष्ट देय ही नहीं

उनकी सीमाओं को भी रामविलास शर्मा ने रेखांकित किया है। आपका मानना था कि भक्ति आंदोलन का स्वरूप शुक्ल जी को पूर्णतः स्पष्ट नहीं था। इसका कारण वह प्राप्त ग्रंथों व इतिहास लेखन की सीमाओं को मानते हैं। शुक्ल जी पर अक्सर कबीर संबंधित आलोचना हुई है। लोगों का मानना है कि शुक्ल जी कबीर को उत्कृष्ट कवि नहीं मानते हैं और उनमें लोक विरोध देखा है। परंतु कबीर पर लिखी सभी पुस्तकें एक ओर हो जाती हैं जब शुक्ल जी इन तीनों बिंदुओं को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि—“इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथ-पंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस से शुन्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म गौरव का भाव जगाया और उसे भक्ति के ऊंचे से ऊंचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।”

रामविलास शर्मा ने यह बिल्कुल सत्य कहा कि कबीर का क्रांतिकारी कार्य जनता को नाथपंथियों के प्रभाव से मुक्त करने में है तथा निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव जगाने और आगे बढ़ाने में है। कबीर ने जनसाधारण को सामंती अत्याचारों के विरोध में खड़ा होना सिखाया और शुक्ल जी ने कबीर के इस कार्य की सही परख की है।

आचार्य शुक्ल जायसी पर विदेशी प्रभाव देखते हैं पर उनका यह कथन एकपक्षीय है। अपने इस दृष्टिकोण के बावजूद वह जायसी की आलोचना स्वाभाविकता, मानव सुलभ सहृदयता से करते हैं। जहां जायसी ने कोरा चमत्कार दिखाया है वहां शुक्ल जी जायसी को दोषी ठहराते हैं। उनका यह कार्य आलोचना के क्षेत्र में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा करता है। जो लोग शुक्ल जी में एकांगी समाजशास्त्री दृष्टिकोण देखते हैं उन्होंने पद्मावत की भूमिका में कला पक्ष का विवेचन ध्यान से नहीं पढ़ा है नहीं तो ऐसे आरोप लगाते ही नहीं।

शुक्ल जी ने तुलसीदास को सूरदास से श्रेष्ठ कवि माना है। लेकिन सूरदास अपने समय की समस्याओं के प्रति तटस्थ थे और उनमें लोक संग्रह का अभाव था, यह धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती है। रामविलास शर्मा का मानना है कि कृष्ण और गोपियों का प्रेम सामंती समाज के जाति, वर्ण, और संपत्ति के बंधन को तोड़कर प्रवाहित हुआ था। इस सामंत विरोधी मानवमूल्य को हम लोक संग्रह से कैसे बाहर रख सकते हैं। संभवतः भ्रमर गीतसार को ध्यान में रखते हुए शुक्ल जी ने सूरदास का सीमित विवेचन किया है परंतु सूर के वात्सल्य और शृंगार रस के शुक्ल जी कायल थे। शुक्ल जी ने भक्ति का विकास दिखाकर लोकगीतों की परंपरा के संदर्भ में रीतिकालीन कवियों से भिन्न सूर के अध्ययन का जो मार्ग प्रशस्त किया है वह अपनी सीमाओं के बावजूद सराहनीय है।

रामविलास शर्मा का मानना है कि शुक्ल जी ने छायावाद का जो विरोध किया है उसके पीछे उनका यथार्थ मानव जीवन से प्रेम रहा है। वह साहित्य को परोक्ष चिंतन, रहस्यवाद, अटपटी और दुरूह शैली से बचाना चाहते थे। वस्तुतः शुक्ल जी पश्चिम के पतनशील रुझानों से हिंदी की जातीय परंपरा को बचाना चाहते थे। जहां पर छायावादी कवियों ने यथार्थ जीवन का चित्रण किया है वहां शुक्ल जी सराहना करते हैं। पंत के प्रकृति चित्रण को उन्होंने खुलकर सराहा है। पंत का सौंदर्यवादी रूप शुक्ल जी की आंखों से देखने पर लगता है कि वह कितना अद्भुत व अनूठा है।

शुक्ल जी ने एक निबंधकार के रूप में जो मौलिक स्थापनाएं दी हैं वह केवल साहित्य शास्त्र को ही नहीं, अपितु विज्ञान और समाजशास्त्र को

भी महत्वपूर्ण देन है। शुक्ल जी के विवेचन की आधारशिला लोकहित है। वह हर मनोविकार का आधार सामाजिक बताते हैं। रामविलास शर्मा शुक्ल जी के सिद्धांत को अरस्तू के कैथार्सिस से भी भरा-पूरा मानते हैं। रामविलास जी शुक्ल जी के विवेचन को इंगित करते हुए कहते हैं कि शुक्ल जी की मान्यता है कि “कवि तीन काम करता है—मनोवेगों को तीव्र करता है, उन्हें परिमार्जित करता है और संसार के साथ उनके उपयुक्त संबंध निर्वाह पर जोर देता है।” यह कहना असंगत न होगा कि शुक्ल जी का यह सिद्धांत कैथार्सिस से आगे की बात करता है।

शुक्ल जी ने अपने निबंधों में बौद्धिक चिंतन, इंद्रियबोध और भावना के समन्वय को साहित्य की विशेषता बताया है। यह तथ्य पूर्व और पश्चिम दोनों के काव्यशास्त्र से ज्यादा संगत और वैज्ञानिक है। यह हिंदी का अपना साहित्य शास्त्र कहा जा सकता है।

रामविलास शर्मा शुक्ल जी को गंभीर आलोचक मानते हैं। इसका वह मुख्य कारण शुक्ल जी का वस्तुवादी दृष्टिकोण, तर्क और चिंतन पद्धति को मानते हैं। विरोधी लगने वाली वस्तुओं का सामंजस्य पहचानना, उन्हें गतिशील और विकासमान देखना, संसार के भौतिक-मानसिक व्यापारों का परस्पर संबंध स्थापित करके उनका अध्ययन करना शुक्ल जी की विशेषताओं में शामिल है जिस कारण वह भारतीय दार्शनिकों और तार्किकों की परंपरा में श्रेष्ठ विचारक ठहरते हैं। डा. शर्मा शुक्ल जी को गंभीर चिंतन पद्धति का तीसरा कारण सामाजिक दृष्टिकोण मानते हैं। उनका मानना है कि शुक्ल जी हिंदी के मानववादी, सामंत विरोधी और देशभक्त लेखक हैं। दृढ़ता, आत्म विश्वास और निर्भीकता शुक्ल जी में अंत समय तक विद्यमान रहे हैं। शुक्ल जी की शैली वैज्ञानिक विवेचन की शैली है। शुक्ल जी के निबंधों में अत्यंत सारगर्भित वाक्य रचने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है।

शुक्ल जी ने अपने निबंधों द्वारा हिंदी के काव्यशास्त्र को एक नया मनोवैज्ञानिक आधार दिया है। इस आधार पर उन्होंने साहित्य की प्रगति विरोधी धारणाओं का खंडन किया और संस्कृत-हिंदी की प्रगतिशील परंपरा का समर्थन किया। शुक्ल जी की शैली तार्किक विवेचन के लिए उपयुक्त होने के साथ आवश्यकतानुसार आवेशपूर्ण और आलंकारिक भी है, जो जीवन के संचित अनुभव प्रकट करने वाली काव्यावली है।

शुक्ल जी की आलोचना की अपनी सीमाएं हैं पर उन कारणों से उनके महत्त्व को हम कम नहीं आंक सकते हैं। शुक्ल जी ने अपनी आलोचना के द्वारा हिंदी साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया है। डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में—“आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन साहित्य शास्त्र का विरोध किया, साहित्य को धनी वर्ग का सेवक बनने से रोका, उन्होंने सामंती संस्कृति और साम्राज्यवादी उत्पीड़न का सच्चा रूप दिखाया, पश्चिमी व्यक्तिवाद और निराशावाद से बचने की चेतावनी दी, निष्क्रिय, प्रतिरोध तोलस्तोय पंथ, रहस्यवाद और अध्यात्म की पुकार का रहस्य प्रकट किया और अन्याय, अत्याचार के दमन में सौंदर्य की प्रतिष्ठा की। इस तरह से उन्होंने साहित्यकार को जनता का पक्ष लेना सिखाया और नए साहित्य में अपनी ऐतिहासिक भूमिका पूरी की।”

रामविलास शर्मा के जन्मशती वर्ष में हमारा यह कर्तव्य बनता है कि उन्होंने हिंदी साहित्य और उसकी सेवा में तत्पर रचनाओं के संदर्भ में जो दृष्टि दी है उस दृष्टि से उन पर विचार करें। □

संपर्क : द्वारा शुभा स्टेशनरीमार्ट, S 8/5-5-1, गोलघर कचहरी, वाराणसी (उ.प्र.)

अप्रतिम व्यक्तित्व

विवेक सत्यांशु

आधुनिक भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी कई अर्थों में एक विलक्षण एवं अत्यंत महत्वपूर्ण शताब्दी के रूप में याद की जाएगी, क्योंकि इस शताब्दी ने साहित्य, इतिहास, दर्शन, राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में ऐसी प्रतिभाओं को उत्पन्न किया, जिन्होंने पराधीनता काल में स्वाधीनता की चेतना जाग्रत की, अपनी भाषा साहित्य, दर्शन, चिंतन की समृद्ध परंपरा के प्रति रागबोध उत्पन्न किया।

रामविलास शर्मा ऐसे ही स्वतंत्र चेतन चिंतक, आलोचक के रूप में हमारे सामने आते हैं। रामविलास शर्मा हिंदी के उन महत्वपूर्ण आलोचकों में हैं जिन्होंने आलोचना के नए प्रतिमान बनाए। हिंदी के दूसरे बड़े आलोचक रामविलास जी ने शुक्ल जी की तरह हिंदी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास तो नहीं लिखा लेकिन भारतेंदु से निराला तक उन्होंने जो कुछ लिखा है, वस्तुतः वह हिंदी साहित्य का इतिहास है। आपके लेखन की शुरुआत कविता से हुई थी, अज्ञेय संपादित तार सप्तक (1943) में आपकी कुछ कविताएं भी संकलित हुईं।

वर्षों बाद उनका स्वतंत्र कविता-संग्रह रूप तरंग भी निकला। उन्होंने अपने को आलोचना में ही ज्यादा एकाग्र किया। 1934 में चांद पत्रिका में उनका पहला लेख निराला की कविता पर छपा जो वर्षों बाद छपी उनकी तीन खंडों में निराला की साहित्य साधना की भूमिका मात्र थी। यह सिर्फ निराला की जीवनी ही नहीं थी, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्र मूल्यांकन भी था। समाज, संस्कृति, इतिहास उनके अध्ययन के फलक में समाहित थे। वे अंग्रेजी के छात्र थे, बाद में प्राध्यापक बने। 1934 में निराला से मिलने के बाद उन्होंने हिंदी साहित्य की सेवा करने का संकल्प ले लिया।

रामविलास शर्मा एक साहित्यिक आलोचक ही नहीं, समाज चिंतक भी थे। उनमें गहरे सौंदर्यबोध के साथ सामाजिक चेतना भी थी। उनकी आलोचना का समाज विज्ञानों से व्यापक संबंध है। डा. शर्मा ने हिंदी प्रदेश और भारत की सांस्कृतिक विरासत का नए सिरे से मूल्यांकन किया। आप 1857 को भारतीय इतिहास में एक प्रस्थान बिंदु ही नहीं मानते बल्कि हिंदी नवजागरण का आरंभ भी मानते हैं, यही कारण है कि उन्होंने नवजागरण को ध्यान में रखकर आधुनिक साहित्य की परंपरा का मूल्यांकन किया। उनकी आलोचना का क्षेत्र व्यापक था, उन्होंने भाषा विज्ञान ही नहीं भारत के प्राचीन भाषा परिवार से हिंदी को जोड़कर देखा। हिंदी जाति की अवधारणा उन्हीं की परिकल्पना है। वैसे तो नवजागरण की अवधारणा भी रामविलास जी ने ही विकसित की। कल के भारत का मध्यदेश ही आज के भारत का हिंदी प्रदेश है। हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड सब हिंदी प्रदेश के अंतर्गत हैं। सबमें शिक्षा

का माध्यम हिंदी है। इन प्रदेशों में विशाल हिंदीभाषी जाति निवास करती है। इस भू-भाग को जोड़ने वाली भाषा हिंदी है। जातीय भाषा और राष्ट्रभाषा में अंतर है। महाराष्ट्र, बंगला या तमिलनाडु के लोगों की जातीय भाषा मराठी, बांग्ला या तमिल है, हिंदी नहीं। हिंदीभाषियों के लिए हिंदी जातीय भाषा है जैसे बंगाल के लोगों के लिए बंगाली जातीय भाषा है। जातीय भाषा होने के साथ-साथ हिंदीभाषियों के लिए हिंदी राष्ट्रभाषा भी है।

रामविलास शर्मा ने विशाल हिंदी जाति का विस्तार से विवेचन किया

और हिंदी जाति के जातीय गठन, इसके उपकरणों, इसके साहित्य और संस्कृति पर एक सार्थक बहस छेड़ी। वह कहते हैं इस विशाल हिंदी प्रदेश में जातीय गौरव के बोध की कमी है जिसके कारण हिंदी जाति का गठन आज भी अधूरा है। भारत की भाषा समस्या में वह स्वीकार करते हैं कि हिंदीभाषी प्रदेश के शिक्षित जन बंगाल या तमिलनाडु के लोगों पर अक्सर भाषागत संकीर्णता या प्रांतीयता का दोष लगाते हैं पर वास्तविकता यह है

रामविलास शर्मा अंग्रेजी के छात्र और अध्यापक रहे। कीट्स पर उन्होंने शोध किया। लेकिन हिंदी साहित्य की उन्होंने जो सेवा की वह अप्रतिम है। वे मार्क्सवादी आलोचक थे, वैदिक कवियों के सौंदर्यशास्त्र पर उन्होंने लिखा, कालिदास और भवभूति पर उन्होंने लिखा।

कि बंगाल या तमिलनाडु के शिक्षित जन अपनी भाषा से जितना प्रेम करते हैं, अपने सामाजिक जीवन में उसका जितना प्रयोग करते हैं उतना हम नहीं करते। अन्य प्रदेशों के शिक्षित जन यदि अपने यहां के साहित्य से अपरिचित हों तो उन्हें शर्म आएगी पर हमारे प्रदेश में शिक्षित जन हिंदी साहित्य से अपरिचित होने में गर्व का अनुभव करते हैं। अपने अज्ञान पर गर्व करते हुए वे लगातार एक ही प्रश्न दोहराते चले आए हैं—हिंदी में है ही क्या?

रामविलास शर्मा ने हिंदी साहित्य की जो सेवा की वह अप्रतिम है। आज भी प्रेमचंद पर लिखी उनकी किताब सबसे प्रामाणिक मानी जाती है। वे मार्क्सवादी आलोचक थे, लेकिन वैदिक कवियों के सौंदर्यशास्त्र पर उन्होंने लिखा, कालिदास और भवभूति पर लिखा। इसीलिए वामपंथी लेखकों का एक खेमा उनका विरोधी रहा है। वह यह नहीं देखता कि जार्ज लुकास और काइवेल मार्क्सवादी आलोचक थे, लेकिन इन्होंने रोमांटिक कविता पर लिखा, रोमांटिक कविता की जनवादी धारा को रेखांकित किया, इन लोगों ने कीट्स, बायरन, शैले पर लिखा। उनका यह आलोचनात्मक कर्म निश्चित रूप से उनके आयाम को व्यापक बनाता है और उन्हें विस्तृत संसार से जोड़ता है। वास्तव में रामविलास शर्मा अध्ययनशील, प्रतिभाशाली और ईमानदार आलोचक थे। गुटीय दांव-पेंचों से अलग रहने की उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी। उनके जन्मशताब्दी वर्ष में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्र मूल्यांकन जरूरी है। □

संपर्क : 14/12, शिवनगर कालोनी, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006 (उ.प्र.)

नवजागरण की धारणा बुनियादी तौर पर साम्राज्यवाद विरोधी है : मैनेजर पांडेय

सुधीर सुमन

“रामविलास शर्मा में महावीर प्रसाद द्विवेदी की ज्ञान साधना है, रामचंद्र शुक्ल की लोकचिंता है, छायावाद का परंपराबोध है, प्रेमचंद की सामाजिक संवेदनशीलता है और प्रगतिवाद की राजनीतिक चेतना है। इन सबको तुलसीदास की कहन कला की सहजता में ढालकर उन्होंने ऐसा समालोचनात्मक रसायन तैयार किया, जो पाठकों को भारतीय समाज और साहित्य विशेषतः हिंदी समाज और साहित्य के अतीत की चेतना, वर्तमान की समझ और भविष्य की चिंता प्रदान करता है।” प्रोफेसर मैनेजर पांडेय ने जनसंस्कृति मंच की ओर से विगत दिनों साहित्य अकादमी, दिल्ली के सभागार में आयोजित रामविलास शर्मा जन्मशती आयोजन में बीज वक्तव्य देते हुए कहा। दो सत्रों में आयोजित यह आयोजन एक प्रखर साम्राज्यवाद विरोधी आलोचक के रूप में रामविलास शर्मा की भूमिका और उनकी प्रासंगिकता पर केंद्रित था।

प्रोफेसर मैनेजर पांडेय ने कहा कि—“रामविलास शर्मा पिछली सदी में तीस के दशक के मध्य में जब हिंदी आलोचना

में आए तब भारत अंग्रेजी साम्राज्यवाद के अधीन था उसके विरुद्ध जनजागरण और जनांदोलन उभार पर था। रामविलास जी ने उस साम्राज्यवाद विरोधी व्यापक प्रक्रिया में एक आलोचक के रूप में अपनी भूमिका निर्मित और विकसित की। इसके लिए उन्होंने साहित्य की एक दृष्टि विकसित की, जो एक ओर हिंदी आलोचना की जातीय परंपरा से जुड़ी हुई थी, तो दूसरी ओर सामाजिक और राजनीतिक अभिप्रायों से संचालित थी। उन्होंने साहित्य को जातीय साहित्य की दृष्टि से देखने की कोशिश की और हिंदी साहित्य को हिंदी जाति के साहित्य के रूप में पहचानने पर जोर दिया।”

प्रो. पांडेय ने बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद के साहित्य संबंधी धारणाओं और कसौटियों का विस्तार से जिक्र करते हुए कहा कि रामविलास जी ने प्रेमचंद और रामचंद्र शुक्ल द्वारा आकांक्षित और निर्मित साहित्य की कसौटी का ही उपयोग अपनी आलोचना में किया है। इसी कसौटी पर वे भारतेंदु को परखते हैं, प्रेमचंद का मूल्यांकन करते हैं, निराला की व्याख्या करते हैं, महावीर प्रसाद द्विवेदी की देन का विवेचन करते हैं, कंदारनाथ अग्रवाल की पहचान करते हैं और नागार्जुन का भी। रामविलास शर्मा ने हिंदी साहित्य की आलोचना को विकसित करने के लिए साहित्य संबंधी एक नया दृष्टिकोण विकसित किया, जिसके केंद्र में

नवजागरण की धारणा है, जो बुनियादी तौर पर साम्राज्यवाद विरोधी है, क्योंकि उसके मूल में 1857 का स्वाधीनता संग्राम है। उनके अनुसार 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम भारतीय जनता, विशेषकर हिंदी जनता के साम्राज्यवाद विरोध की उदात्त अभिव्यक्ति है। ‘1857 की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद’ को रामविलास शर्मा के साम्राज्यवाद विरोधी चिंतन और लेखन का एवरेस्ट बताते हुए प्रो. पांडेय ने कहा कि उस किताब के अंत में उन्होंने लिखा है कि यदि साम्राज्यवाद का विनाश विश्व मानवता की प्रगति के लिए आवश्यक है, तो

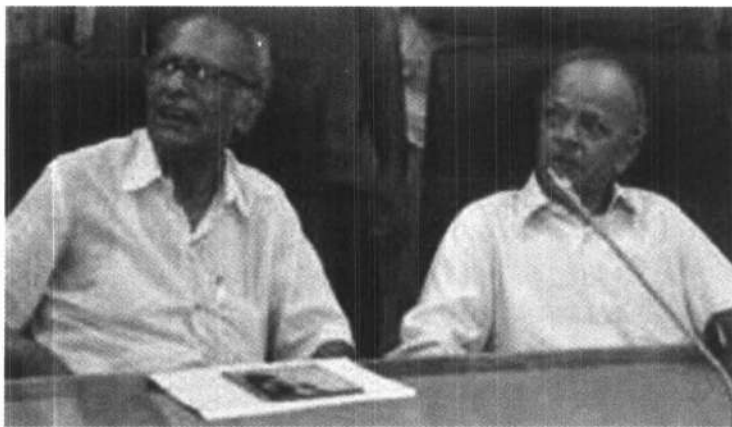
सन् सत्तावन का संग्राम वस्तुगत रूप से निश्चय ही साम्राज्यवाद विरोधी, जनतांत्रिक और प्रगतिशील था।

प्रो. पांडेय ने आगे कहा कि रामविलास जी की आलोचनात्मक चेतना का विकास मुख्य रूप से स्वाधीनता आंदोलन में हुआ, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद उनके निशाने पर रहा। उन्होंने आजीवन इस साम्राज्यवादी प्रचार का विरोध किया कि अंग्रेज भारत का विकास करने आए थे या उनकी कोई

प्रगतिशील भूमिका थी। साहित्य सिद्धांतों और सौंदर्यबोध के पीछे की राजनीति से उन्होंने पाठकों को अवगत कराया और पश्चिम से आने वाले विचारों और सौंदर्य सिद्धांतों का लक्ष्य व्यक्तिवाद को बढ़ावा देना था। इसीलिए उन्होंने रूपवाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद और अस्तित्ववाद के प्रचार का जमकर विरोध किया।

दो सत्रों के इस कार्यक्रम के आयोजन की शुरुआत में रामविलास जी के सुपुत्र विजयमोहन शर्मा के सौजन्य से जबरीमल्ल पारख और सत्यकाम द्वारा इग्नू द्वारा निर्मित रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व, रचनाकर्म और विचारधारा पर बनाई गई एक छोटी, पर प्रभावशाली फिल्म ‘अडिग यही विश्वास’ दिखाई गई।

‘साम्राज्यवाद विरोधी आलोचक रामविलास शर्मा’ विषयक पहले सत्र में आलोचक प्रो. रविभूषण ने रामविलास शर्मा के हवाले से कहा कि वे चाहते थे कि उनको याद करने के बजाए उन समस्याओं और सवालियों को याद किया जाए, जिनसे वे जूझते रहे। उन्होंने जो इतिहास लेखन और विवेचन किया, वह इतिहास निर्माण के लिए किया। उनका मानना था कि अंग्रेजों ने जाति-संप्रदाय को बढ़ावा दिया, सामंती अवशेषों को मजबूत किया, भारतीय शहरों का देहातीकरण किया तथा अभ्युदयशील पूंजी को नष्ट किया। ब्रिटिश



रामविलास जी की स्मृतियों के पट खोलते-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह व मैनेजर पांडेय

वाद विरोध का समकालीन सन्दर्भ



संस्मरण सुनाते हुए रामविलास जी के अनुज मुंशी जी

साम्राज्यवाद ने शिक्षण संस्थाओं को भी बर्बाद किया। 1857 साम्राज्यवादी तबाही के विरोध में प्रगतिशील और लोकतांत्रिक था। भारत में सामंतवाद किस तरह साम्राज्यवाद का मुख्य आधार बना है, इस पर रामविलास जी की पैनी निगाह थी। साम्राज्यवाद के साथ संप्रदायवादी शक्तियों और सामंती अवशेषों के संबंध को उन्होंने बार-बार चिन्हित किया।

आलोचक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह ने कहा कि आज विकास का जो रास्ता दिखाया जा रहा है और जो विचार परोसा जा रहा है, वह राष्ट्रीय संप्रभुता के खिलाफ है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जो जनसंहार इस देश में किए न उसे भुलाया जा सकता है और न ही 1857 की लड़ाई को भुलाया जा सकता है। मुट्ठी भर सामंतों, बागी सिपाहियों, किसानों और कारीगरों ने जैसी लड़ाई लड़ी, उसके पहले दुनिया के इतिहास में वैसी कोई लड़ाई नहीं हुई। 1930 के अंतिम वर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में किसान-मजदूरों और संस्कृतिकर्मियों-बुद्धिजीवियों का जो संयुक्त मोर्चा बना, उसने रामविलास जी की आलोचनात्मक दृष्टि को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साम्राज्यवाद विरोधी और सामंतवाद विरोधी संघर्ष के लिहाज से रामविलास शर्मा के लेखन की प्रासंगिकता आज भी है। राजेंद्र कुमार ने कहा कि—“रामविलास जी का लेखन साम्राज्यवाद के खिलाफ एक प्रकार का सांस्कृतिक अभियान है। साम्राज्यवाद और उसके सहायक सामंती अवशेषों और पुराने-नए पूंजीवाद के खिलाफ उन्होंने एक सांस्कृतिक कार्यकर्ता की तरह कार्य किया। उनके सांस्कृतिक एक्टिविज्म का बहुत बड़ा दायरा था, जिसमें भाषा, समाज, इतिहास, दर्शन, राजनीति, अर्थनीति- सब कुछ शामिल हैं। रामविलास जी हिंदी आलोचना के ऐसे साधना पुरुष हैं, जिन्होंने हमको कई ऐसे बीज शब्द दिए जो साम्राज्यवाद और उसके सहयोगी फासीवादी तत्वों से लोहा लेने में मददगार हो सकते हैं। नवजागरण, लोक जागरण, जातीयता, हिंदी जाति, बहुजातीय राष्ट्रवाद ऐसे ही बीज शब्द हैं। नवजागरण की मूल प्रतिज्ञा के रूप में साम्राज्यवाद-विरोध का जिक्र रामविलास जी ने बार-बार किया।

साम्राज्यवाद जिस देश में जाता है वहां भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय, क्षेत्र के आधार जनता को बांटता है, रामविलास जी हमेशा इस साम्राज्यवादी साजिश का विरोध करते रहे। साम्राज्यवाद कई बार राष्ट्रवाद का प्रतिरूप

बनकर भी आता है, ऐसे राष्ट्रवाद की ओर भी उन्होंने संकेत किया और बहुजातीय राष्ट्रवाद की जरूरत पर जोर दिया। स्वाधीनता प्रेम, विश्व की साम्राज्यवाद विरोधी जनता के साथ एकता, गरीबों के प्रति तरफदारी और दोरंगी राजनीति के विरोध को उन्होंने साहित्य की कसौटी माना।”

‘हिंदी आलोचना में साम्राज्यवाद विरोध का समकालीन संदर्भ’ विषय पर अवधेश प्रधान ने 1857 के संघर्ष को लेकर होने वाली वैचारिक बहसों का जिक्र करते हुए कहा कि उस वक्त साम्राज्यवाद ने भारत में जिस तबाही को अंजाम दिया, उससे सवर्ण और दलित दोनों समुदाय बर्बाद हुए। 1857 के योद्धा कुंवर सिंह के लंबे अभियान को याद करते हुए उन्होंने सवाल किया कि अगर दलित अंग्रेजपरस्त होते तो क्या वह अभियान सफल हो पाता? स्वाधीनता संग्राम में दलित नायकों की भूमिका को सामने लाने की जरूरत पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि साम्राज्यवाद से दलितों की कभी भी मुक्ति संभव नहीं है। प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने वक्तव्य में कहा कि—“रामविलास शर्मा की पूरी जिंदगी खुली किताब है। उनको पढ़कर ही नहीं उन्हें देखकर भी लोग मार्क्सवादी हुए हैं। उनकी आलोचना या उनकी सीमाओं की चर्चा जरूर करनी चाहिए, पर इसके लिए उन्होंने जो लिखा है, उसे गंभीरता से पढ़कर ही ऐसा करना चाहिए। रामविलास शर्मा हिंदी साहित्य के स्वर को साम्राज्यवाद-विरोधी बनाने वाले अग्रगण्य लेखक हैं। उन्होंने साम्राज्यवाद-विरोध को हिंदी कविता का सौंदर्यबोध बना दिया।”

वरिष्ठ कवि मंगलेश डबराल, युवा आलोचक कवितेंद्र इंदु, बजरंग बिहारी तिवारी, अमिताभ राय और शहबाज ने रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक दृष्टि और सौंदर्यबोध को लेकर कुछ विचारोत्तेजक सवाल भी किए। मंगलेश डबराल ने उनके द्वारा निराला की कविता के मूल्यांकन को लेकर सवाल किया। दलित और स्त्री संबंधी उनकी धारणाओं को लेकर बहस हुई तथा अपने समकालीन प्रगतिशील रचनाकारों की जैसी सख्त आलोचना रामविलास जी ने की थी, उसे लेकर भी सवाल खड़े हुए। □

संपर्क : यू-90, शकरपुर, दिल्ली-110092

तीन कविताएं : रामविलास शर्मा

प्रत्यूष के पूर्व

दूर छिपा है भोर अभी आकाश में
पश्चिम में धीरे-धीरे पर डूबता
ठिठुरन से छोटा हो पीला चंद्रमा
धुंधली है तुषार से भीगी चांदनी।
सीत्-सीत् करती बयार है बह रही
बरस रहा खेतों पर हिम हेमंत है
हरी-भरी बालों के भारी बोझ से
मूर्च्छित हो धरती पर झुकी मोराइयां।
बरगद के नीचे ही महफिल है जमी
घुंघरू की छुम-छुम पर तबला ठनकता
पेशवाज़ से सजी पतुरियां नाचतीं
मीठी-मीठी सारंगी भी बज रही।
उड़ती गहरी गंध हवा में इत्र की
उजले धुले वस्त्र पहने बैठे हुए
दारू का चल रहा दौर पर दौर है।
कहते हैं, स्वामी जो थे इस भूमि के
हत्यारों से वे अकाल मारे गए।
सीत्-सीत् करती बयार है बह रही
बरगद से कुछ दूरी पर जो दीखता
ऊंचा-सा टीला, उस पर एकत्र हो
ऊंचा मुंह कर देख डूबता चंद्रमा
हुआ-हुआ करते सियार हैं बोलते।

(1938) यह चांद चुराकर लाया है
सूरज से अपनी चांदनी।

सूरज निकला, अब चांद कहाँ?
छिप गई लाज से चांदनी।

दुख और कर्म का यह जीवन,
वह चार दिनों की चांदनी।

यह कर्म-सूर्य की ज्योति अमर
वह अंधकार थी चांदनी।

चांदनी

चांदी की झीनी चादर-सी
फैली है वन पर चांदनी।

चांदी का झूठा पानी है
यह माह-पूस की चांदनी।

खेतों पर ओस भरा कुहरा
कुहरे पर भीगी चांदनी

आंखों में बादल-से आंसू
हंसती है उन पर चांदनी।

दुख की दुनिया पर बुनती है
माया के सपने चांदनी।

मीठी मुस्कान बिछाती है
भीगी पलकों पर चांदनी।

लोहे की हथकड़ियों-सा दुख
सपनों-सी झूठी चांदनी

लोहे-से दुख को काटे क्या
सपनों-सी मीठी चांदनी।



कतकी

पिछला पहर रात का, पर आकाश में
छिटकी है अब भी चौदस की चांदनी
बिना वृक्ष-झाड़ी के, घेरे क्षितिज को
ऊसर ही ऊसर कोसों फैला हुआ।
चला गया है उसे चीरता बीच से
गहरे कई खुदों का गलियारा बड़ा
कतकी का ढर्रा, जिस पर है जा रही
घुंघरू की ध्वनि करती इस सुनसान में
पाँति बांधकर धीरे-धीरे लाढ़ियां।
उड़ते पीछे उजले बादल धूल के।
तने हुए तंबू भीतर पैरा बिछा
सुखी बाल-बच्चे बैठे हैं ऊंधते
गरम रज़ाई में निश्चित किसान भी
बैठा बैलों की पगही ढीली किए।
घुंघरू की मीठी ध्वनि करते जा रहे
फटी-पुरानी झूलें ओढ़े बैल वे
पहचानते लीक हैं, पहले भी गए।
स्वप्न देखते धीरे-धीरे जा रहे
सकरघटी कर पार, जहां लहरा रही
सर्-सर् करती गंगा की धारा, वहां
रंग-बिरंगा कोलाहल करता बड़ा
बालू पर मेला है एक जुड़ा हुआ।

(1943)

(1938)

वार्षिक मूल्य : 100 रुपये

